जायसी : व्यक्तित्व और कृतित्व

लेखक
डा० रामलाल वर्मा
डा० रामचन्द्र वर्मा

भारतीय ग्रन्थ निकेतन
१३३ लाजपतराय मार्केट, दिल्ली-११०००६

प्राक्कथन

सूफी काव्य को हिन्दी में लाने का श्रेय आलोचक-प्रवर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को है। शुक्ल जी ने जिन तीन महाकवियो पर विस्तृत समीक्षा-ग्रन्थ लिखे हैं, उनमे एक मलिक मुहम्मद जायसी हैं। शुक्ल जी के समय से आज तक सूफी काव्य-धारा पर अनेक विद्वानो ने शोध-कार्य किया है और उन्होने कतिपय प्रचलित मान्यताओ—सूफी काव्य का फारसी की मसनवी शैली पर रचित होना सूफी कवियों का प्रायः मुसलमान होना आदि—मे परिवर्तन के आधार भी प्रस्तुत किए हैं। परन्तु मलिक मुहम्मद जायसी इस काव्यधारा के सर्वश्रेष्ठ एवं प्रतिनिधि कवि हैं, इतना ही नही वे हिन्दी के उच्चकोटि के कवियो मे अन्यतम हैं। इस धारणा मे किसी प्रकार का मत-भेद अद्यावधि न उत्पन्न हुआ है और न ही उत्पन्न होगा। इसका कारण भारतीय प्रेमाख्यान परम्परा मे जायसी का अभूतपूर्व योगदान है। यह सर्वजन विदित है कि आज 'पृथ्वीराजरासो' की प्रामाणिकता सन्दिग्ध होने के कारण 'पद्मावत' को हिन्दी के प्रथम असन्दिग्ध महाकाव्य तथा जायसी को तदनुरूप प्रथम महाकवि होने का गौरव प्राप्त है।

महाकवियों के कवित्व का अध्ययन देव-ऋण को चुकता करना है। श्रेष्ठ कवि के कवित्व की समीक्षा न केवल कवि को कृतकृत्य करती है प्रत्युत पाठक का भी उचित मार्गदर्शन द्वारा उपकार करती है। कवि को जहाँ अपने को समझने वालो की उत्सुकतापूर्ण खोज रहती है, भवभूति का 'उत्पत्स्यते च मम कोऽपि समानधर्मा' कथन इसी तथ्य का पोषक है, वहां पाठक को भी पठनीय के चुनाव तथा रसास्वाद की मानसिक प्रस्तुती के लिए समीक्षा-ग्रन्थ की आवश्यकता रहती है।

जायसी पर अनेक विद्वानो ने अपने ढंग से विचार किया है। "पण्डितन्ह् केर पिछलगे" हम लोगों ने भी कवि और उसके कृतित्व का यत्किञ्चित् अनुशीलन किया है। वस्तुतः हमारे विचार में आज के अनुसन्धान और परिवर्तित मूल्यों के युग में कवियो तथा उनकी रचनाओं पर पुर्नविचार तथा नवीन लेखन की महती आवश्यकता है और इसी सन्दर्भ मे हमारा यह प्रयास है। यह प्रयास कितना नवीन तथा अर्थवान् है—इसका निर्णय तो सूफी पाठको को करना है कि—

हम तो केवल इतना ही जानते हैं कि—

"विक्रियन्ते न घण्टाभिर्निर्दुग्धाः हि धेनवः।"

डा० रामलाल वर्मा

डा० रामचन्द्र वर्मा

विषयानुक्रमणिका

मलिक मुहम्मद जायसी : जीवन, व्यक्तित्व तथा कृतित्व

भारतीय धर्मसाधना मे आत्म-परिचय को आत्मविज्ञप्ति तथा कर्तृत्व-अभिमान-वृत्ति मानकर प्राय: उसकी उपेक्षा की गई है। यही कारण है कि प्राचीन सन्तों, भक्तो तथा साधक कवियो के जीवनवृत्त आज अनुसन्धान का विषय बने हुए है तथा इस सम्बन्ध मे आज भी पूर्ण-निश्चय तथा विश्वसनीयता के साथ कुछ कह पाना सम्भव नही। आत्मगोपन की प्रवृत्ति कदाचित् अन्य देशो तथा धर्मों के साधक-सन्तो मे भी रही है। उसके प्रभाव के अन्तर्गत अथवा भारतीय प्रवृत्ति के फलस्वरूप मलिक मुहम्मद जायसी ने भी अपने सम्बन्ध मे विशेष कुछ नही कहा। प्रबन्ध के अन्तर्गत संयोगवश यत्र-तत्र-प्राप्त संकेतो से ही उनके जीवन-परिचय के सम्बन्ध मे काम चलाना तथा सन्तोष करना पडता है।

प्राय सभी कवियो के सम्बन्ध मे अन्य समकालीन अथवा परवर्ती कवियो के कथन, इतिहासकारो के उल्लेख, वंश-परम्परा तथा पुरातत्त्व अवशेष आदि भी किसी न किसी रूप तथा मात्रा मे उपलब्ध होते हैं। जायसी भी इसका अपवाद नही। उनके जीवन से सम्बन्धित निजी कथनों के अतिरिक्त अन्य लोगो की उक्तियाँ भी उपलब्ध है। इस समग्र सामग्री को दो भागो मे विभक्त किया जा सकता है—अन्तस्साक्ष्य तथा बहिस्साक्ष्य। कवि के स्वकथन प्रथम के और इतर सामग्री द्वितीय के अन्तर्गत है।

अन्तस्साक्ष्य के रूप मे जायसी की कृतियों—आखिरी कलाम, अखरावट, पद्मावत आदि—मे आखिरी कलाम का विशेष महत्त्व है। यद्यपि अन्य रचनाओ मे भी कवि के जीवन-वृत्त विषयक सकेत आए हैं तथापि 'आखिरी कलाम' इस दृष्टि से सर्वाधिक उपयोगी है।

जन्म स्थान

मलिक मुहम्मद जायसी के लिए उपनाम के रूप में प्रयुक्त जायसी शब्द से ही उनकी प्रसिद्धि इस तथ्य की द्योतक है कि जायस नगर से उनका घनिष्ठतम सम्बन्ध

था और सम्भावना यह लगती है कि वे यहाँ पर उत्पन्न हुए थे अथवा बस गए थे। इस सम्बन्ध मे स्वयं कवि का अपना कथन है :—

"जायस नगर मोर अस्थानू। नगरक नाव आदि उदभानू।
तह देवस दस पहुने आएऊं। भा वैराग बहुत सुख पाएऊं।।"

इन पंक्तियो मे प्रयुक्त—तहं देवस दस पहुने आएऊ—शब्दों के आधार पर जार्ज ग्रियर्सन तथा डा० सुधाकर पाण्डे का मत है—जायसी जायस नगर मे उत्पन्न नही हुए थे, वे कही बाहर से आकर वहाँ बसे थे। उनके इस स्थान पर बसने का कारण कदाचित् इस नगर का धार्मिक स्थान होना है। नगर के धार्मिक वातावरण के कारण दस दिन के लिए अतिथि के रूप मे आए धर्मानुरागी जायसी का विरक्त होकर स्थायी रूप से बस जाना है। इसका सकेत स्वय कवि ने इन पंक्तियो मे किया है—

"जायस नगर धर्म अस्थानू। तहा आइ कवि कीन्ह बखानू।"

इस मे 'तहा आइ' शब्द स्पष्ट ही उनके कही बाहर से आकर धर्म-स्थान जायस नगर मे बसने के संकेतक हैं। इस सम्बन्ध मे डा० रामरतन भटनागर का भी यही मत है—"जान पडता है, जायस जायसी का जन्मस्थान नही था। वे दस दिन के पहुने के रूप मे चले आए, परन्तु पीछे वैरागी बन गए। 'आखिरी कलाम' की रचना वैरागी बनने के बाद की बात है। सम्भव है कि इसके बाद लेखक कही अन्यत्र चला गया हो, कदाचित् कालपी। यही वह सूफीमत मे दीक्षित हुआ हो और उसे अपने मोहन कंठ के द्वारा कवि के नाते प्रसिद्धि भी मिल गई हो। यह भी सम्भव है कि पद्मावत की रचना प्रवास मे हुई हो और सूफी दृष्टिकोण के कारण उसे शीघ्र प्रसिद्धि मिल गई हो। जायस को धर्मस्थान मानकर ही कवि ने उसे अपना स्थान बना लिया हो।" जायस को जायसी की जन्मभूमि न मानने वाले गाजीपुर के अन्तर्गत किसी स्थान मे कवि का जन्म मानते हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी आदि विद्वान् उपर्युक्त मत के विरुद्ध है। वे जायस नगर को ही जायसी का जन्मस्थान मानते है। शुक्ल जी के शब्दो मे—

"जायस वाले ऐसा नही कहते। उनके कथनानुसार मलिक मुहम्मद जायस के ही रहने वाले थे। उनके घर का स्थान अब तक वहां के कचाने मुहल्ले मे बताते है।"

आचार्य चतुर्वेदी के शब्दो में—"जायस नाम का एक नगर उत्तरप्रदेश के राय बरेली जिले मे आज भी वर्तमान है, जिसका एक पुराना नाम 'उद्यान नगर', 'उद्या-नगर' या 'उंज्जालिक नगर' बतलाया जाता है तथा उसके 'कंचाना खुर्द' नामक मुहल्ले मे जायसी का जन्मस्थान होना भी कहा जाता है। कुछ लोगों की धारणा है कि जायसी की जन्मभूमि गाजीपुर मे कही हो सकती है किन्तु इसके लिए कोई प्रमाण नहीं मिलता।" जायसी की अर्द्धाली मे प्रयुक्त—तहं दिवस दस पहुने आएऊ······'

का अर्थ आचार्य चतुर्वेदी ने इस प्रकार से किया है—"वे एक पहुने जैसे दस दिनो के लिए आए थे अर्थात् उन्होने अपना नश्वर जीवन प्रारम्भ किया था अथवा जन्म लिया था और फिर वैराग्य हो जाने पर उन्हे बहुत सुख मिला था।" यज्ञदत्त शर्मा ने भी इस पंक्ति का यही अर्थ निकाला है। उनके शब्दो मे—" 'पहुनै' कहने का तात्पर्य भी कुछ विद्वान् कवि के बाहर से आकर जायस मे बसने से ही लगाते है परन्तु हमारे विचार से कवि ने वैराग्य-भावना से प्रेरित होकर ही 'पाहुनै' शब्द का प्रयोग किया है।······दूसरी अर्धाली—जायस नगर धरम अस्थानू, तहा आइ कवि कीन्ह बखानू—मे प्रयुक्त 'आइ' शब्द का अर्थ भी स्पष्ट हो जाता है। उक्त वैराग्य की शब्दावली मे आइ का अर्थ जन्म लेना ही लगाना उचित है।"

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि जायस नगर मे उनके वंशज आज भी विद्यमान हैं और एक टूटा-फूटा मकान भी अभी तक खडा हुआ है, जिसमे जायसी के जन्म तथा निवास की बात कही जाती है।

जायस नगर का पहला नाम उद्यान नगर था और वह एक धर्मस्थान था—इसकी जानकारी भी इतिहास से मिलती है। आचार्य चतुर्वेदी इस सम्बन्ध मे लोकमत के माध्यम से ऐतिहासिक अनुसन्धान का आश्रय लेते हुए लिखते है—"जनश्रुति के अनुसार वहाँ उपनिषद्-कालीन उद्दालक मुनि का कोई आश्रम था। गार्स द तासी नामक फ्रेंच लेखक का तो यह भी कहना है कि जायसी को प्राय 'जायसीदास' नाम से अभिहित किया जाता रहा है।" इस सम्बन्ध मे डा० कमल कुलश्रेष्ठ का कथन है—"जायसनगर के निवासी उदयनगर का सम्बन्ध उद्दालक मुनि से जोडते हैं, जिसकी चर्चा महाभारत आदि ग्रन्थो मे आई है। उद्दालक का अर्थ शहद भी है। सम्भव है कि यह नगर पहले शहद के लिए प्रसिद्ध हो। कुछ लोगो का मत है कि यह उद्यान नगर का बिगडा हुआ रूप है। सम्भव है कि पहले यह जगह उद्यानो के लिए प्रसिद्ध हो। कुछ लोग इसका नाम उज्जालिक नगर भी दे देते है।"

जायस शब्द की व्युत्पत्ति अवध गजेटियर भाग–१, रायबरेली का डिस्ट्रिक्ट गजेटियर तथा दी ज्योग्राफिकल डिक्शनरी आफ एन्शण्ट एण्ड मिडिवल इण्डिया मे भिन्न-भिन्न रूप से इस प्रकार दी गई है—

अवध गजेटियर भाग-१—फारसी मे जैश का अर्थ पडाव होता है। शायद मुसलमानो के यहा पडाव पडने के कारण इस स्थान का नाम जैश पडा हो और जैश से बिगडकर जायस बन गया है।

डिस्ट्रिक्ट गजेटियर रायबरेली—फारसी शब्द जा-ए-एश का अर्थ आनन्ददायक स्थान है। कदाचित् मुसलमानो ने इस स्थान की रमणीयता से मुग्ध होकर यहाँ आनन्द-विनोद किया हो और इस 'जा-ए-एश' से विकृत होकर जायस बन गया है।

दी ज्योग्राफिकल डिक्शनरी आफ एनशण्ट एण्ड मिडिवल इण्डिया—फारसी शब्द जाएस्त का अर्थ "यह (उपजाऊ) भूमि" है। मुसलमानो ने कदाचित् इस भूमि

को उपजाऊ देखकर इसे जाइस्त नाम से अभिहित किया हो और जिसका रूप विकृत होकर जायस बन गया हो।

इन व्युत्पत्तियों से इस स्थान के रमणीय, मनोहर तथा सम्पन्न होने का अनुमान होता है परन्तु आश्चर्य है कि आज मगहर के समान इस स्थान के प्रति भी किंवदन्ती मे प्रतिध्वनित लोकभावना अनुकूल नही। जायसवासी इस स्थान को अच्छा नही मानते। हिन्दू और मुसलमान प्रात.काल इसका नाम ले लेने से दिन-भर भूखा मरना अथवा किसी घोर विपत्ति का झेलना मानते है। कहने की आवश्यकता नही कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे इस प्रकार की भ्रान्त धारणाएं निर्मूल होने पर भी लोक-मानस को आक्रान्त किए रहती है। वर्तमान युग मे शिक्षा का प्रसार भी अभी तक इन्हें नाम शेष तो क्या प्रभावशून्य भी नही कर पाया।

जन्मकाल (जन्मतिथि, स्थितिकाल, मृत्यु-तिथि आदि)

जायसी की 'आखिरी कलाम' मे निम्नलिखित केवल एक उक्ति मिलती है, जिससे उनके जन्मकाल के सम्बन्ध मे कुछ अनुमान लगाया जा सकता है .—

'भा अवतार मोर नौ सदी। तीस बरिस ऊपर कवि बदी।'

इस अर्द्धाली का विभिन्न विद्वानों ने पृथक्-पृथक् अर्थ किया है और इससे जायसी के जन्म के समय के सम्बन्ध मे विभिन्न मत अस्तित्व मे आ गए हैं—

प्रथम · शुक्लजी ने कवि का जन्मकाल ९०० हिजरी और कविताकाल ९३० हिजरी माना है।

डा० गोविन्द त्रिगुणायत ने शुक्ल जी की उपर्युक्त मान्यता का खण्डन इस आधार पर किया है कि—

'सन् नौ सौ सत्ताइस अहा। कथा आरम्भ बैन कवि कहा।

अर्थात् जायसी ने पद्मावत की रचना सत्ताईस वर्ष की आयु मे की थी। त्रिगुणायत जी के अनुसार शुक्ल जी जायसी के कविता-काल का प्रारम्भ तीस वर्ष की आयु से मानते है और जायसी स्वय पद्मावत की रचना का आरम्भ सत्ताईस वर्ष की अवस्था मे कहते हैं।

यहां यह विचारणीय है कि फारसी लिपि मे सत्ताईस और सैंतालीस को प्रायः एक समान ही लिखा जाता है और प्रसंग के अनुसार ही उसका बोध होता है। इस आधार पर कतिपय विद्वानो ने कवि के उक्त कथन—

'सन् नौ सौ सत्ताइस अहा। कथा आरम्भ बन कवि कहा।'

में सत्ताईस को सैंतालीस माना है। इस रूप में सैंतालीस अर्थ लेने पर भी शुक्ल जी का मत समीचीन प्रतीत नहीं होता। शुक्ल जी ने कवि का जन्म ९०० हिजरी और कविताकाल ९३० हिजरी माना है, जबकि कवि की इस पंक्ति के नवीन पाठ के

अनुसार यह ९४७ बैठता है। इस प्रकार कवि का कविता-काल ९२७ मानें अथवा ९४७ हिजरी। शुक्ल जी की मान्यता इससे मेल नही खाती है।

द्वितीय डा० सूर्यकान्त शास्त्री ने उपर्युक्त अर्द्धाली के आधार पर कवि का ९३० हिजरी मे जन्म लेना स्वीकार किया है। इस मत का खण्डन डा० गोविंद त्रिगुणायत ने निम्न दो तर्कों के आधार पर किया है—

(क) जायसी का जन्मकाल ९३० हिजरी मान लेने पर वे कबीर के सम-कालीन ठहरते है किन्तु इस बात का सकेत कही नही मिलता।

(ख) जायसी ने शाहे-वक्त शेरशाह की प्रशंसा की है। शेरशाह के समय तक पहुचने के लिए जायसी की अवस्था सौ वर्ष के लगभग होगी और उस आयु मे पद्मावत जैसे सरस महाकाव्य की रचना संभव नही।

डॉ० त्रिगुणायत के उपर्युक्त दोनो तर्कों मे बल होते हुए उनका निरसन इस प्रकार से किया जा सकता है—

(क) जायसी का साहित्य एक तो पर्याप्त काल तक हिन्दी वालो की दृष्टि से ओझल रहा है, दूसरे, दोनो—कबीर और जायसी—का क्षेत्र पृथक् था। कबीर प्रमुख रूप से समाज-सुधारक थे और जायसी धर्मप्रचारक। कबीर घुमक्कड थे और जायसी एक स्थान पर स्थिर रहने वाले साधक थे। सम्भव है कि जायसी प्रारम्भ मे स्थानीय महत्त्व के कवि रहे हो और कबीर के समान उस समय उनकी प्रसिद्धि न रही हो।

(ख) पद्मावत मे जायसी के प्रस्तुत कथन से सिद्ध होता है कि वे पद्मावत की रचना करते समय नहीं तो समाप्ति के समय काफी वृद्ध हो चुके थे—

"मुहमद बिरिध बएस अब भई। जीवन हुत जो अवस्था गई।
बल जो गएउ कै खीन सरीरू। दिस्टि गई नैनन्ह दै नीरू।
दसन गए कै तुचा कपोला। बैन गए दै अनरुचि बोला।
बुद्धि गई हिरदै बौराई। गरब गएउ तरहुड सिर नाई।
सरवन गए ऊंच दै सुना। गारौ गएउ सीस भा धुना।
भवर गएउ केसन्ह दै भुवा। जोबन गएउ जियत जनु मुवा।
तब लगि जीवन जोबन साथा। पुनि सो मीचु पराए हाथा।

बिरिध जो सीस डोलावै सीस धुनै तेहि रीस।
बूढ आढे होहु तुम्ह केह यह दीन्ह असीस॥"

इस प्रकार यद्यपि इन तर्कों का खण्डन किया जा सकता है परन्तु फिर भी इन तर्कों मे बल है। असली बात यह है कि कवि ९२७ अथवा ९४७ मे कविता-रचना की बात कह रहा है। रचना-काल ९४७ मानने पर भी १७ वर्ष के युवक से

दार्शनिक विवेचन की आशा नही की जा सकती। अत उपर्युक्त मत तर्कपुष्ट तथा संगत नही।

तृतीय : आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने ८८१ हिजरी अर्थात् सन् १४७५ ई० मे जायसी का जन्म माना है। इसमे उन्होने एक तो कवि द्वारा शाहे-वक्त की प्रशसा को और द्वितीय अखरावट के रचना-काल को तथा तृतीय कवि द्वारा वर्णित प्रचण्ड भूकम्प को प्रमाण रूप मे प्रस्तुत किया है। उनके शब्दो मे—"जायसी ने आखिरी कलाम का रचना-काल देते समय केवल इतना ही कहा है—

'नौ से बरस छतीस जो भए। तब यह कविता आखर कहे।'

अर्थात् सन् ९३६ हि० अथवा सन् १५२९ ई० के आ जाने पर मैंने इस काव्य का निर्माण किया। पद्मावत (१३-२७) मे उन्होने सुलतान शेरशाह सूर (सन् १५४०-४५ ई०) तथा आखिरी कलाम (८) मे मुगल बादशाह बाबर (सन् १५२६-३० ई०) के नाम शाहेवक्त के रूप मे अवश्य लिए है और उनकी न्यूनाधिक प्रशसा भी की है, जिससे सूचित होता है कि वे उनके समकालीन थे।"

'अखरावट' के रचनाकाल के आधार पर जायसी की जन्मतिथि के निर्णय के प्रसंग मे आचार्य चतुर्वेदी का कथन है—"मनेरशरीफ (जिला पटना, बिहार) वाले खानकाह के पुस्तकालय मे फारसी अक्षरों मे लिखित पुरानी प्रतियो का एक सग्रह मिला है, जिसमे जायसी की अखरावट की भी एक प्रति मिली है। उसमे उसका लिपिकाल जुम्मा ८ जुल्काद सन् ९११ हिजरी (सन् १५०५ ई०) दिया गया जान पडता है जो प्रत्यक्षत: पुराना समय है। प्रोफेसर सैयद हसन अस्करी का कथन है कि यह वस्तुत अखरावट का रचनाकाल होगा, जो प्रतिलिपि करते समय मूल प्रति से ज्यो का त्यों उद्धृत कर लिया होगा। तदनुसार उनका कहना है कि यदि वह जायसी की सर्वप्रथम रचना सिद्ध की जा सके तो उनके जन्म-संवत् का पता लगा लेना हमारे लिए असम्भव नही रह जाता। सन् ९११ हिजरी अर्थात् सन् १५०५ मे उपर्युक्त ३० वर्ष का समय घटाकर सन् ८८१ हि० अर्थात् १४७५ ई० लाया जा सकता है। और यह सरलतापूर्वक बतलाया जा सकता है कि जायसी का जन्म इसके आसपास हुआ होगा।"

जायसी द्वारा आखिरी कलाम मे अपने जन्म के समय एक बडे भारी भूकम्प आने की चर्चा करते हैं—

"आवत उधत-चार विधि ठाना। भा भूकम्प जगत अकुलाना।
धरती दीह्न चक्रविधि भाई। फिरै आकास रहट के नाई॥"

इसी प्रकार जायसी ने अपने जन्म के समय होने वाले सूर्यग्रहण का भी उल्लेख किया है—

"सूरुज (अस) सेवक ताकर अहै। आठों पहर फिरत जो रहै।
सो अस बपुरैं गहनै लीन्हा। ओ धरि बान्धि चंडालै दीन्हा।।"

इतिहासकारो ने इन घटनाओ का समय ९११ हिजरी माना है। अब्दुल्लाह की 'तारीखे दाऊदी' तथा बदायूनी की 'मुन्तखुत्तारीख' मे इसी समय (९११ हि०) मे हुए भूकम्प का उल्लेख हुआ है। डा० ईश्वरीप्रसाद ने 'ए शार्ट हिस्टरी आफ मुसलिम रूल इन इण्डिया' पृ० २३२ पर इस घटना का वर्णन इस प्रकार से किया है—

"Next year (911 AH=1305 AD) a violent earthquake occured at Agra which shook the earth to it's foundation and levaled many beautiful buildings and houses to the famous."

इस सम्बन्ध मे आचार्य चतुर्वेदी का कथन है—"आखिरी कलाम के उद्धरण के आधार पर केवल इतना ही अनुमान किया जा सकता है कि उनका जन्म सम्भवतः ८००–९०० हिजरी के मध्य अर्थात् ई० सन् १३९७–१४९४ के बीच हुआ होगा और बीस वर्ष की अवस्था पा चुकने पर उन्होने काव्य-रचना का प्रारम्भ किया होगा।"

यह सब कहने के उपरान्त आचार्य चतुर्वेदी ने एक अन्य आशका की ओर समीक्षको का ध्यान आकृष्ट करते हुए अपने मतव्य को स्वय सदिग्ध बना दिया है—" 'तीस बरिस ऊपर कवि वदी' के अनन्तर आए हुए 'आवत उधतभार बडहाना' के आवत शब्द की ओर कदाचित् यथेष्ट ध्यान नही दिया गया है। यदि इसका अभिप्राय 'जन्म लेते समय' माना जाए तो उससे ग्रथ-रचना के समय का अर्थ नही लिया जा सकता।"

इस प्रकार आचार्य चतुर्वेदी ने आधार को ही खिसकाकर सारे मन्तव्य को विचारणीय बना दिया है। निष्कर्ष रूप मे उनका कथन है—"जब तक अन्य स्पष्ट प्रमाण उपलब्ध न हो, जन्मसम्बन्धी उपर्युक्त धारणा सन्दिग्ध बनी रहती है।"

चतुर्थ डा० गोविन्द त्रिगुणायत के अनुसार इस पंक्ति—"भा अवतार मोर नव सती, तीस बरस ऊपर कवि वदी" का अर्थ ९०० मे से तीस घटाकर ८७० हिजरी तदनुसार १४७५ ई० है।[1] अपने मत के समर्थन मे उन्होंने निम्नोक्त दो तर्क प्रस्तुत किए हैं। उनके शब्दो मे—

(१) "उनका यह समय कबीर के समय से बहुत दूर नही पडता। साथ ही वह कबीर के समकालीन सिद्ध नही होते हैं।

(२) जायसी ने पद्मावत की रचना ९४७ मे की थी। उपर्युक्त जन्मतिथि के अनुसार उनकी यह रचना लगभग ७७ वर्ष की अवस्था मे सम्पन्न हुई थी। काव्यत्व और आध्यात्मिक विचारधारा को देखते हुए यह स्वीकार करने मे संकोच नही होता। ऐसी प्रौढ रचना अवश्य ही खूब प्रौढावस्था मे हुई होगी।

(३) आखिरी कलाम का रचना-काल ९३६ हिजरी अर्थात् १५३१ ई० है।

उस समय कवि की अवस्था ६७ वर्ष की रही होगी। रचना की आध्यात्मिक विचारधारा को देखते हुए इतनी अवस्था मे उसका रचा जाना बहुत उचित भी नही मालूम पडता। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जायसी का जन्म लगभग ८७० हिजरी मे हुआ।"

हमारे विचार मे डॉ० त्रिगुणायत का मत सर्वथा उपयुक्त तथा मननीय है। इसमे आचार्य परशुराम चतुर्वेदी द्वारा निर्दिष्ट "आवत उद्यतमारा" को ध्यान मे रखने पर भी कवि का जन्मकाल हिजरी सन् ८७० सही बैठता है।

सैयद आले मुहम्मद मेहर ने किसी काजी सैयद हुसैन की अपनी नोट बुक मे दी गई ५ रजब ९४९ हि० अर्थात् सन् १५४२ ई० को जायसी की निधनतिथि माना है। इसके सम्बन्ध मे भी आचार्य परशुराम का कथन है—"उसे भी तब तक स्वीकार नही किया जा सकता, जब तक उसका कही से समर्थन न हो जाए।"

यह उल्लेखनीय है कि सैयद काजिर नाजिर उद्दीन साहब तथा आचार्य शुक्ल जायसी की निधनतिथि सन् १५४२ ही मानते हैं। यह तिथि मानने से शाहेवक्त शेरशाह की प्रशंसा के वर्णन तथा १५४० ई० मे उनका अमेठी जाना आदि घटनाओं की संगति बैठ जाती है।

गुलाम सरवर लाहौरी तथा कल्बे मुस्तफा द्वारा स्वीकृत जायसी की मृत्युतिथि क्रमश १६२९ और १६४९ ई० तथ्यो के विपरीत होने से सर्वथा अमान्य है।

जायसी की मृत्यु से संबधित एक किंवदन्ती भी प्रचलित है। कहते हैं कि जायसी ने अमेठी के राजा रामसिंह से किसी शिकारी के हाथो अपनी मृत्यु की बात कही थी और राजा ने जायसी के प्रति भक्ति के कारण आसपास के इलाके मे शिकार की मनाही कर दी थी। एक दिन सयोगवश एक शिकारी उधर जा निकला और उसने एक बाघ की गरज सुनी। शिकारी ने आत्मरक्षा के लिए गोली दाग दी और उसे सामने जायसी की लाश पडी हुई मिली। यह कहा जाता है कि जायसी रूप बदलने मे सिद्ध थे और समय-समय पर स्वेच्छा से बाघ के रूप मे घूमा करते थे। राजा ने विधि के विधान को अपरिहार्य मानकर सिर पीट लिया और श्रद्धा-वश जायसी की कब्र अपने महल के प्रागण मे ही बनवा दी। इस घटना के सन् १६५९ मे घटित होने के अनुमान का उल्लेख नागरी प्रचारिणी पत्रिका (अंक संख्या ३१) मे हुआ है।

निष्कर्षत जायसी का स्थितिकाल अनुमानतः ई० सन् १४६५–१५४२ है और रचनाध्काल १४९५–१५४२ के मध्य है। उनकी जन्म-तिथि और मृत्यु-तिथि अनिश्चित है परन्तु इतना निश्चित लगता है कि वे १४६५-७५ के मध्य किसी समय

---

१. गणना से ८७० हि० का ईसवी सन् १४६४–६५ बैठता है।

उत्पन्न हुए होंगे और कदाचित् उन्होने सत्तर से ऊपर की आयु अवश्य पाई थी। इस विषय मे अनुमान की ही शरण लेनी पडती है। प्रमाणो के अभाव मे निश्चित रूप से कुछ कहना सम्भव नही।

नाम, जाति, वंश-परम्परा तथा मित्र मण्डली

जायसी के नाम के सम्बन्ध मे कोई मतभेद नही। सभी अनुसधाताओं, समीक्षको तथा इतिहासकारो ने इनका नाम मुहम्मद माना है। इनके नाम से पूर्व लगी मलिक उपाधि उन्हे फरिश्ता सिद्ध करती है। म ल क धातु से बने मलिक शब्द के अर्थ है—फरिश्ता, सुलतान, अमीर व्यापारी। जायसी के नाम से लगी इस उपाधि के आधार पर आचार्य परशुराम चतुर्वेदी उनके पूर्व पुरुषो को ईरान से भारत आए जमीदार मानते है। उनके शब्दो मे—"जायसी के पूर्वज ईरान से आये थे और वहाँ से उनके नामो के साथ यह (मलिक) जमीदार-सूचक उपाधि लगी आ रही थी।"

इसके विपरीत डॉ० त्रिगुणायत ने मलिक का अर्थ बादशाह आदि लेते हुए जायसी के पूर्व पुरुषो को अरब से आए हुए पारम्परिक मुसलमान माना है। उनके शब्दो मे—"मलिक शब्द का अर्थ होता है—बादशाह, सुलतान, अमीर या बडा व्यापारी। इससे यह पदवी प्राय. अरब के बडे व्यापारियो एव जागीरदारो को प्राप्त थी। वश-परम्परा से जायसी भी इस पदवी से अधिष्ठित किए जाते है। इससे यह भी प्रकट होता है कि इनके वंशज अरब से आए थे और यह परम्परा से मुसलमान थे, भारतीय मुसलमान नही।"

हमारा अनुमान है कि जायसी के पूर्व पुरुष आदर्श व्यापारी ही रहे होगे। मलिक शब्द का प्रयोग साधारण व्यापारी के लिए न होकर ईमानदार, धर्मपरायण व्यापारी के लिए ही होता होगा। उनका अरब से ईरान अथवा ईरान से अरब और फिर वहा से भारत मे आगमन व्यापारी के रूप में ही हुआ होगा। कृषि-व्यापार मे प्रवृत्त होने से सम्भवत. वह स्वय जमीदार भी रहे होगे परन्तु जायसी के पिता एक साधारण जमीदार थे और स्वय जायसी का कृषि से जीविका-निर्वाह करना प्रसिद्ध है। इसे भाग्य का परिवर्तन ही कहा जा सकता है।

जायसी के नाम के आगे प्रयुक्त मलिक उपाधि से उन्हें सैनिक समझने की कल्पना को अस्वीकार करते हुए चतुर्वेदी जी का कहना है—"कुछ लोगो का अनुमान करना कि मलिक शब्द का प्रयोग उनके किसी निकट सम्बन्धी के 'बारह हजार का रिसालदार' होने के कारण किया जाता होगा अथवा यह कि सम्भवत स्वय ही उन्होने कुछ समय तक सेना मे काम किया होगा—प्रमाणो के अभाव मे सन्दिग्ध ही रह जाता है।"

जायसी के पुत्रो के छत गिरने से दबकर मर जाने के कारण इनका वश तो आगे नही चला परन्तु इनके एक भाई का वंश अब भी जायस मे विद्यमान है। इस

परिवार के पास जायसी का वंशवृक्ष भी है परन्तु उसकी प्रामाणिकता असन्दिग्ध नही है। श्री यज्ञदत्त शर्मा ने जायसी के **पिता का नाम** शेख ममरेज अथवा मलिक राजे अशरफ बताया है। डॉ० त्रिगुणायत के अनुसार जायसी के पिता का नाम शेख मुमरेज था। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार—"जायसी के पिता का नाम मलिक राजे अशरफ बताया जाता है।" जायसी की माता के नाम का पता नही चलता। अपनी माँ का सहज वात्सल्य इन्हें प्राप्त था। नागरी प्रचारिणी पत्रिका के ४५वे अंक में प्रकाशित सैयद आले के लेख के अनुसार वे (जायसी) मोहल्ला गौरियाना के निगलामी मलिक खानदान से थे और उनके पुराने सम्बन्धी मुहल्ला कंचाना मे बसे थे। कल्बे मुस्तफा साहब के अनुसार जायसी के तीन भाइयो—मलिक शेख मुसफी, मलिक शेख मुजफ्फर और मलिक शेख हाफिज—मे से अन्तिम हाफिज के वशज आज भी रायबरेली जिले मे वर्तमान है। कतिपय विद्वानो ने शेख मुन्सफी को छोडकर जायसी के दो ही भाइयो का उल्लेख किया है। नागरी प्रचारिणी सभा के २१वें अक मे प्रकाशित एक लेख के अनुसार जायस के एक शेख के पास मलिक मुहम्मद जायसी का वंशवृक्ष है परन्तु अब परीक्षा के उपरान्त उसकी प्राचीनता और प्रामाणिकता असिद्ध हो चुकी है।

जायसी के **विवाह** के सम्बन्ध मे कोई अन्तस्साक्ष्य और बहिस्साक्ष्य उपलब्ध नही। इस सम्बन्ध मे परस्पर-विरोधी किंवदन्तियां अवश्य मिलती है। एक किंवदन्ती के अनुसार बाल्यकाल मे ही माता-पिता से वञ्चित हो जाने के कारण जायसी साधु-सतो की संगति मे जीवन व्यतीत करने लगे थे। मृत्यु-पर्यन्त उन्होने विरक्त जीवन ही बिताया। वे विवाह आदि के झझट मे नही पडे। एक दूसरी किंवदन्ती के अनुसार इनका विवाह हुआ था और इनके सात पुत्र हुए थे जो मकान की छत गिरने से दबकर अथवा गुरु से शापित होकर मर गए थे और इस घटना ने इन्हे पूर्ण विरक्त बना दिया था। सैयद आले ने जायसी के विवाहित जीवन का समर्थन करते हुए उनके मलिक कबीर नाम का पुत्र होना माना है।

जायसी ने पद्मावत मे अपने **चार मित्रो** से अपनी अनन्यता का वर्णन किया है—

> मोहम्मद चारिउ मीत मिलि भयेउ जो एकै चित्त।
> यहि जग साथ जु निबहा ओ जग बिछुरन कत्त॥

इन चार मित्रो का परिचय जायसी ने इस प्रकार दिया है—यूसुफ मलिक पण्डित और ज्ञानी थे, सालार खादिम और मियां सलोने बडे वीर, युद्धप्रिय तथा साहसी थे, शेख बडे सिद्ध महापुरुष थे। इन चारो मित्रो के साथ मिलकर जायसी एकचित्त हो गए थे। इन चारो का परिचय देने का प्रयत्न आले मेहर साहब ने किया अवश्य है परन्तु सत्य यह है कि जायसी के पूर्वजों और वंशजो के समान उनके मित्रों के सम्बन्ध मे भी प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध नही।

गुरु तथा शिक्षा-दीक्षा

जायसी ने अपनी रचनाओं मे अपनी गुरु-परम्पराओ का उल्लेख किया है। पद्मावत (स्तुति खण्ड) मे उनका कहना है—

सैयद अशरफ पीर पियारा। जेहि मोहि दीन्ह पंथ उजियारा।
लैसा हिएँ पेम कर दिया। उठी जोति भा निरमल हिया।
मारग हुत अंधियार असूझा। भा अजोर सब जान बूझा।
खार समुद्र पाप मोर मेला। बोहित धरम लीन्ह कइ चेला।
उन्ह मोर करिअ पोढकर गहा। पाएस तीर-घाट जो अहा।
जहागीर ओइ चिस्ती निहकलक जस चाद।
ओई मखदूम जगत् के हौ उनके घर बाद॥

अर्थात् सैयद अशरफ, जो एक प्रिय सन्त थे, मेरे लिए उज्ज्वल पथ के प्रदर्शक बने और उन्होने प्रेम का दीपक जलाकर मेरा हृदय निर्मल कर दिया। उनका चेला बन जाने पर मै अपने पाप के खारे समुद्री जल को उन्ही की नाव द्वारा पार कर गया और मुझे उनकी सहायता से घाट मिल गया। वे जहागीर चिश्ती चाद जैसे निष्कलक थे, ससार के मालिक थे और मैं उनके घर का सेवक हूं।

इस सैयद अशरफ की वश-परम्परा का परिचय देते हुए कवि लिखता है—

उन्ह घर रतन एक निरमरा। हाजी सेख सभागई भरा।
तिन्ह घर दुइ दीपक उजियारे। पंथ देइ कहु दइअ संवारे।
सेख मुबारक पुनिउ करा। सेख कमाल जगत् निरमरा।

अर्थात् सैयद अशरफ जहागीर चिश्ती के वश मे निर्मल रत्न जैसे शेख हाजी हुए तथा उनके अनन्तर शेख मुबारक और शेख कमाल हुए।

इसी प्रकार से ही जायसी ने 'आखिरी कलाम' मे सैयद अशरफ की गुरुरूप मे स्तुति की है और अपने को उनके घर का सेवक बतलाया है—

जहागीर चिस्ती निरमरा। कुल जग मा दीपक विधि धरा।
औ निहग दरिया जल महा। बूढत कहं धरि काढत बाहा।
समुद माझ जो बोहित फिरई। लेते नाव सहूं होइ तरई।
तिन घर हौ मुरीद सो पीरू। संवरत गुन लावै वीरू।

'अखरावट' मे भी जायसी ने सैयद जहागीर अशरफ से दीक्षा ग्रहण कर अपने उद्धार का वर्णन किया है—

कही सरीयत चिसती पीरू। उधरित असरफ औ जहांगीरू।
तेहि के नाव चढा हौ धाई। देखि समुद जल जिउ न डेराई।

जायसी ने अपनी रचनाओ मे मोहदी या महदी गुरु शेख बुरहान का भी गुरु

रूप मे उल्लेख और उनकी परम्परा का वर्णन किया है। पद्मावत मे उनका कथन है—

> गुरु मोहदी खेवक मै सेवा। चलै उताइल जिन्ह कर सेवा।
> अगुआ भएउ लेख बुरहानू। पंथ लाइ जेहिं दीन्ह गिआनू।
> अलहदाद भल तिन्ह कर गुरु। दीन दुनिअ रोशन सुरखुरु।
> सैयद मुहमद के ओइ चेला। सिद्ध पुरुष संगम जेहि खेला।
> दानिआल गुरु पंथ लखाए। हजरत ख्वाज खिजिर तिन्ह पाए।
> भए परसन ओहि हजरत ख्वाजे। लइ मेरए जहं सैयद राजे।
> उन्ह सौ मैं पाइ ज करनी। उघरी जीभ प्रेम कवि बरनी।
> ओइ सो गुरु हौ चेला नित विनवौ भा चेर।
> उन्ह हुति देखइ पावौ दरस गोसाई केर।

अर्थात् मैने खेनेवाले मोहदी गुरु की सेवा की है, जिनका सेवक वेग के साथ चला करता है। शेख बुरहान ने पथ-प्रदर्शन कर ज्ञान प्रदान किया, उनके गुरु अलहदाद थे, जो सैयद मुहम्मद के शिष्य थे तथा उनके पास सिद्ध पुरुष रहा करते थे। सैयद मुहम्मद के गुरु दानियाल थे, जिन पर प्रसन्न होकर ख्वाजा खिज्र ने उन्हे सैयद राजे से मिला दिया था। उन गुरु के द्वारा कर्म की योग्यता प्राप्त करते ही मेरी वाणी खुल गई और मैं प्रेम का वर्णन करने लग गया। मैं ऐसे गुरु का चेला बनकर नित्य उनकी विनती करता हूं और उन्ही की कृपा से परमात्मा के दर्शन पाने की आशा रखता हू।

'अखरावट' मे भी जायसी ने इसी प्रकार से शेख मोहदी का गुरु-रूप मे उल्लेख और उनकी परम्परा का परिचय दिया है—

> पा पाएउ गुरु मोहदी मीठा। मिला पंथ सो दरसन दीठा।
> नाव पियार सेख बुरहानू। नगर कालपी हुत गुरु थानी।
> औ तिन्ह दरस गोसाईं पावा। अलहदाद गुरु पथ लखावा।
> अलहदाद गुरु सिद्ध नवेला। सैयद मुहम्मद के वै चेला।
> सैयद मुहमद दीनहि साचा। दानियाल सिख दीन्ह सबाचा।
> जुग जुग अमर सो हजरत ख्वाजे। हजरत नबी रसूल नेवाजे।
> दानियाल वह परगट कीन्हा। हजरत ख्वाज खिजिर पथ दीन्हा।

अर्थात् मैंने मीठा मोहदी गुरु पा लिया, जिसका प्रिय नाम शेख बुरहान है और जिसका गुरु-स्थान कालपी नगर है। उन्होने गोसाईं (परमात्मा) के दर्शन पा लिए है और उन्हे अलहदाद गुरु ने पन्थ दिखाया था। अलहदाद नवेला सिद्ध थे और वे सैयद मुहम्मद के शिष्य थे, जिन्हे अमर ख्वाजा खिज्र से सहायता पाने वाले दानियाल ने दीक्षित किया था।

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने 'चित्ररेखा' (पृ० ७४) मे भी कवि जायसी द्वारा मोहदी के अपना गुरु होने के उल्लेख का वर्णन किया है। उनके शब्दो मे जायसी के अनुसार—"शेख बुरहान महदी गुरु है, जिनका स्थान कालपी है, जिन्होने चार बार मक्के की यात्रा की है तथा जो किसी को भी स्पर्श करके उसके पाप दूर कर देते है। वे ही मेरे गुरु है और मैं उनका चेला हू तथा उन्होने अपना हाथ मेरे सिर पर रखकर मेरा पाप धो दिया है और प्रेम के प्याले को स्वयं चखकर उसकी बूद मुझे भी चखा दी है।"

इस प्रकार जायसी ने अपने दो गुरुओ—शेख अशरफ तथा शेख बुरहान का उल्लेख किया है और दोनो के प्रति समान रूप से श्रद्धा का भाव दिखाया है। अब विचारणीय यह है कि क्या जायसी सचमुच दो गुरुओ से दीक्षित हुए थे अथवा एक से! शेख अशरफ के सम्बन्ध मे आचार्य चतुर्वेदी का कथन है—"सैयद अशरफ जहांगीर चिश्ती, जो शिमनानी नाम से भी प्रसिद्ध हैं और जिनका निवास-स्थान कछोछा (जि० फैजाबाद) बताया जाता है, सम्भवतः सन् १४०१ मे ही मर चुके थे।

अतः उनके द्वारा जायसी का चेला बनाया जाना (लेन्ह कई चेला) सम्भव नही जान पडता। अधिक सम्भव यह है कि जायसी को उनके वशज या प्रशिष्य शेख मुबारक से प्रत्यक्ष प्रेरणा मिली होगी। इन्हे शेख मुबारक बोदला भी कहा जाता है। इस आधार पर इनके "हौ उन्हके घर बाद" एवं "तिन्ह घर हौ मुरीद सो पीरू" कथन सार्थक हो जाते है। हाल मे उपलब्ध 'चित्ररेखा' नामक रचना मे भी जो जायसी द्वारा रचित कही जाती है, सय्यद अश्मूफ के सम्बन्ध मे केवल "हौ मुरीद सेवौ तिन वारा" कहा गया है तथा शेख मुबारक को करिआ (कर्णधार) तथा शेख जमाल को खेवट (नाव खेने वाला) कहा गया है। ये शेख जमाल शेख कमाल ही है।"

इस प्रकार आचार्य जी के अनुसार जायसी सीधे शेख अशरफ के शिष्य (चेला) न होकर उनकी शिष्य-परम्परा के अन्तर्गत किसी सिद्ध (शेख मुबारक) के शिष्य थे। शेख बुरहान के सम्बन्ध में चतुर्वेदी जी का कहना है—"सूफियों की परम्परा के इतिहास से पता चलता है कि उसकी चिश्तिया शाखा की 'अलाई' नामक उपशाखा मानिकपुर मे स्थापित हुई थी। उसके प्रमुख प्रचारक शेख हिशामुद्दीन थे, जिनका देहान्त सन् ८५३ हि (१४४९ ई०) मे हुआ था और जिनके शिष्य सैयद राजे हामिद शाह (मृत्यु १४९५ ई०) थे। सैयद राजे के ही शिष्य दानियाल के विषय मे कहा जाता है कि अमर ख्वाजा से उनकी भेंट हुई थी। वे जौनपुर के सुलतान हुसैन शाह शर्की (सन् १४५७-७८) के समकालीन थे और इन्ही के शिष्यों मे सैयद मुहम्मद जौनपुरी (मृत्यु सन् १५०५ ई०) थे, जिन्होने सन् १५०० ई० मे महदवी आदोलन चलाया था तथा उसी के कारण सम्भवतः उनके अनुयायियों को भी महदी कहा जाने लगा। सैयद मुहम्मद के शिष्य शेख अलहदाद (मृत्यु १५१७ ई०) हुए, जिनके शिष्य प्रसिद्ध शेख इब्राहीम दरवेश बुरहान कालपी वाले (१४६५-१५६३ ई०) थे और

जान पडता है कि इन्ही को जायसी ने अपना प्रत्यक्ष महदी गुरु कहकर इनकी पूरी गुरु-परम्परा भी दे दी है।"

वस्तुत: जायसी के इन दोनों गुरुओ—शेख अशरफ और शेख बुरहान की परम्परा का मूल एक है ही। दोनो के आदि गुरु ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती हैं। दोनो की परम्परा इस प्रकार से है—
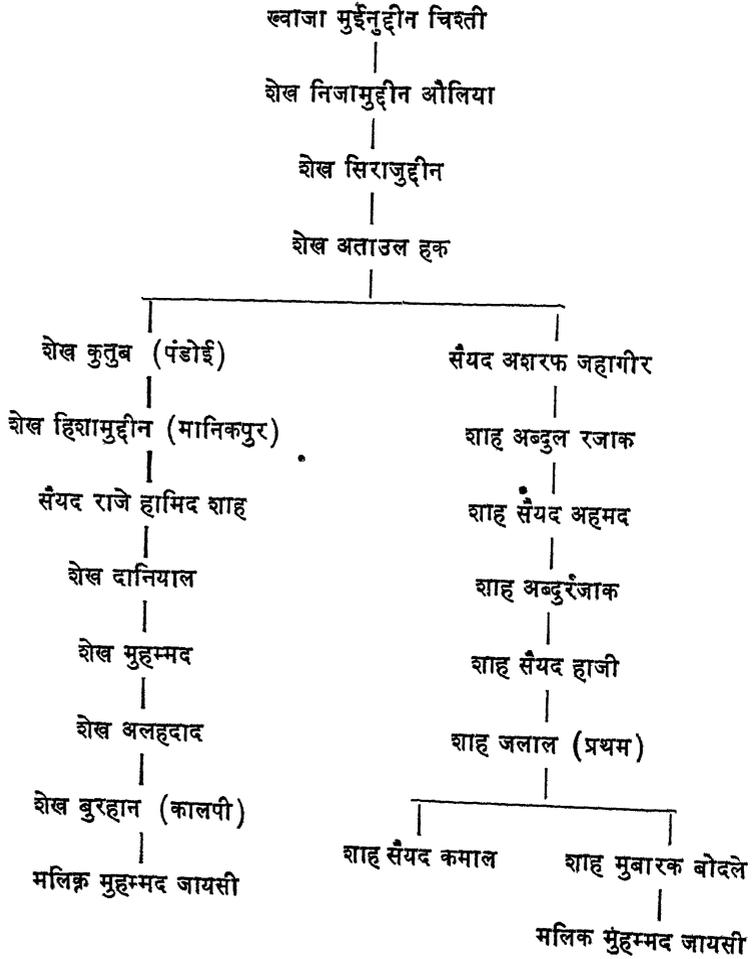
इस प्रकार दोनो शाखाओ के उद्गम-स्रोत एक होने से जायसी का उन दोनो से सम्बन्धित और प्रभावित होना सम्भव प्रतीत होता है। इस सम्बन्ध मे चतुर्वेदीजी का अनुमान है—"हो सकता है कि जायसी का मूल सम्बन्ध यद्यपि सैयद अशरफ

जहांगीर चिश्ती के घराने से रहा हो, वे महदी शेख बुरहान द्वारा विशेष प्रभावित थे।" अपनी उक्त धारणा के आधार का उल्लेख करते हुए चतुर्वेदी जी का कथन है—"उन्होने (जायसी ने) दोनो परम्पराओं का परिचय भी दो भिन्न-भिन्न शैलियों मे दिया है।" इस प्रकार जायसी की रचनाओ से प्रमाणित होता है कि सैयद अशरफ उनके गुरु थे और शेख बुरहान उनके गुरु समान थे। इस विषय मे आचार्य शुक्ल का कथन है—"इससे हमारा अनुमान है कि उनके दीक्षा-गुरु तो थे सैयद अशरफ, पर पीछे से उन्होने मुहीउद्दीन की भी सेवा करके उनसे बहुत कुछ ज्ञानोपदेश और शिक्षा प्राप्त की।" इस सम्बन्ध में डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत का भी यही मत है। उनके शब्दो मे—(जायसी ने) 'अखरावट' मे भी पद्मावत के समान ही अपनी दो गुरु-परम्पराओ का उल्लेख किया है। किन्तु यहा पर इन्होंने प्रथम परम्परा मे केवल निजामुद्दीन चिश्ती तथा अशरफ जहांगीर के प्रति ही श्रद्धा प्रकट की है। दूसरी परपरा पूर्ण नही दी गई है। हजरत ख्वाजा खिजिर तक लाकर ही उसे समाप्त कर दिया गया है। इसमे सैयद राजे का नाम भी नही है। 'आखिरी कलाम' मे इन्होने सैयद अशरफ के प्रति निम्नलिखित शब्दो मे श्रद्धा प्रकट की है—

'मानिक एकु पायउ उजियारा। सैयद अशरफ पीर पियारा।'

इसमे प्रकट होता है कि इनके प्रति उनकी अटूट श्रद्धा थी। ये जायस के ही एक प्रसिद्ध सूफी सन्त थे। इनकी दरगाह जायस मे अब भी वर्तमान है। अतः यह स्वीकार करने मे सकोच नही करना चाहिए कि गुरु अशरफ जहांगीर के उत्तराधिकारी शेख मुबारक ही इनके श्रद्धेय गुरुवर थे।"

इस निर्णयात्मक कथन के उपरान्त डा० त्रिगुणायत आगे लिखते है—"शेख मेहदी या मुहीउद्दीन से इन्होने कब और कैसे दीक्षा प्राप्त की थी—यह बहुत स्पष्ट नहीं। शेख मेहदी का सम्बन्ध जायसी के नाना अलहदाद से था। सम्भव है इसीलिए जायसी ने अपने प्रारंभिक जीवन में उनसे ही गुरु-रूप मे सत्संग प्राप्त किया हो, जो भी हो, इतना तो निश्चित है कि जायसी के दो गुरु थे।" डॉ० त्रिगुणायत के उक्त कथन से यही सिद्ध होता है कि जायसी के गुरु तो शेख मुबारक ही थे परन्तु शेख बुरहान के सत्सग से भी वे इतने प्रभावित थे कि उन्हे गुरु-रूप मे मानते थे। आचार्य शुक्ल तथा डॉ० त्रिगुणायत ने जायसी के दोनो गुरुओ की चर्चा करते हुए शेख अलहदाद के शिष्य का नाम बुरहान और उनके शिष्य का नाम मुहीउद्दीन दिया है। इसका खण्डन आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने इन शब्दो में किया है—"कुछ लोगो ने 'पद्मावत' और 'अखरावट' के 'महदी गुरु' को किसी विशिष्ट व्यक्ति शेख मुहीउद्दीन के रूप में शेख बुरहान से पृथक् मान लेने की भूल की थी, जिसका निराकरण 'चित्र-रेखा' के—'महदी गुरु शेख बुरहानू'—कथन द्वारा होता है और 'महदी' शब्द केवल पदवी मात्र सिद्ध होता है।"

समग्रतः जायसी के श्रद्धेय गुरु शेख मुबारक बोदले थे और शेख बुरहान से अत्यन्त प्रभावित होने के कारण उनके प्रति भी जायसी ने पूर्ण श्रद्धा का भाव दिखाया है।

पुस्तकी शिक्षा

जायसी की विधिवत् शिक्षा के विषय मे कोई निश्चित जानकारी नही मिलती। यह कहा अवश्य जाता है कि बचपन मे उन्होंने विधिवत् शिक्षा ग्रहण की थी। यह भी कहा जाता है कि जायसी को बचपन मे कुछ दिनो के लिए अपनी ननिहाल रहना पडा था और उसके उपरान्त विवाह हो जाने पर कुछ दिन उन्होने ससुराल मे व्यतीत किए थे। इन दोनों स्थानो पर इनके पढते-लिखते रहने (नियमित शिक्षा लेने) की लोक-श्रुति उपलब्ध है। विवाह के पश्चात् भी शिक्षा ग्रहण करते रहने से इनका विद्या-व्यसनी होना प्रतीत होता है, परन्तु इस सबके लिए कोई निश्चित प्रमाण नहीं मिलता।

जायसी का अध्ययन गम्भीर हो अथवा नही परन्तु वे बहुश्रुत अवश्य थे। वस्तुतः वे पर्यटनशील व्यक्ति थे। बचपन से ही वे साधु-सग और महात्माओ के सम्पर्क मे रहे—इस तथ्य के प्रमाण उपलब्ध हैं। उनका सत्संग मुसलमान सन्तो के अतिरिक्त गोरखपंथी योगियो, रसायनियो, वेदान्तियो तथा अन्य नाना मतावलम्बी महात्माओ के साथ निरन्तर चलता था। उन्होने हठयोग, वेदात, रसायन आदि बहुत सी हिन्दुओं की और बका, फना, शरीयत-तरीकत आदि बहुत-सी मुसलमानो की बाते सत्सग द्वारा ही सीखी थी। उनकी विशेषता यह थी कि वे सभी धर्म के सन्तो को समान रूप से आदर देते थे और सभी की सुनकर ग्रहणीय सार का सग्रह कर लेते थे।

समग्रतः जायसी ने नियमित शिक्षा ग्रहण की हो अथवा न की हो, सत्सग द्वारा उन्होने न केवल अपने गुणो का विकास किया प्रत्युत सत्य का परिचय भी प्राप्त किया।

जायसी का व्यक्तित्व (बाह्य तथा आन्तरिक)

पद्मावत के निम्नलिखित दोहे के अनुसार जब से जायसी का प्रियतम उनके दाहिनी होकर प्रत्यक्ष हुआ था, तब से उन्होने बाईं दिशा की ओर देखना-सुनना ही छोड दिया था—

> मुहमद बाईं दिसि तजी एक सर वन एक आँखि।
> जब ते दाहिन होइ मिला बोला पपीहा पांखि॥

इसका स्पष्ट अभिप्राय यह है कि उनका बायां कान और नेत्र निरर्थक हो गए थे। इस तथ्य का समर्थन 'पद्मावत' की निम्न पक्ति से भी होता है—

"एक नैन कवि मुहमद गुनी । सोई विमोहा जेहं कवि गुनी ।"

सैयद कल्बे मुस्तफा के अनुसार तो—"मलिक लूले, लगडे और कुब्जा पुश्त भी थे ।" सम्भव है कि रोग के कारण जहा उनकी बाईं आंख, बायां कान और शारीरिक सौदर्य जाता रहा, वहा शारीरिक बल भी क्षीण हो गया होगा और वे चलने-फिरने मे लूले-लंगडे जैसे दिखाई देते हों अथवा सचमुच वैसे हो गए हो ।"

जायसी के कुरूप, एक कान और एक आख का होने तथा उसके कारण की चर्चा करते हुए आचार्य चतुर्वेदी का कथन है—"कहते हैं कि जब ये केवल सात वर्ष के थे, इन्हे चेचक निकली थी और इनकी मां ने मानकपुर की मनौती मानने का निश्चय किया था, अतएव हो सकता है कि अच्छे हो जाने पर इनकी एक आख जाती रही हो और वे कुरूप हो गए हो । इनके एक ओर के हाथ-पैर बेकार हो जाने तथा उनके टुकडे तक बन जाने के विषय मे प्रसिद्ध है और कहा जाता है कि जब वे अकबर बादशाह (सन् १५५६-१६०५ ई०) के दरबार मे गए तो वह इनके 'बदशक्ल और बदकबी' होने पर हँस पडा, जिसकी चर्चा मीर हसन के 'रिमुजल आरिज' नाम की मसनवी मे की गई जान पडती है ।"

चतुर्वेदी जी द्वारा निर्दिष्ट अठारहवी शताब्दी के मीर हसन की मसनवी मे इस तथ्य का उल्लेख इस प्रकार से हुआ है —

थे मलिक नाम मुहम्मद जायसी । वह कि पद्मावत जिन्होंने है लिखी ।
मर्दे आरिफ थे वे और साहब कमाल । उनका अकबर ने किया दरयाफ्त हाल ।

× × ×

थे बहुत बदशक्ल और वह बदकबी । देखते ही उनको अकबर हंस पडा ।

× + +

हँस पडे माटी पर ए तुम शहरयार । या कि मेरे पर हसे बे-अख्तियार ।
कुछ गुनाह मेरा नही ऐ बादशाह । सुर्ख बासत तू हुआ और मैं सियाह ।
अस्ल मे माटी तो है सब एक जात । अख्तियार उसका है जो है उसके साथ ।
सुनते ही वह हर्फ रोया दारगर । गिर पडा उनके कदम पर आन कर ।

जायसी के सम्बन्ध मे इस प्रकार की एक अन्य किंवदन्ती भी प्रचलित है । कहते है कि एक बार वे शेरशाह के दरबार मे गए । इन्हे देखकर शेरशाह और उसके दरबारी हँस पडे । जायसी ने इस पर अत्यन्त शान्त भाव से अपने पर हसने वालों से पूछा—

"कौह रे हसे कि मरियो ।"

अर्थात् क्या तुम लोग मुझ (माटी) पर हँसते हो अथवा मेरे बनाने वाले (कुम्हार) पर ? यदि मुझ पर हँसते हो तो निरर्थक है, क्योंकि मैं तो किसी के हाथ का निर्मित खिलौना हू ।

'मोहि का हससि'

अत· यदि हँसना है ही तो मेरे रचयिता कुम्हार पर हसो ।

इन दोनों मे सत्य क्या है—इस विषय मे कोई प्रमाण उपलब्ध नही । इतिहासकारो ने इस प्रकार की किंवदन्तियो पर आधृत घटनाओ को विशेष महत्व नही दिया अत· इस विषय में प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध नही हो सकी, परन्तु साहित्यकार के लिए इस घटना का एक अपना महत्त्व है । यह घटना अकबर के दरबार मे घटी हो अथवा शेरशाह के···इस घटना से कवि के बाह्य और आतरिक व्यक्तित्व का पता चलता है । इससे जहा कवि के बाह्य व्यक्तित्व की कुरूपता, शरीर के एक पक्ष —आख, कान, हाथ, पैर—की निरर्थकता का परिचय मिलता है, वहा आतरिक पक्ष की नम्रता, सहनशीलता और ऋजुता का भी ज्ञान होता है । भारतीय साहित्य मे इसी प्रकार की अष्टावक्र की घटना सर्वजन विदित है । अष्टावक्र का शरीर आठ स्थानो पर विकृत एव वक्र था । जनक की सभा मे वे जब प्रविष्ट हुए तो उनके विचित्र शरीराकार को देखकर उपस्थित पण्डितमंडली हँस पडी । अष्टावक्र ने उस समय अपने रोष-आक्रोश की अभिव्यक्ति इन शब्दो मे की—

"चर्मकाराणामेषा सभा न विदुषाम् ।"

अर्थात् जनक का यह दरबार विद्वानो से परिपूर्ण न होकर चमारो का जमघट है । विद्वानो को चमार कहने का कारण उनका अष्टावक्र के चर्म की विकृति देखकर उस पर हंसना था । कितनी उग्रता, असहिष्णुता तथा तीव्रता है अष्टावक्र की इस उक्ति मे ! इसके विपरीत—'हसना ही है तो मेरे बनाने वाले पर हसो' जायसी के कथन मे कितना विनय और समर्पण का भाव है । तुलना से यह बात स्पष्ट हो जाती है । यह घटना जायसी के व्यक्तित्व के उदात्त गुणो—मृदुलता, सहनशीलता तथा विनय आदि—की परिचायक है ।

जायसी अष्टावक्र अथवा तुलसीदास आदि के समान नाना पुराण निगमागम के निष्णात पण्डित तो नही थे, परन्तु अपने ग्रथो से वे बहुश्रुत तथा बहुविद अवश्य प्रतीत होते है । उन्हे तत्कालीन विविध धर्म-साधनाओं की अच्छी जानकारी थी । इसका समर्थन उनकी कृतियो से होता है । इसका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

हिन्दू धर्म और दर्शन से परिचय

हिंदू धर्म मे वेदों की महती प्रतिष्ठा है, वर्ण-व्यवस्था की मान्यता है, बहुदेवो मे आस्था है, तीर्थों तथा धार्मिक विधि-विधानों के पालन मे विश्वास है । इन सब बातो का वर्णन जायसी के ग्रन्थों मे निम्न रूप से हुआ है—

(क) बेद पंथ जे नहिं चलहिं ते भूलहिं बन माझ ।

(ख) पितर कुम्हार राज कर भोगी । पूजै बिप्र मरावै जोगी ।

(ग) तैंतीस कोटि देवता साजा । औ छानवे मेघदल गाजा ।

(घ) **चौसठ तीरथ** के सब ठाऊं। लेत फिरिउं ओहि पिउ कर नाऊ।

पुराण तथा लोक-कथाओं से परिचय

जायसी ने रामायण, महाभारत तथा पुराणो की अनेक कथाओं—राम-कथा, कृष्ण-कथा, कर्ण-अर्जुन, नल-दमयन्ती, दुष्यन्त-शकुन्तला आदि का अपने ग्रन्थो मे प्रसंगानुसार प्रयोग किया है। लोक-कथाओ—भर्तृहरि, गोपीचन्द, गोरख, मच्छन्दर आदि के वृत्तो—से भी अपना परिचय दिखाया है।

कामशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र तथा शकुनशास्त्र से परिचय

जायसी ने नारी की विविध जातियो—पद्मिनी, हस्तिनी, सिंहनी और उनकी विशेषताओ के वर्णन मे कामशास्त्र से, मृगशिरा नक्षत्र मे तपन, मघा नक्षत्र मे वर्षा तथा दिशाशूल मे चन्द्रमा और योगिनी विचार की चर्चा मे ज्योतिषशास्त्र से तथा अच्छे-बुरे लक्षणो के शकुन के वर्णन मे शकुनशास्त्र से अपना परिचय प्रकट किया है।

इस्लाम धर्म से परिचय

जन्मतः मुसलमान होने के कारण जायसी का इस्लाम धर्म से साधारण परिचय तो स्वाभाविक है परन्तु उन्हे इसकी गहरी जानकारी थी। पद्मावत मे कही-कही कुरान शरीफ की आयतो (पवित्र वाक्यो) का सार अनूदित दिखाई देता है—

(क) सबै नास्ति यह अहथिर ऐस साज जेहि केर।

(ख) की-हेसि प्रथम जोति परगासू। कीन्हेसि तेहि पिरीत कैलासू।

प्रलय के दिन खुदा का जीव का लेखा-जोखा करना तथा मुहम्मद साहब की सिफारिश से अपराधो के लिए क्षमा मिलने का वर्णन भी इस्लामी सिद्धान्त के सन्दर्भ मे है—

गुन-अवगुन विधि पूछव, होइहि लेख औ जोख।
वै विनउव आगे होई, करव जगत् कर मोख॥

साधना की चार अवस्थाओ—शरीयत, तरीकत, हकीकत तथा मारिफत का वर्णन, साधना मार्ग की कठिनाइयो का चित्रण, शैतान की कल्पना, आत्मा की पुरुष और परमात्मा की स्त्रीरूप मे प्रस्तुति सूफी साधना के अन्तर्गत है। सूफी साधना भी इस्लामी साधना के अन्तर्गत पृथक् स्थान लिए हुए है।

योग साधना से परिचय

जायसी ने यौगिक क्रियाओ के वर्णन द्वारा योग साधना से भी अपना परिचय प्रकट किया है—

"कहा पिंगला सुखमन नारी। सूनि समाधि लागि गई तारी।"

इसके अतिरिक्त जायसी को इतिहास-भूगोल, पशु-पक्षियों की विविध जातियों

का भी सम्यक् ज्ञान था। इस प्रकार जायसी प्रतिभासम्पन्न होने के अतिरिक्त व्युत्पन्न भी थे। यह दूसरी बात है इनकी व्युत्पन्नता शिक्षा का परिणाम न होकर सत्सग तथा अनुभव पर आधृत थी।

इस प्रकार जायसी बहुश्रुत तथा बहुज्ञ होने पर भी **निरभिमान** थे। तुलसी के समान उनमे भी पाण्डित्य, कवित्व तथा साधुत्व का गर्व नही था। उन्होने अपने विनय को इन शब्दो मे स्पष्ट किया है—

औ बिनती पण्डितन्ह सो भजा। टूट सवारहु मेरए हु सजा।
हौ सब कविन्ह केर पिछलग्गा। किछु कहि चला तबल दइ डगा।।

जायसी **ब्रह्मनिष्ठ सिद्ध** महात्मा थे। वे प्राणी मात्र मे उसी दिव्य सत्ता को देखते थे। इसका प्रमाण एक किवदन्ती से होता है। कहते है कि जायसी कभी अकेले भोजन नही करते थे, वे किसी न किसी को खिलाकर ही खाते थे। एक बार वे अपने आगे खीर रखे किसी अतिथि की प्रतीक्षा में बैठे ही थे कि भयंकर कुष्ठ रोग से पीडित एक व्यक्ति आ पहुचा। जायसी ने उसे ही भूखा समझकर अपने साथ खाने को आमत्रित किया। जायसी के अनुरोध पर ज्यो ही उसने खाना प्रारम्भ किया, उसके घाव का थोडा सा मवाद भोजन मे गिर पडा। जायसी ने भोजन के उसी अश को खाने के लिए उठाया और कुष्ठी के मना करने पर भी निर्विकार भाव से उसे मुह मे डाल दिया। इतने मे कुष्ठी अन्तर्हित हो गया और जायसी के हृदय का वैराग्य तथा ईश्वरनिष्ठा का भाव सुदृढ हो गया। इसका सकेत जायसी ने 'अखरावट' के निम्नोक्त दोहे मे किया है।

बुदहि समुद समान यह अचरज कासो कहौं।
जो हेरा सो हिरान मोहमद आपुहि आप माह।।

उदारता—जायसी के व्यक्तित्व का एक महान् गुण था। आस्थावान मुसलमान होने के कारण इस्लाम के प्रति कट्टरता रखते हुए भी उन्होने अन्य धर्मों के प्रति अवज्ञा का भाव नही दिखाया। उन्होने 'रुचिना वैचित्र्यं ऋजु कुटिल नाना पथजुषाम्' के अनुसार ही उपासना के विभिन्न मार्गो को स्वीकृति दी है।

"विधिना के मारग हैं तेते। सरग नखत तन रेवा जेते।"

हिन्दु धर्म और इस्लाम की बुराइयां दिखाकर दोनो धर्मो के अनुयायियो को खरी-खरी सुनाने वाले और समाज के सभी वर्गों के व्यक्तियो मे दोषदृष्टि देखने वाले कबीर के प्रति जायसी के निम्नोक्त श्रद्धापूर्ण वचन—

"ना नारद तब रोय पुकारा। एक जुलाहे से मैं हारा।"

जायसी की उदारता तथा गुणग्राहकता के ही सूचक हैं।

जायसी **सिद्ध फकीर** थे और उनके अनेक शिष्य उनके जीवन-काल मे ही बन गए थे। उनके प्रशंसको और शिष्यो मे राजा-महाराजा भी थे। उनके कवित्व मे

विलक्षण प्रभाव था। उनके एक शिष्य से अमेठी के राजा रामसिंह ने 'नागमती का बारहमासा' सुनकर जायसी को सादर अपने दरबार मे निमन्त्रित किया था। जायसी अपने जीवन के अन्तिम समय मे इन्ही अमेठी नरेश के आश्रय मे ही रहे। कहते हैं कि इनकी कृपा से ही अमेठी नरेश के घर पुत्र-रत्न उत्पन्न हुआ था। अमेठी के राजा की जायसी पर महती श्रद्धा थी।

इस प्रकार जायसी तन से कुरूप होते हुए भी मन से अति सुन्दर थे। वे विरक्त, सत्सग-प्रेमी, उदार तथा सहिष्णु महात्मा थे। वे 'सर्वं खल्विद ब्रह्म' के प्रचारक ही नही, सच्चे उपासक थे, साम्प्रदायिक मतवाद की पक से सर्वथा अलिप्त समदर्शी सन्त थे। प्रबन्ध कवि की योग्यता रखते हुए भी निरभिमान थे। सच्चे मुसलमान होकर भी सहिष्णु थे, खण्डन-मण्डन से सर्वथा पृथक् रहकर प्रेम की पीर के गीत गाने वाले मस्तमौला थे। हिन्दू परिवार की कहानी लेकर अध्यात्म-रूपक का निरूपण करने वाले रहस्यवादी कवि थे। हिन्दू वीरो के युद्धोत्साह तथा रणवीरता का वर्णन करने वाले उदारमना कलाकार थे। जायसी के व्यक्तित्व के सारे गुण उन्हें सहज ही मानवता के उच्च स्तर पर प्रतिष्ठित करते है। जायसी के व्यक्तित्व की प्रशसा मे आचार्य चतुर्वेदी का कथन है—"जायसी का स्वभाव नम्र एव साधुवत् था तथा इनमे दानशीलता तथा एकान्तप्रियता के गुण पर्याप्त मात्रा मे विद्यमान थे।" इस सम्बन्ध मे आचार्य शुक्ल का कथन है—"ये काने और देखने मे कुरूप थे।··· जायसी की अक्षय कीर्ति का आधार है 'पद्मावत', जिसके पढने से यह प्रकट हो जाता है कि जायसी का हृदय कैसा कोमल और 'प्रेम की पीर' से भरा हुआ था। क्या लोक-पक्ष मे, क्या अध्यात्म पक्ष मे, दोनो ओर उसकी गूढता, गम्भीरता और सरलता विलक्षण दिखाई देती है।······इन्होने मुसलमान होकर हिन्दुओं की कहानिया हिंदुओं की ही बोली मे पूरी सहृदयता से कहकर उनके जीवन की मर्मस्पर्शिनी अवस्थाओ के साथ अपने हृदय का पूर्ण सामंजस्य दिखा दिया। कबीर ने केवल भिन्न प्रतीत होती हुई परोक्ष सत्ता की एकता का आभास दिया था। प्रत्यक्ष जीवन की एकता का हृदय सामने रखने की आवश्यकता बनी हुई थी। वह जायसी द्वारा पूरी हुई।" डॉ० उदय नारायण तिवारी ने अपने 'हिन्दी भाषा तथा साहित्य' मे जायसी के व्यक्तित्व की एक विशेषता—निर्भीकता की प्रशंसा करते हुए कहा है—"मुस्लिम शासकों तथा मौलवियो द्वारा दिए जाने वाले 'कुफ्र' के फतवे की परवाह न करके जायसी ने मुसलमानों के साथ बराबर लोहा लेने वाले चित्तौड के शिशोदिया वंश के महाराणा की कीर्ति को बखान कर अपनी अपूर्व निर्भयता का परिचय दिया है।"

समग्रतः आज के तन से सुन्दर तथा मन से मलिन बुद्धिजीवियों से सर्वथा विपरीत जायसी तन से असुन्दर परन्तु मन से सुरूप थे। वस्तुतः तन का सुरूप अथवा कुरूप होना कतिपय बाह्य परिस्थितियो तथा तत्त्वो पर निर्भर है परन्तु मन की सदाशयता मानव का निजी गुण है। मनुष्य प्रयत्न करने पर मन का ही संस्कार कर

सकता है। मन के उन्नेता ही सच्चे साधु-सन्त-महात्मा कहलाते हैं। जायसी ने अपने मन का सम्यक् उन्नयन कर लिया था। उनके मन में किसी प्रकार की धार्मिक सकीर्णता नही थी। जन्मना मुसलमान होने के कारण जायसी द्वारा मोहम्मदी धर्म की उदात्तता का वर्णन सर्वथा स्वाभाविक ही था। परन्तु उन्होने किसी भी धर्म का खण्डन नही किया। इस प्रकार उन्होने अवाञ्छित राग-द्वेष से ऊचे उठकर सामान्य मानवतावाद की प्रतिष्ठा का स्तुत्य प्रयत्न किया है। हिन्दू नारियो के जौहर को दिखाकर जायसी ने उनके सतीत्व को समाहृत किया है। इस प्रकार जायसी का व्यक्तित्व महान् और गरिमामय है।

कृतित्व (रचनाएं)

हिन्दी साहित्य के विद्यार्थी को यह सम्यक् रूप से विदित है कि जायसी का अवधी भाषा मे निबद्ध साहित्य फारसी लिपि मे लिखित होने के कारण पर्याप्त समय तक हिन्दी वालो की दृष्टि से ओझल रहा। इस साहित्य को प्रकाश मे लाने का श्रेय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को है। उन्होने जायसी ग्रथावली मे जायसी की तीन रचनाओ को प्रस्तुत किया है—(१) **पद्मावत** (२) **अखरावट** तथा (३) **आखिरी कलाम**।

शुक्ल जी ने जायसी कृत एक अन्य रचना 'नैनावत' का उल्लेख भी किया है। परन्तु उन्हे यह रचना उपलब्ध नही हुई। गार्स द तासी ने अपने 'हिन्दुस्तानी साहित्य का इतिहास' भाग २ में जायसी-रचित इन तीन ग्रथो का उल्लेख किया है (१) घनावत (२) सोरठ तथा (३) परमार्थ पर्ची। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने जायसी-रचित निम्नोक्त छः पुस्तकें प्रमुख बताई हैं—(१) पद्मावत (२) अखरावट (३) आखिरी कलाम (४) महरी बाईसी (५) चित्रावत तथा (६) मोस्ती नामा। नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट मे निम्नलिखित १३ पुस्तको की चर्चा की गई है—

(१) पदावली (२) अखरावट (३) आखिरी कलाम (४) सखरावत (५) चम्पावत (६) इतरावत (७) मटकावत (८) चित्रावत (९) कहरवा नामा (१०) मोराई नामा (११) मकहर नामा (१२) पोस्ती नामा तथा (१३) महरानामा। सैयद कल्बे मुस्तफा साहब ने जनश्रुति के आधार पर उपर्युक्त तेरह रचनाओ के अतिरिक्त 'होलीनामा' नामक एक अन्य ग्रन्थ भी जायसी कृत माना है। हसन असकरी साहब ने जायसी के वशजों के पास पद्मावत के रूप की जायसी-रचित दो अन्य मसनवियो की चर्चा की है। इधर डा० माताप्रसाद गुप्त ने एक अन्य रचना "महरी बाईसी" को प्रकाशित कर उसे जायसी कृत माना है। इसकी गणना आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने भी जायसीकृत छः प्रमुख पुस्तको मे की है। चतुर्वेदी जी ने जायसीकृत बताई जाने वाली अन्य रचनाओ का उल्लेख इन शब्दो मे किया है—"इसके अतिरिक्त मंसदा, कहारनामा, मुकहरानामा वा मुखरानामा, मुहरानामा या होलीनामा, खुर्वा-

नामा, संकरानामा, चम्पावत, मटकावत, इतरावत, लखरावत, मखरावत या सुखरावत, लहरावत, नैनावत, घनावत, परमार्थ जयजी और पुसीनामा रचनाएं भी जायसी की बताई जाती है किंतु इनके विषय मे कुच्छ ज्ञात नही।"

उपर्युक्त चर्चा के आधार पर जायसी के नाम पर एक विपुल साहित्य सामने आता है और इन सब पुस्तको का जायसीरचित होना विश्वसनीय प्रतीत नही होता। इस सम्बन्ध मे डॉ० त्रिगुणायत का मत है—"मेरी अपनी धारणा है कि जायसी नाम के कई कवि थे। जायसी शब्द, जायस के निवासी का वाचक है, कोई व्यक्तिवाचक नही है। मोहम्मद नामक नाम मुसलमानो मे बहुत सामान्य है। हो सकता है कि मलिक मुहम्मद जायसी की अपूर्व कीर्ति से प्रभावित होकर मोहम्मद नामक जायसी कवियो ने पद्मावत के रचयिता के अनुकरण पर कुछ प्रेम-गाथाए रची हो। किंतु वे पद्मावत के स्तर की न होने के कारण प्रसिद्धि नही प्राप्त कर सकी और कालान्तर मे लुप्त हो गई।" डॉ० त्रिगुणायत एक अन्य सम्भावना—इनमे कतिपय रचनाएं कदाचित् पद्मावत के रचयिता जायसी की ही कृतिया होने से इन्कार न करते हुए कहते हैं—"इस सम्बन्ध मे मेरी अपनी धारणा है कि जायसी ने स्वय भी दो-चार प्रेम-कथाएं और लिखी थी जो उनके अभ्यास-युग से सम्बन्धित थी और सर्व साधारण स्तर की थी। इन प्रेम-कथाओ मे सम्भवत चम्पावत नामक कोई प्रेम-कथा अवश्य थी।···यह हो सकता है कि साहित्यिक दृष्टि से यह अधिक उच्च स्तर की न रही हो जिसके कारण अधिक प्रचार न पा सकी।"

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने जायसी की जिन छः प्रमुख रचनाओ का उल्लेख किया है, उनका प्रकाशन-परिचय इस प्रकार से दिया है—"इनमे से प्रथम तीन ("पद्मावत', 'अखरावट' तथा 'आखरी कलाम') पहले प्रकाशित हो चुकी हैं, चौथी (महरी बाईसी) कदाचित् 'महरीनामा' या 'मोराईनामा' की जगह प्रकाशित हुई है अथवा वह 'कहरनामा' से अभिन्न है। (न० प्र० पत्रिका वर्ष ५८, अक ४, पृ० ४७५-७८) तथा पाचवी (चित्रावत) 'चित्ररेखा' के नाम से निकल चुकी है और छठी (मोस्तीनामा) इधर 'मसालनामा' के रूप मे मिली है।"

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर जायसी की कृतियो के सम्बन्ध मे तीन बाते कही जा सकती हैं—

(१) मुहम्मद नाम के जायस वासी एकाधिक कवि हुए है और जायसी के नाम से प्रचलित बहुत सारी साधारण कृतिया मूलतः पद्मावत के रचयिता जायसी से इतर किन्ही अन्य जायसवासी कवियो की रचनाए हैं।

(२) जायसी ने स्वयं भी कदाचित् प्रारम्भ मे कतिपय साधारण प्रेमगाथाए लिखी होंगी, जो अपनी साधारणता के कारण प्रसिद्धि न पा सकी होगी तथा स्वयं जायसी के लिए भी वे विशेष महत्व की कृतिया नही रही होगी। इसी तथ्य को वाणी देते हुए आचार्य परशुराम चतुर्वेदी का कथन है—"यद्यपि जायसी की सभी रचनाएं

उपलब्ध नही तथापि उनमे से कई के नामो के आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि वे साधारण होगी ।"

(३) मूलत. जायसी द्वारा रचित कही जाने वाली बहुत-सी कृतियो के नाम एकाधिक है, जिसके कारण वे रचनाए सख्या मे अधिक प्रतीत होती है । चतुर्वेदी जी का एक-एक रचना के लिए दो-तीन नाम बताने वाला उपर्युक्त कथन इस तथ्य का प्रमाण है ।

जायसी की छः प्रकाशित रचनाओ को भी प्रमुख मानते हुए आचार्य चतुर्वेदी ने उन्हे पद्मावत के कवि जायसी की ही रचनाएं माना है । इनमे प्रथम तीन—पद्मावत, अखरावट, आखिरी कलाम का नाम तो सर्वविदित है । महरी बाईसी, चित्रावत और मोस्तीनामा अवश्य नवीन प्राप्तिया है । इन रचनाओ का सक्षिप्त परिचय व रचना-काल क्रम के अनुसार इस प्रकार से है—

(१) आखिरी कलाम

'आखिरी कलाम' नाम को देखकर प्रारम्भ में कतिपय विद्वानों ने इसे जायसी की अन्तिम रचना मान लिया था, परन्तु कालातर में फारसी की प्रकृति को समझने पर इस भ्राति का निराकरण हो गया । उस युग मे 'आखिरतनामा' अर्थात् प्रलय-कालीन दृश्य-वर्णन लिखने की प्रचलित प्रथा का अनुकरण ही जायसी ने किया है । 'आखिरी कलाम' का अर्थ भी अन्तिम रचना न होकर अन्तकाल के दृश्य और घटना आदि से सम्बन्धित रचना है ।

'आखिरी कलाम' जायसी की प्रारम्भिक रचना है । इसका रचना-काल अंतस्साक्ष्य से सन् ९३६ हिजरी (१५३० ई०) सिद्ध होता है—

'नौ सै बरस छत्तीस जो भए । तब एहि कथा के आखर कहे ।'

ग्रंथ मे सामयिक शासक के रूप में बाबर का उल्लेख भी इसे १५३० ई० की रचना सिद्ध करता है ।

डॉ० त्रिगुणायत का अनुमान है कि जायसी ने 'आखिरी कलाम' लिखने से पूर्व हिन्दू परिवारों की कहानियो पर आधृत कई प्रेमाख्यान लिखे होगे । कट्टर मुलाओ को उनके बेशिरा मुसलमान होने का सदेह हो गया होगा । कट्टर मुल्लाओ के इसी भ्रम के निवारण के लिए ही जायसी ने उक्त ग्रथ की रचना की होगी । डॉ० त्रिगुणायत के आखिरी कलाम से पूर्व जायसी द्वारा कतिपय प्रेमाख्यान लिखने का आधार यह है कि कवि ने इसकी रचना अपनी आयु के ३६वें वर्ष मे की, जबकि उसने कविता करना तीस वर्ष की आयु मे प्रारम्भ किया । इन छः वर्षों मे उन्होने कुछ लिखा भी होगा ।

'आखिरी कलाम' का प्रतिपाद्य सृष्टि के प्रलय के उपरात जीवों के कृत कर्मों

(पाप.पुण्य) के आधार पर उनके भाग्यनिर्णय (हश्र) से सम्बद्ध है। इसके अनुसार प्रलय (कयामत) के पश्चात् रसूले पाक मुहम्मद साहब की सिफारिश पर खुदा गुनह-गारो (अपराधियो) के अपराध क्षमा कर देगे और इससे उन्हे अनायास ही सद्गति मिल जाएगी। स्पष्ट है कि इस कथा का उद्देश्य मुहम्मद साहब और उनके द्वारा प्रवर्तित इस्लाम धर्म पर लोगो की आस्था को सुदृढ करना है।

कहने की आवश्यकता नही कि ये भाव कट्टर मुहम्मदी के हो सकते है, जायसी जैसे उदार और पहुचे हुए फकीर के नही। इसका यह अर्थ कदापि नही कि यह जायसी की रचना ही नही। जायसी की रचना तो यह अन्तस्साक्ष्य से ही सिद्ध है परन्तु यह उनकी अपरिपक्व एवं प्रारम्भिक अवस्था की ही रचना है और पद्मावत जैसी उदार कृति से तो निश्चित रूप से पूर्ववर्ती ही है।

जायसी की उक्त रचना मे यद्यपि इस्लामी विचारधारा का ही प्रतिपादन हुआ है तथापि कतिपय भारतीय विचारों का भी उल्लेख हुआ है। उदाहरणार्थ—

(क) यह ससार सपने कर लेखा। (संसार की अनित्यता)

(ख) जहवें देखौं तहवें सोई। और न जाने दिस्टि तर कोई। (अद्वैतवाद)

(ग) तह न मीचु न नीदु दुख रहा न देह मह रोग। (स्वर्ग)

(घ) माया करै मुहम्मद तो पै होइय मोच्छ। (मोक्ष)

अत मे यह कहना आवश्यक है कि यह रचना जायसी के जीवनवृत्त के जानने और उनके जीवन की परिस्थितियो का अनुमान लगाने की दृष्टि से अवश्य महत्त्वपूर्ण है परन्तु काव्य कला—भावोत्कर्ष तथा भाषा-चमत्कार की दृष्टि से यह एक साधारण-सी रचना ही है।

(२) अखरावट

इस रचना के अन्य नाम अखरावती तथा अखरावटी भी हैं परन्तु प्रसिद्ध नाम अखरावट ही है। कतिपय विद्वान् इसे जायसी की अतिम रचना मानते है परंतु कृति से कोई ऐसा सकेत नही मिलता। डा० त्रिगुणायत ने अखरावट को पद्मावत के बाद की रचना माना है और अपने अनुमान के आधार के रूप मे निम्न पंक्ति को प्रस्तुत किया है—

'कहा मोहम्मद प्रेम कहानी। सुनि सो ज्ञानी भए ध्यानी।'

यह प्रेम-कहानी 'पद्मावत' ही है। इसके अतिरिक्त एक लोकश्रुति द्वारा भी इस तथ्य की पुष्टि होती है। कहते हैं कि अमेठी के राजा रामसिंह की प्रेरणा एवं अनुरोध पर ही जायसी ने अखरावट की रचना की थी। जायसी के पद्मावत से प्रभावित होकर ही अमेठी-नरेश ने जायसी को अपने यहां ससम्मान निमन्त्रित किया था।

अवधी भाषा और दोहा-चौपाई-पद्धति मे ग्रथित इस छोटे से ग्रंथ की विशेषता यह है कि इसमे बिना किसी प्रकार की प्रस्तावना आदि दिए सीधे प्रतिपाद्य विषय का वर्णन प्रारम्भ कर दिया गया है। कवि के अनुसार इस शून्य सृष्टि के प्रारम्भ मे केवल एक आदि पुरुष था, उसने खेल ही खेल मे अपना ऐश्वर्य प्रकट करने की इच्छा से सृष्टि की रचना की। ईश्वर ने पुरुष और स्त्री की रचना की और उन्हे स्वर्ग मे सुखोपभोग के लिए मुक्त करते हुए गेहू न खाने का निषेध किया किन्तु उन्होने नारद जी के बहकावे मे आकर गेहू खा लिया, जिसके दण्ड मे उन्हे वियोग झेलना पडा। उनके प्रार्थना करने पर ईश्वर ने दोनो का पुर्नमिलन कर दिया और तब सृष्टि का विकास हुआ। इसके पश्चात् कवि ने ससार की नश्वरता का निरभिमानता द्वारा आत्मदर्शन का तथा उसके लिए तप की महिमा का वर्णन किया है।

अखरावट मे बौद्धो के शून्यवाद को, साख्यवादियो के स्वप्नवाद को तथा वेदान्तियों के अद्वैतवाद को इस्लामी ढाचे मे ढालने का सफल प्रयास हुआ है। बौद्धों के शून्यवाद के समान जगत् की उत्पत्ति का वर्णन करते हुए जायसी का कथन है—

आदि किए उ आदिरु सुन्नहि ते अस्थूल भए।
आपु करै सब मेरु मुहम्मद चादर ओट जेउं॥

जायसी ने साख्यवादियो के समान ही दृश्य-जगत् की अजातता, स्वप्नसदृशता तथा कल्पनामयता का वर्णन किया है—

सुन्न समुद चख माहि जल जैसी लहरे उठाहि।
उठि उठि मिटि मिटि जाहि मुहम्मद खोज न पाइए॥

वेदातियों के अद्वैत को भी जायसी ने बडे सुन्दर ढग से अपनाया है। जीव और ब्रह्म के अद्वैत को वाणी देते हुए जायसी का कथन है—

आपुहि गुरु आपु भा चेला। आपुहि सब औ आपु अकेला।

× × ×

वै आपुहि कहं सब महं मेला। रहैं सो अब मह खेलै खेला।

वस्तुत. जायसी के मत, दर्शन एवं साधना-सम्बन्धी विचारधारा को सम्यक् रूप से समझने के लिए 'अखरावट' अत्यन्त उपयोगी है। कवि की दार्शनिक एवं आध्यात्मिक विचारधारा का जितना विशद एवं पूर्ण परिचय 'अखरावट' मे मिलता है, वैसा पद्मावत मे भी नही मिलता। डा० त्रिगुणायत ने इस रचना के महत्व के संबध में लिखा है—"अखरावट एक दार्शनिक ग्रंथ है, जिसमे जायसी ने अपने समय की सभी प्रसिद्ध विचारधाराओ को अपनी प्रतिभा के साचे मे ढालकर अभिनव-रूप मे प्रस्तुत करने की चेष्टा की है। बहुत-सी दृष्टियों से यह ग्रंथ अपने मे बेजोड है। प्रेमाख्यानी तत्त्वों और निर्गुणियों की विचारधारा का जितना सुन्दर सुहाग अखरावट मे दिखाई देता है, उतना मध्य युग के किसी भी ग्रथ मे दिखाई नही देता है।" डा०

रामरतन भटनागर के शब्दो मे—"सीधी-सादी भाषा मे वेदांत और तत्त्वदर्शन को जन-ग्राह्य बनाने की पहली सफल चेष्टा इस ग्रथ (अखरावट) मे मिलती है।"

(३) पद्मावत

कहने की आवश्यकता नही कि जायसी की कीर्ति का अक्षय भण्डार 'पद्मावत' है। इस एक काव्य के कारण ही वे एक श्रेष्ठ कवि कहे जाते है। वस्तुत. जायसी के समय तक इस प्रकार के काव्य-साहित्य का पूर्ण विकास नही हो पाया था और इसके आदर्श इने-गिने ही थे। जायसी ने इस रचना-शैली की नवीन धारा को अपनाकर बहुत बडी सफलता दिखलाई और एक ऐसी सुन्दर कृति प्रस्तुत की जो आगे के लिए नमूना बन गई। 'पद्मावत' भारतीय चरितकाव्यों तथा फारसी की मसनवियो के सम्मिश्रण से पल्लवित प्रेमाख्यान-परम्परा का सर्वोत्कृष्ट काव्य है। इसमे दोनों जातियो के धर्म, दर्शन, आचार तथा साधना-पद्धति का दोनों जातियो के लिए ग्राह्य समन्वित रूप प्रस्तुत हुआ है।

'पद्मावत' मे रत्नसेन-पद्मावती की लौकिक प्रेम-कहानी के चित्रण के माध्यम से आध्यात्मिक प्रेमतत्त्व की व्यञ्जना की गई है। काव्य मे प्रतीकात्मकता कथा की सरसता तथा वर्णन की सजीवता के कारण मधुर तथा भावपूर्ण बन पडी है। इसमें कवि के वर्णन-कौशल, काव्योत्कर्ष के अतिरिक्त उदारता तथा निष्पक्षता आदि गुणों का भी विकसित रूप देखने को मिलता है। समग्रतः भाव, भाषा तथा विचार तीनो दृष्टियो से पद्मावत सूफी प्रेमाख्यान परम्परा का ही नही, हिन्दी काव्यधारा का गौरव-ग्रथ है।

(४) महरीनामा

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी तथा डा० गोविन्द त्रिगुणायत ने महरीनामा अथवा महरी बाईसी को कहरानामा से अभिन्न माना है। डा० त्रिगुणायत के शब्दों मे—"महरी बाईसी और कहरानामा मे पाठभेद होते हुए भी बहुत साम्य है।"

बाईस छन्दों के इस लघु काव्य मे जायसी ने दार्शनिक विवेचन प्रस्तुत किया है। जिस प्रकार मायके मे सभी प्रकार की सुख-सुविधाओ का उपभोग करती हुई भी लडकी अवस्था आने पर पतिगृह जाने को उत्सुक होती है और वही सच्चा सुख प्राप्त करती है। पतिगृह को ही अपना घर मानती है, उसी प्रकार आत्मा का सच्चा स्थान भी ब्रह्म है। उस पति को पाकर ही जीव को आनन्द की प्राप्ति होती है। कवि का कथन है—

> नैहर छाडि चलब अब सोहरे समुझि परै नहिं काहु रे।
> बात सुनहु तुम्ह सखी सहेली सत बोलौ तुम आगे रे।
> संवरि सेज मन पिय के डर यौ रहै खुरुक जिमि लागे रे।

इस संसार मे उत्पन्न हिन्दुओ और मुसलमानो को समान रूप से ही विवाह करना अर्थात् मृत्यु का वरण करना पडता है।

'हिंदु तुरुक दोउ पर देखौ जो बारा सो ब्याहा रे।'

इसलिए कवि की चेतावनी है—

सुनि रे अयाने होइ हुसियाने गुरु ग्यान मति लीन्हे रे।

इस प्रकार इस लघु रचना मे आध्यात्मिक विवेचन मिलता है। रचना मे स्थान-स्थान पर उपदेश और चेतावनिया है। बानगी के लिए रचना के अत मे कवि का उपदेश है—

कहै मुहम्मद जो रे भलो बड घनी गरज धरि चूरा रे।
निहकलक बस आपु गोसाई बारही बानी पूरा रे।।

(५) चित्रावत

इसका एक अन्य नाम चित्ररेखा है। यह एक प्रेमाख्यान है। इसके अतर्गत चन्द्रपुर के राजा चन्द्रभानु चित्ररेखा और कन्नौज के राजा कल्याणसिंह के पुत्र प्रीतम कुवर के प्रेम की गाथा वर्णित है। इसमे बतलाया गया है कि किस प्रकार वह राजकुमार राजकुमारी के लिए निश्चित किसी कुबडे वर का स्थान ग्रहण कर उससे विवाह कर लेता है और अन्त में न केवल उसे ही पा लेता है, अपितु संयोगवश अल्पायु से दीर्घायु तक बन जाता है। कहते हैं कि यह रचना किसी लोकगाथा पर आधृत है। काव्य-कौशल की दृष्टि से इसे एक साधारण स्थान दिया जाता है परन्तु इस रचना से यह अवश्य सिद्ध होता है कि पद्मावत जैसी अत्युत्कृष्ट कृति के लिए इस जैसी रचनाओ ने कदाचित् पूर्वाभ्यास का काम किया होगा। इस प्रकार कवि के काव्यकौशल में उत्तरोत्तर विकास तथा निखार लाने की दृष्टि से 'चित्रावत' का एक अपना महत्त्व है।

(६) मोस्तीनामा

इसके अन्य नाम 'पोस्तीनामा', 'मसालनामा' आदि हैं। इसमे जायसी ने पोस्तियों के सम्बन्ध मे अच्छी जानकारी प्रस्तुत की है। पोस्त खाने वाले पोस्तियो का ऐसा सुन्दर खाका खीचा है कि हसते-हंसते पेट मे बल पड जाते है। जायसी ने पोस्त के पौधो का विवरण इस प्रकार से प्रस्तुत किया है—

जब पुस्ती मां लागे पात। पुस्ती बूदे नौ नौ हाथ।
जब पुस्ती मां लागे फूल। तब पुस्ती मटकावैं कूल।

जायसी की इस रचना के साथ एक किंवदन्ती भी जुडी हुई है। कहते हैं कि जायसी ने अपने पोस्तीनामा' मे वर्णित पोस्तियो का खाका जब अपने किसी अफीमची पीर साहब को सुनाया तो वे इतने अधिक रुष्ट हुए कि उन्होंने जायसी को निस्संतान

होने का शाप तक दे डाला । लोक-मान्यता है कि इसी शापवश जायसी के सात बच्चे मकान की छत के गिरने से उसके नीचे दब कर मर गए और जायसी का अपना वंश निर्मूल हो गया। इस किंवदन्ती के साथ यह भी जुडा हुआ है कि जायसी ने जब अपनी स्थिति स्पष्ट की कि उनका उद्देश्य पीर साहब का अपमान करना कदापि न होकर सामान्य वर्णन मात्र है और पीर साहब को इससे पहुची पीडा के लिए बार-बार खेद प्रकट किया तो पीर साहब का क्रोध शात हुआ और उन्होने जायसी को क्षमा करते हुए उनकी रचनाओ से ही नाम और ख्याति प्राप्त होने का उन्हें आशीर्वाद दिया ।

उपर्युक्त किंवदन्ती में सत्य का अश कितना है—यह विवादास्पद होते हुए भी इतना निश्चित प्रतीत होता है कि जायसी ने 'पोस्तीनामा' अथवा मोस्तीनामा नाम की कोई छोटी-सी हास्य-व्यंग्य-प्रधान रचना लिखी अवश्य होगी और वह लोक-प्रिय भी रही होगी ।

जायसी की केवल उपर्युक्त छः रचनाएं ही प्रकाशित हुई हैं। इनके अतिरिक्त अन्य रचनाओं के सम्बन्ध मे किसी निश्चित जानकारी के अभाव मे कुछ भी कहना सम्भव प्रतीत नही होता ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जायसी के विपुल साहित्य के सम्बन्ध मे यद्यपि अभी अनुसधान की आवश्यकता है तथापि इतना निश्चित है कि जायसी के कवि का सर्वस्व 'पद्मावत' ही है। जायसी का कवित्व केवल पद्मावत मे ही प्रस्फुटित हुआ है अन्य रचनाओ—'अखरावट', 'आखिरी कलाम' आदि मे वे कवि की अपेक्षा साधक ही अधिक हैं। इनमे उनका कवित्व तो सिद्धातो की अभिव्यक्ति का साधन-मात्र ही है। इसके अतिरिक्त उनकी अन्य अनुपलब्ध रचनाओ के नाम और विषय से उनके पद्मावत के स्तर का होने का अनुमान नही होता। इस प्रकार जायसी की उपलब्ध रचनाओ से उनके व्यक्तित्व के दो पक्ष उभर कर आते है—कवि और साधक ।

यद्यपि हिन्दी साहित्य के विद्यार्थी के लिए जायसी का कवि-रूप ही प्रधान और विवेच्य है तथापि कवित्व दर्शन का आधार लेकर ही चलता है और इस रूप मे साधक रूप की उपेक्षा नही की जा सकती। जायसी इन दोनों ही रूपो मे एक साथ निष्ठावान, उदार तथा सहिष्णु दिखाई देते है। उन्हे हम एक साथ सच्चा सन्त, तत्त्व-द्रष्टा महात्मा, उत्कृष्ट कवि तथा आदर्श मानव कह सकते है। पद्मावत मे उनके इन सभी रूपों के सहज दर्शन हो जाते है ।

सूफी साधना और जायसी

'सूफी' शब्द की व्युत्पत्ति तथा परिभाषा

इस्लाम के रहस्यवादियो को 'सूफी' नाम से अभिहित किया जाता है, सूफी विरक्त, संसारत्यागी और परमात्मा को पाने तथा उससे एकमेक होने के लिए आतुर रहने वाले और प्रेम को सर्वोच्च स्थान देने वाले सच्चे साधक थे। सूफी शब्द की व्युत्पत्ति अनेक प्रकार से की जाती है —

१. कतिपय विद्वानो के अनुसार सूफी शब्द 'सफा' से निकला है और इसके अनुसार साफ रहने वाले अर्थात् **पवित्र जीवन व्यतीत** करने वाले व्यक्ति विशिष्ट ही सूफी कहलाते थे।

२. अन्य विद्वानो के अनुसार मुहम्मद साहब द्वारा मक्के शरीफ मे बनवाई मस्जिद के बाहर के सूफ अथवा चबूतरे पर सोकर रात बिताने वाले अर्थात् **गृहत्यागी, विरक्त और प्रभु-परायण** लोग सूफी कहलाते थे।

३ विद्वानो के एक वर्ग के अनुसार सूफी शब्द उन सन्तो के लिए प्रयुक्त होता था जो **सूफ (ऊन) के बने लम्बे चोगे** धारण करते थे।

४ अन्य महानुभाव यह मानते है कि सूफी शब्द का सम्बन्ध सोफिया (ज्ञान) से हैं। इसके अनुसार **विशिष्ट ज्ञानी सन्तो** को सूफी कहा जाता था।

५. एक अन्य मान्यता के अनुसार अपने आदर्शमय जीवन तथा उच्च व्यवहार के कारण नमाज़ के समय (सफ) पंक्ति मे अग्र रहने वाले तथा कयामत के दिन भी ईश्वर के समक्ष **अग्रपंक्ति में खड़े होने के अधिकारी** सूफी सन्त कहलाते थे।

६ कतिपय अन्य विद्वानों के विचार मे अरब की एक जातिविशेष—**सफ्फ के सन्त** ही सूफी कहलाते थे।

विभिन्न विद्वानो ने सूफी शब्द को अपने-अपने ढग से परिभाषित किया है। कतिपय परिभाषाएँ प्रस्तुत हैं —

अबुल हुसेन अननूरी	संसार से घृणा और परमात्मा से प्रेम करने वाला सूफी है।
अबू अली कुजबीनी	सुन्दर व्यवहार करने वाला सन्त सूफी है।
अबू सहन सालूकी	विधि-निषधों से उदासीन रहने वाला सन्त सूफी है।
बिशर अल हाफी	ईश्वरनिष्ठ होकर अपने कल्ब को साफ रखने वाला सूफी है।
अबू सईद फजलल्ला	एकनिष्ठ होकर परमात्मा मे ध्यान लगाने वाला सूफी है।
अबू बक्र शिबली	परमात्मा को छोड कर और कही मन केन्द्रित न करने वाला सूफी है।
जून नून मिस्त्री	अपने वचन और कर्म मे सामंजस्य बनाए रखने वाला ही सच्चा सूफी है।

उपर्युक्त सभी व्युत्पत्तियो और परिभाषाओ से स्पष्ट है कि इनमे केवल शब्दों का अन्तर है अन्यथा भावना सबकी एक ही है। सभी यह स्वीकार करते हैं कि सादा जीवन बिताने वाले, उच्च विचारो वाले, परोपकार-परायण, सत्यनिष्ठ, विरक्त और प्रभु-प्रेमी सच्चे सन्त ही सूफी कहलाते थे।

सूफी मत : उद्भव और विकास

पूर्व और पश्चिम के अनेक विद्वानों ने अपने अनुसन्धान के आधार पर सूफी मत के बीज रूप को प्रागैतिहासिक काल से सिद्ध किया है और सूफीधारा के विकास ने नास्तिक तथा मानी मतो का प्रभाव स्वीकार किया है, परन्तु आज सूफी मतावलम्बी अपना सम्बन्ध इस्लाम से ही जोडते हैं। उनके अनुसार स्वयं मुहम्मद साहब की प्रकृति विरागपूर्ण थी, अतः वे प्रथम सूफी थे। कुरान मे भी अनेक ऐसे कथन है, जिन को सूफी वैराग्य-भावना का परिचय मिलता है। उदाहरणार्थ—"हम उसके (बन्दे के) गले की नाली की अपेक्षा खुदा (उस बन्दे) के अधिक समीप है।"

हजरत मुहम्मद साहब के देहावसान के उपरान्त उनके उत्तराधिकारियों (खलीफो) का युग आरम्भ होता है। खलीफाओ ने अपने प्रयत्नों द्वारा शाम, फिलस्तीन, मिस्र, ईरान, स्पेन तथा तुर्किस्तान आदि देशो तक अपने साम्राज्य का विस्तार कर लिया। उस राजनीतिक विस्तार तथा आर्थिक समृद्धि के कारण ऐश्वर्य और वैभव की उत्तरोत्तर वृद्धि होने लगी। उल्लेखनीय है कि प्रथम चार खलीफे सत्यनिष्ठ, धर्मपरायण, कर्त्तव्यशील, विचारवान्, शुद्ध हृदय, तपस्वी तथा त्यागवृत्ति के महात्मा थे परन्तु उनकी इन विशेषताओ का उनके परवर्ती उत्तराधिकारियो में

अभाव था। उनके धार्मिक अभियान राज्यलिप्सा से ही प्रेरित थे। त्यागभावना और उच्च आदर्श के लुप्त हो जाने से धर्म-भावना मे बाह्य आडम्बर का समावेश होने लगा और उन्हे शास्त्रसम्मत सिद्ध करने के लिए धार्मिक शब्दो का प्रणयन प्रारम्भ हो गया। इस प्रकार इस्लाम मे जब सत्यनिष्ठा का स्थान अन्धविश्वास ने, हृदयशुद्धि का स्थान बाह्य-प्रदर्शन ने, त्याग का स्थान सग्रह ने तथा तप कास्थान उपभोग ने ग्रहण कर लिया तो उसकी प्रतिक्रिया मे सूफी मत का उदय हुआ।

इस्लाम की रूढिवादिता की प्रतिक्रिया में पनपा सूफी मत इस्लाम-विरोधी कदापि नही था। इसके प्रवर्तक तथा अनुयायी मुसलमान ही नहीं थे, प्रत्युत सच्चे मोमिन के समान कुरान, एक अल्लाह, पैगम्बर तथा कयामत आदि मे पूर्ण विश्वास रखते थे। वे कुरान शरीफ को ही अपनी मान्यताओं का आधार-ग्रन्थ मानते थे। कतिपय सन्त इस मत मे अवश्य ऐसे हुए, जिन्होने स्वतन्त्र चिन्तन-पद्धति को इस सीमा तक और इस रूप मे ग्रहण किया कि कठमुल्लाओ को इनके इस्लाम-विरोधी होने की आशंका होने लगी और फलस्वरूप इस प्रकार के मन्सूर जैसे सूफी सन्तो को सूली का फन्दा चूमना पडा। परन्तु अधिकाश तो इस्लाम के सन्दर्भ मे ही अपने विचारो के प्रतिपादक थे। कठमुल्लाओ ने सूफियो की चिन्ताधारा के आधार पर उन्हे दो वर्गों मे रखा है :—

प्रथम, बाशरा अर्थात् नियमो का पालन करने वाले। कुरानसम्मत सभी सिद्धान्तों एवं मान्यताओ पर दृढ आस्था रखने वाले, तथा

द्वितीय, बेशिरा अर्थात् इस्लामिक नियमो, मान्यताओ तथा सिद्धान्तो की उपेक्षा करके अपने स्वतन्त्र विचारो को प्रस्तुत करने वाले।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि मूलरूप से इस्लाम मे विरोधी प्रवृत्ति के प्रति सहिष्णुता की भावना का नितान्त अभाव है। यही कारण है कि इस्लाम मे पूर्ण आस्था रखने वाला भी यदि स्वतन्त्र चिन्तन—इस्लाम की मान्यता से हट कर—भी बात कहता है तो उसे नास्तिक, काफिर आदि की उपाधि से विभूषित किया जाता है। परिणामत: या तो उसे अपना स्वतन्त्र चिन्तन छोडना पडता है अथवा इस्लाम से बहिष्कार भुगतना पडता है। स्पष्ट है कि धर्मत्याग अथवा जाति से बहिष्कार का सामना करना सम्भव नही। इस प्रकार इस्लाम मे स्वतन्त्र चिन्तन को गौरव प्राप्त न होने के कारण उसका अभाव भी मिलता है। सूफियों मे भी स्वतन्त्र चिन्ता-धारणा-इस्लाम से हट कर—का विकास-तो न हो सका, पुनरपि सूफी साधना ने इस्लाम की सकीर्णता को अवश्य कम कर दिया। अभी सूफी साधक मूलतः इस्लाम के अनुयायी थे। अन्तर केवल यह था कि उनका दृष्टिकोण अधिक उदार, सामञ्जस्य-वादी, सुधारात्मक तथा रहस्यात्मक था। इन सूफियो मे जिनका स्वर अधिक स्पष्ट, प्रखर तथा मुखर था, इन्हे बेशिरा कहा गया, अन्यथा इस प्रकार के किसी स्वतन्त्र विभाजन का अस्तित्व नही मिलता। मलिक मुहम्मद जायसी को यदि सकुचित एवं

संकीर्ण दृष्टि से देखा जाए तो वे बेशिरा सूफी ही दिखाई देते है परन्तु वास्तव मे वे एक सच्चे बाशिरा मुसलमान थे।

क्योकि उनकी कतिपय मान्यताएं—अद्वैतवाद, माया आदि इस्लाम की धारणाओं से विपरीत पडती है। अपने धर्मबन्ध अलाउद्दीन को माया कहना, हिन्दु परिवार की कहानी को वाणी देना, हिन्दुओं की वीरता का प्रशस्तिगान करना, योगप्रक्रियाओं को महत्त्व देना आदि—इस्लाम की संकीर्णता को कदापि सह्य नही। परन्तु उनकी इस्लाम मे दृढ आस्था पर किसी प्रकार का सन्देह नही किया जा सकता। अपनी कृतियो में उन्होने इस्लाम मत तथा उसके प्रवर्तक मुहम्मद साहब पर दृढ निष्ठा का भाव स्थान-स्थान पर प्रकट किया है।

सूफीमत के विकास के तीन चरण दिखाई देते है। प्रथम युग में प्रधान सूफी लोगों के जीवनवृत्त एवं उपदेशों का संग्रह ही किया गया। यह समय हिजरी सन् की प्रथम शती का है। द्वितीय युग मे प्रमुख सूफी पण्डितो के समय-समय पर उक्त वचनो का क्रमबद्ध प्रणाली में संग्रह किया गया। यह समय हिजरी सन् की दूसरी शताब्दी का है। तृतीय युग में सूफियो के मूलभूत सिद्धान्तों को अपने-अपने ढंग से रखने की चेष्टा आरम्भ हो गई। यह समय हिजरी सन् की दूसरी शताब्दी के अन्तिम चरण का है। इस समय सूफी भावना के प्रचार-प्रसार में धर्माचायो के अतिरिक्त कवियों ने भी महत्त्वपूर्ण योगदान किया और इस प्रकार सूफी धर्म का प्रचार संसार के कोने-कोने में फैल गया। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि जहाँ इस्लाम का प्रचार अधिकतर तलवार के बल पर हुआ वहां सूफीमत का प्रचार बल प्रयोग की अपेक्षा चमत्कारपूर्ण चेष्टाओ से हुआ।

प्रारम्भ मे सूफी दरवेश अकेले अथवा मण्डलियो मे स्थान-स्थान पर घूमते-फिरते थे। वे जो जिक्र—ईशस्तुति, कुरान की आयतो का उच्चारण तथा नाम-स्मरण और तवक्कुल—अहंभाव को मिटाकर सर्वभावेन ईश्वर के प्रति पूर्णत. आत्मसमर्पण—का प्रचार करते फिरते थे। इस समय तक वे इस्लाम के कर्मकाण्ड एवं रोजा-नमाज़ आदि तक ही सीमित थे। धीरे-धीरे इनमे गुह्यभाव प्रवेश करते गए। तीसरी शताब्दी तक सूफीमत ने एक नया रूप धारण कर लिया। अब इसमे इस्लाम के बाह्य विद्वानो पर आश्रित भक्तिभावना के साथ-साथ मानसिक साधना तथा अद्वैत-वाद के सिद्धान्तो का प्रचार होने लगा। अद्वैतवाद का सिद्धान्त एकेश्वरवादी इस्लाम के विरुद्ध है परन्तु सूफियो ने इसे इस्लामसम्मत घोषित किया। यही से मतभेद प्रारम्भ हो गया और कतिपय स्वतन्त्र विचारक सूफियो को कठमुल्लाओ का कोप-भाजन बनना पडा। बाद में सीरिया के सुलेमान अल दारानी और मिस्र के जूलनून ने मारिफत के सिद्धान्त को विकसित किया और वायजीद ने फना का सिद्धान्त समा-विष्ट कर सूफीमत को अद्वैतवादी स्वरूप दे दिया।

सूफीमत को इस्लाम के भीतर विकसित और परिवर्द्धित करने का श्रेय तीन शासकों—फराबी, अब्बू सईद और इमाम गज्जाली—को है। फराबी ने सूफी मत का कुरान से समन्वय करके उसे दार्शनिकता प्रदान की। सईद ने समाधि (सभा) की व्यवस्था की और अपनी साधना तथा व्यक्तित्व से सूफीमत को लोकप्रियता प्रदान की। इमाम गज्जाली ने इस्लाम और सूफीमत का समन्वय करके 'तसव्वुफ' (सूफीमत) को इस्लामी दर्शन का पद प्रदान किया। उसने मुसलमानो मे पारस्परिक भेदभाव को दूर करते हुए धर्म-दर्शन, समाज और भक्ति-भावना को समन्वित रूप मे प्रतिष्ठित किया। कालान्तर मे जिली, रूमी और अरबी आदि महान् सूफी दार्शनिकों तथा कतिपय उच्च कवियो ने सूफीमत को इस्लाम के और अधिक निकट लाने का कार्य किया। फलत: धीरे-धीरे इस्लाम के कट्टर अनुयायियो मे भी सूफी मान्यताओ के प्रति सहिष्णुता का भाव उत्पन्न होता गया और इस प्रकार सूफी दर्शन इस्लामी दर्शन का अंग बन गया।

भारत में सूफीमत

भारत मे सूफीमत का प्रवेश सूफी साधको के आगमन के साथ हुआ। यो तो एक देश के सन्तो का अन्यान्य देशो मे आना-जाना सदा से चलता ही रहा है परन्तु सातवी शताब्दी मे अनेक सूफी सन्तो के भारत में आगमन का और भारतीय विविध धर्म-साधनाओ से इनके सम्पर्क का परिचय इतिहास से मिलता है। प्रारम्भ मे पंजाब और सिन्ध प्रान्त सूफी-साधना के केन्द्र बने, वहाँ से धीरे-धीरे ये सारे भारत मे फैल गए। भारत मे इनकी उदारता और सहिष्णुता तथा समन्वय-भावना ने भारतीयो को विशेष प्रभावित किया। क्रमश: सिन्ध, पंजाब, मुलतान, दिल्ली, अजमेर इनके साधना के प्रधान-स्थल बन गए। भारत मे मुसलिम आक्रमण होने और बाद मे शासन स्थापित हो जाने पर सूफीमत का विशेष प्रचार होने लगा। इधर जहाँ सूफीमत ने भारतीयो को प्रभावित किया, वहाँ भारतीय धर्म-साधनाओं का उन पर प्रभाव पडा। भारतीय धर्म, सस्कृति के प्रभाव से सूफीमत ने कोमलतम और दार्शनिक रूप धारण कर लिया। भारत मे सूफियो ने अपने धर्म-प्रचार के लिए साहित्य को माध्यम बनाया और अपने विचारो को जन-साधारण तक पहुचाने के लिए उन्होने प्रान्तीय बोलियो को अपनाया। अवधी मे रचित प्रेमधारा साहित्य इसी प्रकार का एक प्रयत्न है।

सूफी सिद्धान्त और मान्यताएं

सूफी कुरान द्वारा प्रतिपादित परमात्मा के स्वरूप को स्वीकार करते हैं। वे सनातन-पन्थी मुसलमानो की भाति एकेश्वरवाद मे विश्वास तो रखते है परन्तु इस एकेश्वरवाद का अर्थ इस्लामिक मान्यता से भिन्न रूप में लेते हैं। उनके मत मे जात (सत्ता), सिफ्त (गुण) और कर्म मे परमात्मा अद्वितीय और निरपेक्ष है। उसकी ही

सत्ता इस दृश्यमान् जगत् मे परिव्याप्त है। प्रतीयमान सभी सत्ताए परमात्मा मे अन्तर्निहित है तथा निखिल विश्व परमात्मा के साथ एक है। सूफी मान्यता के अनुसार परमात्मा सत्य होने के साथ परम कल्याण-रूप और परम सुन्दर भी है।

सूफी-सम्प्रदाय मे परमात्मा की सत्ता से सम्बन्धित दो निम्नोक्त मान्यताएं प्रचलित है :—

बुजूदिया

मुहीउद्दीन इब्नुल द्वारा प्रवर्तित 'वहदतुल वजूद' के सिद्धान्त के अनुसार परमात्मा ही एकमात्र सत्ता है और सब कुछ वही है। सम्पूर्ण दृश्यमान् जगत् उसी परमसत्ता की अभिव्यक्ति है। जीव सृष्टिकर्त्ता की बाह्य अभिव्यक्ति है। मनुष्य उस परमसत्ता का चेतन अंश अवश्य है किन्तु उसकी ज्ञान-परिधि सीमित है। अत उस चैतन्य के अंशमात्र को ही वह प्रकट कर सकता है। इस प्रकार से जीव सत्य तो है परन्तु परमात्मा के समान एकमात्र सत्ता नही !

शुहूदिया

शेख करीमे जीली द्वारा प्रवर्तित 'वहदतुश्शुहूद' के सिद्धान्तानुसार परमात्मा की एकमात्र सत्ता है और दूसरी जीव की। जीव की सत्ता शून्य जैसी है, उसे अपने अस्तित्व के लिए परमार्थ सत्ता की अपेक्षा है। जगत्-प्रपच परमात्मा की गुणावली का समाहार है। परमात्मा अपनी सत्ता को अपने गुणो मे अभिव्यक्त करता है। जब गुण अभिव्यक्त होते हैं तब उन्हे सज्ञा दी जाती है। ये नाम दर्पण के सदृश परमसत्ता के सभी रहस्यो के अभिव्यञ्जक हैं। जीली के शब्दो मे—"उसकी अभिव्यक्ति सम्पूर्ण सत्ताओं मे अन्तर्निहित है और वह सृष्टि के प्रत्येक अणु-परमाणु मे अपनी पूर्णता को अभिव्यक्त करता है। वह खण्डो मे विभक्त नही है। सृष्टि के सम्पूर्ण पदार्थ उसकी पूर्णता के कारण है। उसके दिए हुए नाम से ही नाम वाले हैं। ··सृष्टि बरफ के समान है और तेजस्वरूप परमात्मा बरफ के मूल जल के समान है। उस जमी हुई वस्तु का नामकरण बरफ हुआ है, पर जल ही उसका असली नाम है।"

सूफियो के अनुसार अनन्त-विभूति और अनन्त-सौन्दर्य परमात्मा की आत्माभिव्यक्ति की इच्छा का परिणाम ही सृष्टि का आविर्भाव है। अपनी उक्त मान्यता के समर्थन मे सूफी एक हदीस (धर्म-ग्रन्थ के मन्त्र) को प्रमाण-स्वरूप प्रस्तुत करते है—"मैं एक गुप्त निधि था, मैंने इच्छा की कि लोग मुझे जानें अतः मैंने सृष्टि की।" सूफियो के अनुसार इस प्रकार उस परमसत्ता की आत्माभिव्यक्ति की इच्छा से यह सृष्टि अस्तित्व मे आई है।

सूफियो के अनुसार परमात्मा परम सत्ता है और सृष्टि असत् है परन्तु यह असत् उस परमसत्ता को समझने मे ठीक इसी प्रकार सहायक है, जैसे अन्धकार

प्रकाश के जानने में सहायक है। जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश जल मे पडता है और जल मे पडने वाले उसके प्रतिबिम्ब से हम सूर्य को देख सकते है, उसी प्रकार परम सत्ता का असत् के दर्पण मे प्रतिबिम्बत होना ही सृष्टि है और उसके असत् सृष्टि के माध्यम से परम सत्ता का अनुभव किया जा सकता है।

इस प्रकार सूफी सृष्टि को असत् के दर्पण मे प्रतिबिम्बित होने वाली परमात्मा की प्रतिछवि तथा मनुष्य को उस प्रतिछवि की आख जैमा मानते हैं। आख की पुतली मे भी सम्पूर्ण प्रतिछवि उतर आती है, अतएव उस मनुष्य-रूपी आख मे भी परमात्मा की प्रतिच्छवि प्रतिबिम्बित होती है। इस प्रकार एक ओर तो मनुष्य सृष्टि का अग है और दूसरी ओर अपने भीतर भी परमात्मा को भी ग्रहण किए हुए है। उसमे सत् और असत् दोनो ही विद्यमान है। मनुष्य मे विद्यमान ईश्वरीय अश उस विशुद्ध सत्ता की चिन्गारी जैसा है जो अपने मूल उद्गम को लौटने और तद्रूप होने को सतत सचेष्ट रहती है, किन्तु जब तक उसमे असत् तत्त्व विद्यमान रहता है तब तक उसकी चेष्टा सफल नही हो पाती। यह असत् तत्त्व अहम् मे सत्य की प्रतीति कराने वाला है। सब दु खो का मूल अहम् है और इस पर विजय प्राप्त करने के लिए साधना की आवश्यकता है। सूफी लोग साधना को यात्रा तथा साधना के पथ पर अग्रसर होने को मार्ग (सूफी मार्ग) मानते है।

सूफियो ने सूफी मार्ग की कई मंजिलों, अवस्थाओ और मुकामो का वर्णन किया है। इनकी सख्या तथा नामो के सम्बन्ध मे पर्याप्त मतभेद है। कतिपय सूफी विद्वानो ने चार मजिलो और चार अवस्थाओ को स्वीकार किया है। कतिपय अन्य तीन मजिलें मानते हैं, अन्य विद्वान बारह अवस्थाएं और स्थितियाँ मानते हैं। बहुत-से ऐसे भी हैं जिन्होने सात ही मजिलें मानी हैं। सभी सूफी इस बात पर एकमत है कि साधक अपनी बुराइयो को मिटाने पर ही एक के पश्चात् दूसरे गुण को प्राप्त करता और एक से दूसरी मजिल पर पहुचने मे समर्थ होता है। सभी सूफी इस बात पर भी सहमत हैं कि परमात्मा की कृपा होने पर साधक किसी भी मजिल मे दूसरी मजिल का अनुभव कर सकता है।

भारतीय सूफी सूफी-मार्ग की निम्नोक्त चार मजिले और चार अवस्थाएं मानते हैं :—

(१) **नासूत**—यह मनुष्य की प्रकृत और सूफी साधना मे निम्नतम अवस्था है। इस अवस्था मे साधक **शरीअत**—कुरान, हदीस आदि में प्रतिपादित विधि-निषेधों—का पालन करने मे प्रवृत्त रहता है। इसे पार करके ही साधक दूसरी अवस्था मे पहुचता है। इस अवस्था मे साधक मोमिन कहलाता है और वह अब्द से इश्क के मुकाम पर पहुंचता है।

(२) **मलकूत**—इसमें साधक भौतिक जगत् की तुच्छताओं से ऊपर उठकर

पवित्र जाता है तथा देवदूतो के गुण प्राप्त करने मे समर्थ होता है। यह **तरीकत**—पवित्रता की अवस्था है, इसमे साधक आध्यात्मिक पथ पर अग्रसर होता है। इस अवस्था का साधक सालिक कहलाता है और वह इश्क से जहद और जहद से म्वारिफ के मुकाम तक पहुचता है।

जबरूत—इस अवस्था मे साधक तीसरी मजिल—हकीकत पर पहुचकर शक्ति-सम्पन्न हो जाता है। परमात्मा से मिलने की उसके पथ की बाधाएं प्राय दूर हो जाती हैं। इस अवस्था का साधक आरिफ कहलाता है और वह म्वारिफ से वज्द और वज्द से हकीक मुकाम तक पहुचता है।

(४) **लाहूत**—इस अवस्था मे साधक अन्तिम मंजिल मारिफत मे पहुंच जाता है और राग-विराग से विरक्त होकर विशुद्ध ज्ञान प्राप्त करता है तथा चरम-लक्ष्य-परमात्मा से एकमेक होना—प्राप्त कर लेता है। इस अवस्था का साधक हक कहलाता है और वह हकीक से वस्ल और वस्ल से फना के मुकामत क पहुंचता है।

अवस्थाओं, लोक, यात्री की संज्ञा तथा मुकामात को चित्ररूप मे इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है :—

संख्या	अवस्था	लोक	यात्री की सज्ञा	मुकाम प्रारम्भ	 मध्य	 अन्त
१.	शरीयत	नासूत	मोमिन	अब्द	—	इश्क
२	तरीकत	मलकूत	सालिक	इश्क	जहद	म्वारिफ
३	हकीकत	जबरूत	आरिफ	म्वारिफ	वज्द	हकीक
४.	मारिफत	लाहूत	हक	हकीक	वस्ल	फना

सूफीमत के अंग है :—प्रेम, इलहाम (अन्त प्रेरणा), जिक्र (स्मरण), सुरा (मस्ती), कष्टसहिष्णुता, गुरुपूजा, समाधिपूजा, नजूम, आसन, कुण्डलिनी, वस्त्रादि तथा भाषा। इन साधनो का उपयोग लक्ष्य-प्राप्ति में इस प्रकार से किया जाता है :—

ब्रह्म के साथ तादात्म्य का एकमात्र साधन प्रेम है। हृदय मे प्रेम की पीर उदय होने पर साधक अपने अहंभाव और समस्त सासारिक वासनाओ का परित्याग कर ब्रह्म के साथ एकाकार हो जाता है। यही अनलहक (अहं ब्रह्म अस्मि) की स्थिति है। सूफियो के अनुसार नफ्स (जड आत्मा) जीव को पाप की ओर उन्मुख करती है और रूह (चेतन आत्मा) हृदय के स्वच्छ दर्पण मे ईश्वरीय शक्ति के दर्शन कर प्रियतम ईश्वर से मिलन कराती है। इस नफ्स को मारना ही सूफी साधना का चरम लक्ष्य है। ईश्वर का साक्षात्कार बिना पीर अथवा सद्गुरु की सहायता मिले असम्भव है। फना मानवीय गुणो का विनाश और बका ईश्वरीय गुणो की प्राप्ति है। सूफियो का ईश्वर के प्रति प्रेम इश्क मजाजी (लौकिक अनुराग),

से इश्क हकीकी (आध्यात्मिक) की ओर उन्मुख होता है। जब प्रेम इश्क-हकीकी की स्थिति तक पहुंच जाता है तो साधक बाह्य ससार को भूलकर अपने प्रियतम के साथ एकाकार हो जाता है। सूफी साधकों ने ईश्वर की प्रियतमा और साधक की प्रियतम के रूप मे कल्पना करके उसकी प्राप्ति के लिए यत्नविधान को महत्त्व दिया है। कष्टसहिष्णुता के अनेक रूप सूफी साधना मे मान्य है। इनमे अनुताप, आत्म-सयम त्याग-वैराग्य, दारिद्रय, धैर्य, विश्वास और सन्तोष की महती प्रतिष्ठा है। इनसे सच्चे प्रेम की प्राप्ति होती है और प्रेम द्वारा अलौकिक आध्यात्मिक ज्ञान का उदय होता है। पुन अलौकिक ज्ञान से परम सत्ता से मिलन हो जाता है।

मलिक मुहम्मद जायसी की साधना-पद्धति पर विचार करने से पूर्व विभिन्न सूफी सम्प्रदायो का विवेचन अनुपयुक्त न होगा।

सूफी-सम्प्रदाय

सूफियो के अनेक सम्प्रदाय, उपसम्प्रदाय और उनकी अनेक शाखाए-उपशाखाए है। इसका कारण यह है कि ईसवी सातवी-आठवी शताब्दी मे अरब देशो मे ख्यातिलब्ध साधको के साथ अन्य साधको का दल भी रहता था और उस ख्यातिलब्ध महात्मा के नाम पर उस दल का नाम पड जाता था। कालान्तर मे यही दल सम्प्रदाय अथवा शाखा का रूप ले लेता था। बाद मे इनमे शिष्यो-प्रशिष्यों के आ जाने पर अनेक उपसम्प्रदाय तथा उपशाखाए भी अस्तित्व मे आ गईं। इनमे पृथकता बनाए रखने के लिए अपनी-अपनी अलग विशेषताओ का समावेश हो गया।

सूफियों के सभी सम्प्रदायो का प्रारम्भ चार पीरो से माना जाता है। इन चार पीरो के नाम हैं—(१) पीर हजरत मुर्तजा अली, (२) ख्वाजा हसन बसरी, (३) ख्वाजा हबीब आजमी तथा (४) अब्दुल वाहिद बिन जैद कूफी। इन चार पीरों के नाम में मतैक्य नहीं। सभी सूफी-सम्प्रदाय अपने सम्प्रदाय का आविर्भाव हजरत मुहम्मद से मानते है और उनके उपरान्त ही चौथे खलीफा हजरत अली का नाम लेते हैं। सैकडो सूफी-सम्प्रदाय हजरत अली से अपना सम्बन्ध जोड़ते हैं।

भारतवर्ष मे चार प्रमुख सूफी-सम्प्रदाय है—चिश्तिया, कादिरिया, सुहरावर्दिया और नक्शबन्दिया। इसमें से प्रथम तीन हसन अली बसरी से सम्बद्ध हैं और चौथा अबू बक्र से। इन सम्प्रदायों मे साधना-मार्ग तथा सिद्धान्त आदि को लेकर पार्थक्य है।

(१) चिश्ती सम्प्रदाय

भारतवर्ष के चारो सम्प्रदायों मे इस सम्प्रदाय का महत्त्व सर्वाधिक है। कुछ लोग इसका आदि प्रवर्तक ख्वाजा इसहाक शामी चिश्ती को मानते है और दूसरे ख्वाजा अबु अब्दाल चिश्ती को। भारतवर्ष मे इस सम्प्रदाय का प्रवेश ख्वाजा

मुईनुद्दीन चिश्ती के साथ हुआ। इन्होने अजमेर मे अपनी गद्दी स्थापित की। इनके शिष्यों मे ख्वाजा कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी, पाक पत्तन के बाबा फरीद तथा निजामुद्दीन औलिया प्रमुख हैं।

चिश्ती-सम्प्रदाय मे संगीत को महत्ता देते हुए उसके द्वारा साधक की भावाविष्ट अवस्था की प्राप्ति मानी गई है। इस सम्प्रदाय मे साधक को चालीस दिनो तक मस्जिद मे अथवा किसी एकान्त कमरे में परमात्मा का ध्यान करना पड़ता है। इस सम्प्रदाय के लोग सिर पर बडे-बड़े केश और रंगीन वस्त्र धारण करते है।

(२) कादिरी सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय के आदि प्रवर्तक अब्दुल कादिर अल जीलानी है। इनकी मृत्यु के तीन सौ वर्षो के उपरान्त इस सम्प्रदाय का भारत मे प्रवेश हुआ। इसको भारत मे लाने वाले मुहम्मद गौस थे। इस सम्प्रदाय मे जिक्रे सफी और ज़िक्रे जली दोनो का प्रचलन है। इसमे समय विशेष पर प्रार्थना विशेष तथा उच्चारण की शैली विशेष का प्रतिपादन हुआ है। इस सम्प्रदाय के लोग हरे रंग की पगडी बाधते हैं और कम-से-कम एक कपडा अवश्य ही गेरुआ रग का धारण करते है।

(३) सुहरावर्दी सम्प्रदाय

भारतवर्ष मे इसके प्रवर्तक मुलतान-निवासी बहाउद्दीन ज़करिया थे। इस सम्प्रदाय मे दीक्षित होने के इच्छुक को गुरु के आदेश से सर्व-प्रथम छोटे-बडे सभी पापो का प्रायश्चित्त करना पडता है और फिर धर्म पर पूरी तरह ईमान लाने के लिए पाच कलमे पढने पडते हैं। इस सम्प्रदाय मे रोजा-नमाज को विशेष महत्त्व प्राप्त है और नाना प्रकार के कपड़ो से अपने को ढकने का विधान है।

(४) नक्शबन्दी सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय को भारत मे लोकप्रिय बनाने वाले अहमद फारूखी थे। इस सम्प्रदाय की मान्यता हजरत मुहम्मद के समान थी। इनके सुधारो से सूफियो के सगीत-विधान, नृत्य एव साष्टाग दण्डवत् आदि कार्य बन्द हो गए।

इन सम्प्रदायों के सम्बन्ध मे अधिक विस्तार मे जाने की आवश्यकता नही। इनके विषय मे इतना लिखना ही पर्याप्त होगा कि इन सम्प्रदायो का न तो कोई विशेष संगठन था और न ही राज्याश्रय। इन सम्प्रदायो के अनुयायी अपनी व्यक्तिगत महत्ता और साधना के बल पर ही जनता और शासन-वर्ग मे श्रद्धा तथा सम्मान के भाजन बने। इन चारों सम्प्रदायों के सूफियों ने अपनी सरलता, उदारता तथा सहिष्णुता से अपने विरोधियो तक के हृदय को जीत लिया। इन्होने धार्मिक स्थानों का परिभ्रमण कर अपने अनुभवजन्य प्रेममय उपदेशो से तथा अपने आकर्षक व्यक्तित्व से अन्य मतावलम्बियो को प्रभावित कर सूफी-अनुयायियों की संख्या में

आशातीत वृद्धि की। ये लोग जाति-पाँति, वर्ग, समाज आदि के भेदों की सत्ता में विश्वास नही रखते थे। अतः हिन्दु जाति मे अधिकारच्युत निम्न-वर्ग के व्यक्ति इन सम्प्रदायो मे सोत्सुक होकर दीक्षित हो गए।

जायसी और सूफी साधना

मलिक मुहम्मद जायसी चिश्ती सम्प्रदाय मे दीक्षित थे। वे ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती के शिष्य ख्वाजा निजामुद्दीन औलिया की शिष्य-परम्परा मे शेख मुहीउद्दीन के शिष्य थे। उन पर उपर्युक्त सूफी-साधना के गहरे प्रभाव का होना स्वाभाविक है। जायसी की विशेषता यह है कि उन्होने सूफी सिद्धान्तों की काव्यात्मक अभिव्यक्ति द्वारा उन्हे सरस तथा लोकग्राह्य बना दिया है। 'पद्मावत' इस प्रयत्न का एक सफल उदाहरण है।

जायसी ने पद्मावत मे लौकिक प्रेम-कहानी को आध्यात्मिक प्रेम की अभिव्यक्ति का माध्यम माना है। ग्रन्थ के अन्त मे उन्होने इस बात का स्पष्ट सकेत इन शब्दो मे किया है :—

तन चित उर मन राजा कीन्हा। हिय सिंघल बुधि पदमिनी चीन्हा।
गुरु सुआ जेहि पंथ देखावा। बिन गुरु जगत् को निरगुन पावा।
नागमती यह दुनिया-धन्धा। बांचा सोई न एहि चित बन्धा।
राघव दूत सोइ शैतानू। माया अलाउद्दीन सुलतानू।
प्रेम-कथा एहि भान्ति बिचारहु। बूझि लेहु जो बूझै पारहु।

इस रूपक को सूफी साधना के सन्दर्भ मे इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है :—

चित्तौड=तन सालिक-आबिद की 'अक्ल'
रत्नसेन=मन
हीरामन सुआ=गुरु (मुरशिद)
सिंहलद्वीप=हृदय (कल्ब, रूह)
पद्मावती=सहज बुद्धि (मुआरिफ, प्रज्ञा)
नागमती=दुनिया धंधा (नफ्स)

तन (चित्तौड) में स्थित मन (रत्नसेन) साधारणतया लौकिक विषय-वासना मे लिप्त रहता है। उसकी वृत्तियां कायिक होती हैं और वह दुनिया धन्धे (नागमती) मे आसक्त रहता है। ईश्वर की कृपा से उसे एक दिन परमसत्ता के सौन्दर्य का परिचय मिलता है और वह उसकी प्राप्ति के लिए हृदय मे आकुलता अनुभव करता है। पथ-प्रदर्शक गुरु (हीरामन सुआ) की सहायता से वह लक्ष्य-प्राप्ति की ओर अग्रसर होता है। साधक को मार्ग की बाधा (नफ्स, नागमती) से मुक्ति गुरु की कृपा से होती है और उसी की कृपा से वह 'कल्ब' अथवा 'रूह' में स्थित

मुआरिफ (सहज-बुद्धि, प्रज्ञा) की प्राप्ति की ओर बढता है। जायसी ने नफ्स (नागमती) और मुआरिफ (पद्मावती) दोनों को ही सुन्दर चित्रित किया है। नफ्स मुरशिद मे विश्वास नही करती, इसी से नागमती सुए को मार डालना चाहती है परन्तु सालिक एक बार जब मुआरिफ के सौन्दर्य से परिचित हो जाता है तो वह उसको प्राप्त किए बिना रह नही सकता। पद्मावती की प्राप्ति के उपरान्त रत्नसेन का नागमती के साथ रहने का तात्पर्य यह हो सकता है कि मुआरिफ का उदय हो जाने पर सालिक नफ्स-परस्ती से हट जाता है, उसकी इन्द्रिया ऊर्ध्वमुखी हो जाती हैं, अत. उसे नफ्स से भागने की आवश्यकता नही रहती। परन्तु यहा साधक की नफ्स-शुद्धि और उसका प्रज्ञा (मुआरिफ) से मेल उसके रास्ते मे आडे आता है—शैतान और उसका मायाधारी रूप। यद्यपि सहजबुद्धि की प्राप्ति के उपरान्त शैतान अथवा माया का कोई काम नही रहता तथापि जायसी ने साधक के प्रज्ञा के आनन्द मे बाधक रूप शैतान का वर्णन किया है।

जायसी ने सूफी मान्यतानुसार ही परमसत्ता की कल्पना पद्मावती के नारी रूप मे की है। पद्मावती के रूप-सौन्दर्य के चित्रण के व्याज से उस परमसत्ता के सृष्टि के कण-कण मे व्याप्त अलौकिक सौन्दर्य का ही चित्रण किया है। कवि के अनुसार पद्मावती कन्या ऐसी रूपवती थी कि उसकी समता कोई नही कर सकता। जहा ऐसी रूपवती कन्या उत्पन्न हुई, वह देश ही धन्य है :—

इतै रूप मै कन्या जेहि रहि दूज न कोइ।
धनि सो देस रूपवत जहा जन्म अस होइ॥

पद्मावती की अलौकिक छवि और उसके विश्वव्यापक प्रभाव का वर्णन कवि ने अनेक स्थलों पर किया है। पद्मावती के आगमन की सूचना पाकर मानसरोवर सोचता है—उस पारस-पद्मावती ने यहां तक आने की कृपा की है। उसके चरणों के स्पर्श मात्र से मैं निर्मल हो गया हूं। उसके स्पर्श से उसके शरीर की सुरभि मेरे जल मे समा गई है। मेरी अन्तरात्मा शीतल हो गई है। मेरे सभी पाप शान्त हो गए हैं। न जाने किन पुण्यो के परिणामस्वरूप पद्मावती का इधर शुभागमन हुआ है। उसके दर्शन से मेरे समस्त पाप क्षीण हो गए है और मैं पुण्य स्वरूप हो गया हूं—

कहा मानसर चाह सो पाई। पारस रूप इहा लगि आई।
भा निरमल तिन्ह पायन्ह परसे। पावा रूप-रूप के दरसे।
मलय समीर बास तन आई। भा सीतल गै तपनि बुझाई।
न जानौ कौन पौन लेई आवा। पुन्य दसा भई पाप गवावा॥

परम्परागत नख-शिख-वर्णन मे भी जायसी ने पद्मावती के अलौकिक श्रृंगार का मनोहारी चित्रण किया है :—

"का सिगार ओहि बरनौ राजा। ओहिक सिगार ओहि पै छाजा।"

पद्मावती के सौन्दर्य के व्यापक प्रभाव का चित्रण करते हुए कवि कहता है—

"गगन नखत जो जाहि न गने । वै सब बान ओही के हने ।
धरती बान बेधि सब राखी । साखी ठाढ देहि सब साखी ॥"

रत्नसेन को इस दिव्य सौन्दर्य का परिचय सुआ (गुरु) से मिलता है। गुरु से प्रेरणा प्राप्त करके ही वह अपने राजपाट को छोडकर विरक्त साधक के जीवन को अपनाता है। गुरु के महत्त्व का वर्णन करते हुए जायसी का कथन है कि गुरु की कृपा के बिना मनुष्य तत्त्वज्ञान प्राप्त ही नही कर सकता :—

जब लगि गुरु हौ अहा न चीन्हा । कोटि अन्तरपट बीचहि दीन्हा ।
जब चीन्हा तब और न कोई । तन मन जिउ जीवन सब सोई ।

गुरु द्वारा निर्दिष्ट साधना-मार्ग पर अग्रसर होने के लिए जायसी ने साधक के मन मे उत्कट प्रेम-भावना की स्थिति अनिवार्य मानी है। उनके अनुसार पद्मावत रत्नसेन सुए के मुख से पद्मावती के रूप-सौन्दर्य का वर्णन सुनकर उसके प्रति प्रेम में मस्त हो जाता है। वह अनुभव करता है—

तीनि लोक चौदह खड सबै परै मोहि सूझि ।
पेम छाडि किछु और न लोना जो देखौ मन बूझि ॥

सुआ राजा को प्रेम-मार्ग की कठिनता से अवगत कराता है तो राजा निश्चिन्त भाव से स्पष्ट उत्तर देता है—

भलेहि पेम है कठिन दुहेला । दुइ जग तरा पेम जेइ खेला ।
दुख भीतर जो पेम मधु राखा । गजन मरन सहै जो चाखा ।
जेइं नहि सीस पेम पथ लावा । सो प्रिथिमी मह काहे को आवा ।
अब मैं पेम पथ सिर मेला । पाव न ठेलु राखु कै चेला ।
पेम बार सो कहै जो देखा । जैइं न देख का जान विसेखा ।
तब लगि दुख प्रीतम नहि भेटा । जब भेंटा जरमन्ह दुःख मेटा ॥

इस प्रकार जायसी ने रत्नसेन को 'प्रेम की पीर' से ही सफलता का भी साधक चित्रित किया है।

प्रेम-मार्ग के उपासक के लिए **वैराग्य** परमावश्यक है अन्यथा मनुष्य माया-मोह मे फसकर प्रेम-मार्ग से विचलित हो जाता है। प्रेम-मार्ग पर सफल वही हो सकता है जो सिर-धड की बाजी लगाकर तथा दृढ निश्चय करके इस पथ पर आरूढ होता है :—

धुव ते उच पेम धुव उवा । सिर दै पाउ देइ सो छुवा ।
× × ×
एहि रे पंथ सो पहुचै सहै जो दुक्ख वियोग ।

तभी तो रत्नसेन अपने गुरु के उपदेश को सुनकर विरक्त हो गया और उसने लक्ष्य-

प्राप्ति का दृढ निश्चय कर लिया—

उलटि दिष्टि माया सौ रूठी । पलटि न फिरी जानि कै झूठी ।
जो पै नहिँ अस्थिर दशा । जग उजार का कीजै बसा ।
गुरु विरह चिनगी पै मेला । जो सुलगाइ लेइ सो चेला ।
अब कै फनिग भृंगि कै करा । भवर होउं जेहि कारन जरा ।

रत्नसेन के मार्ग मे पहली बाधा अपने परिवार—माता, पत्नी तथा राजपाट को छोडना था । उसने दृढ निश्चय करते हुए इन सब आकर्षणो-बन्धनो का निवारण किया । सबकी उपेक्षा करके वह चल निकला—

कहा न मानै राजा तजी सबाई भीर ।
चला छाडि सब रोवत फिरि कै देइ न धीर ॥

अब घर से निकल पडने के उपरान्त उसे विरत करने वाली अन्य अनेक बाते थी । सर्वप्रथम मन को विचलित करने वाली थी मार्ग की दुर्गमता—

एहि आगे परबत की पाटी । विषम पहार अगम सुठि घाटी ।
बिच बिच खोह नदी औ नारा । ठावहिं ठाव उठंहि बटमारा ।
हनिवंत केर सुनव पुनि हाका । दहु को पार होइ को थाका ।

गजपति ने भी राजा को मार्ग की दुर्लंध्यता का वर्णन करके उसे साधना-पथ से विरत करने का प्रयास किया—

पै गोसाई सो एकँ बिनाती । मारग कठिन जाव केहि भाती ।
सात समुद असूझ अपारा । मारंहि मगरमच्छ घरियारा ।
उठे लहरि नहिं जाइ संभारी । भागहिं कोइ निबहै बैंपारी ।
तुम्ह सुखिया अपने घर राजा । एक जो दुक्ख सहहु केहि काजा ।
सिंघल दीप जाइ सो कोई । हाथ लिहे जिव आपन होई ।

इस पर राजा रत्नसेन तपाक से उत्तर देता है—

जो पहिले सिर दै पगु धरई । मुए केर मीचुहि का करई ।
औ जेइं समुद पेम कर देखा । तेइं यह समुंद बुद बरु लेखा ।

उसका यह जीवनतत्व है—'साधन सिद्धि न पाइय जै लगि सहै न ताप ।' यही कारण है कि मार्ग की इन सब कठिनाइयो को पार करते हुए रत्नसेन अन्तत· सिंहल द्वीप पहुच गया । सिंहल द्वीप का वर्णन जायसी ने अत्यन्त विलक्षण ढग से किया है । वस्तुत. यह पद्मावती-रूपी परमसत्ता का निवासलोक है । उसकी अलौकिक मधुरिमा साधक को भला कैसे मोहित तथा आनन्दित न करेगी ?—

पावन बास सीतल लै आवा । कया डहत जनु चंदन लावा ।
कबहु न ऐस जुडान सरीरू । परा अगिनि महं मलै समीरू ।

निकसत आव किरिन रवि रेखा। तिमिर गए जग निरमर देखा।
उठे मेघ अस जानहु आगे। चमकै बीजु गगन पर लागें।
तेहि ऊपर जस ससि परगासू। औ सौ कचपचिह्न भएउ गरासू।
और नखत चहु दिसि उजिआरे। ठावहि ठांव दीप अस बारे।

सिंहल द्वीप पहुच जाने पर जब सुए ने रत्नसेन से उच्च चक्करदार चढाई वाले सुमेरु पर्वत पर स्थित शिवमन्दिर मे वसन्तोत्सव के दिन पद्मावती के शिव-पूजनार्थ आने की बात कही तो राजा उस पर्वत की ऊचाई को नगण्य बताता हुआ कहता है—

राजै कहा दरस जो पावौ। परबत काइ गगन कह धावौ।
जेहि परबत पर दरसन लहना। सिर सौ चढौ पाय का कहना।

यहाँ कवि ने प्रेम की महिमा का बडा सुन्दर वर्णन किया है—

मानुष पेम भएउ वैकुठी। नाहिं त काह छार एक मूठी।
पेमहि माह विरह औ रसा। मैंन के घर मधु अब्रित बसा।

अब रत्नसेन शिव-मन्दिर मे सिंहासन पर बैठकर पद्मावती-परमसत्ता की प्राप्ति के लिए साधनालीन हो गया। इधर गुरु सुए ने आगे पहुचकर पद्मावती को अपने शिष्य रत्नसेन की साधना का वर्णन करते हुए उसे दर्शन देने का अनुरोध किया—

कठिन पेम विरहा दुःख भारी। राज छाँडि भा जोगि भिखारी।
सूरुज परस दरस की ताईं। चितवै चाँद चकोर कि नाईं।

पद्मावती ने रत्नसेन की परीक्षा लेने का निर्णय किया—

कंचन जौ कसिअै कै ताता। तब जानिअ दहु पीत कि राता।

इस पर सुए का अनुरोधपूर्ण कथन है—

कहा कहौ मैं ओहि कह जेइ दुख कीन्ह अमेट।
तिहि बिन आगि करौं यह बाहर होइ जिहि दिन भेट॥

अब सुआ वियोगदग्ध रत्नसेन के पास पहुचा और उसे पद्मावती के प्रसाद का समाचार देकर आश्वस्त किया। इस वर्णन में अलौकिक भाव की व्यञ्जना दर्शनीय है—

आवा सुवा बैठ जहँ जोगी। मारग नैंन वियोग वियोगी।
आइ पेम रस कहा सदेसू। गोरख मिला मिला उपदेसू।
तुम्ह कहं गुरु माया बहु कीन्हा। लीन्ह अदेस आदि कहं दीन्हा।
सबद एक होइ कहा अकेला। गुरु जस भृंगि फनिग जस चेला।
ताकहं गुरु करै असि माया। नव अवतारु देइ नै काया।

पद्मावती ने साधक को जिस रूप मे सुना था, उसी रूप मे ही पाया परन्तु साधक

दिव्यसत्ता के अनुपम सौन्दर्य को सहन न कर सका, अपनी चेतना को स्थिर न रख सका—

नैन कचोंर पेम मद भरे। भइ सुदिस्टि जोगी सौं ढरे।
जोगी दिस्टि दिस्टि सो लीन्हा। नैन रूप नैनन्ह जिउ दीन्हा।
जो मधु चहत परा तेहि पाले। सुधि न रही, ओहि एक पियाले।
परा माति गोरख का चेला। जिउ तन छाँडि सरग कह खेला।

पद्मावती रत्नसेन से अब अपनी प्राप्ति के मार्ग का स्पष्ट निर्देश करती हुई कहती है—

अब जौ सूर अहै ससि राता। आइहि चढि सो गगन पुनि साता।

सचेत होने पर रत्नसेन उस दिव्य सत्ता को अपने समक्ष न पाकर जल-वियुक्त मछली के समान अपने को विरहातुर अनुभव करने लगा। आवेश मे आकर वह महादेवी को भी बुरा-भला कहने लगा और आत्मदाह की तैयारी करने लगा। उस समय महादेव ने प्रत्यक्ष होकर उससे प्राण-परित्याग का कारण पूछा। रत्नसेन की आकुलता को देखकर पार्वती उसकी परीक्षा लेने की दृष्टि से एक सुन्दरी के रूप मे उसके समक्ष प्रकट हुई परन्तु उस दिव्य सत्ता के सौन्दर्य के प्रेमी ने एकदम उत्तर दिया—

भलेहि रग तोहि आछरि राता। मोहि दो सरे सौ भाव न बाता।

साधक और साध्य का अन्तर कितना स्पष्ट है—

ओहि न छोरि कछु आसा हौ ओहि आस करेउं।
तेहि निरास प्रीतम कहं जिउ न देउ का देउ॥

इसकी तुलना तुलसी के निम्न कथन से कीजिए—

"मो सम तोको बहुत हैं तोसौ मोको नाहिं।"

रत्नसेन की अनन्य निष्ठा देखकर पार्वती ने महादेव से उसकी सहायता का अनुरोध किया और महादेव ने परमसत्ता के निवास-स्थान सिंहलगढ़ के रहस्य से साधक को निम्न रूप से अवगत कराया—

नौ पौरी तेहि गढ मझि आरा। औ तहं फिरहि पाँच कोटवारा।
दसवं दुआर गुपुत एक नाकी। अगम चढाव बार सुठि बाकी।
भेदी कोइ जाइ ओहि घाटी। जौलै भेद चढै होइ चांटी।
गढ तर सुरंग कुड अवगाहा। तेहि महं पथ कहौ तोहि पाहा।
चोर पैठि जस सेंधि संवारी। जुआ पैत जेउ लाव जुआरी।
जस मरजिआ समुद धंसि मारै हाथ आव तब सीप।
ढूंढि लेहि ओहि सरग दुवारी औ चढु सिंघल दीप॥

इस प्रकार शिव द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर चलते हुए और अनेक कष्ट-बाधाओ को सहन करते हुए अन्त में वह अपने लक्ष्य—परमसत्ता से समागम-प्राप्ति में

सफल हो गया और उसके उपरान्त उसके लिए कुछ भी शेष प्राप्तव्य न रहा, उसका जीवन कृत-कृत्य हो उठा।

इस प्रकार जायसी ने पद्मावत मे सूफी साधना की सरस अभिव्यक्ति की है। रत्नसेन मारिफत की अवस्था में पहुंचकर ही पद्मावती की प्राप्ति मे सफल होता है। दोनो के ऐक्यभाव का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

जनहु औटि कै मिलि गए तस दूनौ भए एक।
कचन कसत कसौटी हाथ न कोऊ टेक।।

सूफी साधना मे मान्य चार अवस्थाओ का वर्णन करते हुए जायसी का कथन है—

'चार बसेरे सो चढे सत सों उतरै पार।'

अखरावट में इन चारो अवस्थाओ का स्पष्ट उल्लेख इस प्रकार से हुआ है—

कही तरीकत चिसती पीरू। उधरित असरफ और जहंगीरू।
राह हकीकत परै न चूकी। पैठि मारफत मार बुडूकी।

× × ×

साची राह सरीअत जेहि विसवास न होय।
पाँव राख तेहि सीढी पाव राख नहिं कोई।।

अन्तिम अवस्था मारिफत मे डुबकी लगाने के फल का गुणगान करते हुए कवि लिखता है—

ढूठि उठै लइ मानिक मोती। जाइ समाइ जोति मह जोती।

अर्थात् मारिफत मे जाकर जीवात्मा (मनुष्य की ज्योति) ब्रह्म की ज्योति मे लीन हो जाती है। इसमे सहायक होता है गुरु—

जेहिं पावा गुरु मीठ सो सुख-मारग मह चलै।
सुख अनद भी डीठ, मुहमद साथी पोढ जेहिं।

सूफी-साधना मे अगरूप से मान्य अनुताप, सयम, सन्तोष, अकिंचनता, विश्वास, कष्ट-सहिष्णुता आदि भावो की जायसी के काव्य मे सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। इनमे सर्वप्रथम अनुताप दर्शनीय है। 'सुआ खण्ड' मे तोता आत्मचिन्तन के माध्यम से **पश्चात्ताप** करता हुआ लोक-भावना को इस प्रकार अभिव्यक्त करता है—

सुखी निचित जोरि धन करना। यह न चित आगे है मरना।
भूले हमहु गरब तेहि माहा। सो बिसरा पावा जेहिं पाहा।
होइ निचित बैठे तेहि आडा। तब जाना खोचा हिए गाडा।।
चरन न खुरुक कीन्ह जिउ, तब रे चरा सुख सोइ।
अब जो फांद परा गिउ तब रोए का होइ ?।।

अर्थात् मनुष्य सम्पत्ति सचय करते-करते मर जाता है परन्तु संचय-काल मे मृत्यु का स्मरण नही करता। इसी प्रकार मानव भ्रान्ति मे पड़कर अनेक भोगो के दाता

ईश्वर का विस्मरण कर बैठता है और यही उसके दुखो का मूल कारण है।

इस प्रकार इसमे दुख के मूल-हेतु के साथ परमात्मसत्ता के विस्मरण के प्रति पश्चात्ताप की अभिव्यक्ति हुई है।

भोगों की उपेक्षा और सहजलब्ध से **सन्तोष** की अभिव्यक्ति निम्न पंक्तियो में दर्शनीय है—

जोगिन्ह काह भोग सो काजू। चहै न मेहरी चहै न राजू।
जूड कुरकुटा पै भलु चाहा। जोगिहि तात भात दहु कहा।

त्यागवृत्ति के उत्कृष्ट रूप का वर्णन जायसी ने इन पक्तियो मे किया है—

छाडेन्हि लोग कुटुम्ब घर सोऊ। भे निनार दुख सुख तजि दोऊ।
संवरै राजा सोइ अकेला। जेहि रे पथ खेलै होइ चेला।
नगर नगर औ गावहि गाऊ। चला छाडि सब ठावहि ठाऊ।
काकर घर काकर मढ माया। ताकर सब जाकर जिउ काया।

आत्मसमर्पण, धैर्य और लक्ष्य के प्रति आस्था की भावना भी स्थान-स्थान पर अभिव्यक्त हुई है—

(क) जेहि के हिय पेम रंग जामा। का तेहि भूख, नीद, विसरामा।
(ख) रंग नाथ हौ जाकर हाथ ओही के नाथ।
गहे नाथ सो खाचै फेरे फिरै न मॉथ॥

रत्नसेन के **धैर्य** के दर्शन उसकी पद्मावती की खोज के प्रसंग मे होते हैं। विकार के हेतु के होने पर भी चित्त-विकृति का न होना धैर्य कहलाता है। रत्नसेन मार्ग की कठिनाइयो को सुनकर अत्यन्त धीरता के साथ उत्तर देता है—

औ जेइं समुद पेम कर देखा। तेई यह समुद बुंद वरु लेखा।
× × ×
जेइं पैं जिय बॉधा सतु बेरा। वरु जिय जाय फिरै नहिं फेरा।

मनुष्य का सबसे प्रबल शत्रु **अहंकार** है। रत्नसेन इसी अहंकार के कारण ही पद्मावती को पाकर भी संकट का सामना करता है—

तस फूला मन राजा लोभ पाप अंध कूप।
आइ समुद ठाढ भा होइ दानी के रूप॥

इसलिए कवि कहता है—

आपुहि खोए पिउ मिलै पिउ खोए सब जाइ।
देखहु बूझि विचार मन लेहु न हेरि हेराइ॥

इसी प्रकार जायसी के काव्य मे सूफी साधना मे मान्य सिद्धान्तो के परिप्रेक्ष्य मे ही परम सत्ता का, उसके प्रतिबिम्ब के रूप मे सृष्टि का, उसके अंश-रूप में जीव का, अज्ञान के कारण जीव की पथ-भ्रष्टता का, गुरु द्वारा जीव के उद्बोध और

मार्ग-दर्शन का, त्याग, तपस्या तथा अटल अनुराग (प्रेम भावना) द्वारा जीव के ब्रह्म से मिलन का तथा साधनामार्ग की विविध कठिनाइयो का वर्णन हुआ है ।

जायसी और अन्य साधन पद्धतियां : इस्लाम, वेदान्त बौद्ध तथा योग

जायसी पर सूफी साधना के अतिरिक्त कतिपय अन्य साधना-पद्धतियो के प्रभाव का परिचय भी मिलता है । इस्लाम का मूल-मत्र है—

'ला इला इल्लिला मुहम्मद रसूल इला ।'

अर्थात् अल्लाह एक है और वह निर्गुण निराकार है। मुहम्मद साहब पैगम्बर हैं । इस्लाम की मान्यता है कि कयामत के दिन वे ही जीव को किये पापो के परिणाम-स्वरूप मिलने वाले दण्ड से बचाते है । स्वर्ग, नरक कर्मानुसार मिलते हैं अतः मनुष्य को सदाचरण करना चाहिए ।

जायसी मुसलमान होने के कारण इस्लाम और मुहम्मद मत पर दृढ आस्था रखते हैं । उनके अनुसार—

सो बड पंथ मुहम्मद केरा । है निरमल कविलास बसेरा ।
लिखि पुरान विधि पठवा साचा । भा परवीन दुवौ जग वाचा ।
सुनत ताहि नारद उठि भागै । छूटै पाप, पुन्नि सुनि लागै ॥

अर्थात् मुहम्मदी मार्ग श्रेष्ठ और निर्मल है, कुरान उसका प्रामाणिक ग्रन्थ है । कुरान की आयतो (मन्त्रों) को सुनते ही शैतान भाग जाता है, पाप छूट जाते हैं और पुण्यो की प्राप्ति होती है ।

जायसी का ईश्वर इस्लाम के ईश्वर से मिलता-जुलता है । जहां कही उन्हे अवसर मिला है वहा उन्होने एकेश्वर का वर्णन किया है—

सुमिरौ आदि एक करतारू । जेहि जीउ दीन्ह कीन्ह संसारू ।

जायसी ने मुहम्मद साहब के प्रति भी असीम श्रद्धा का भाव स्थान-स्थान पर प्रकट किया है—

(क) कीन्हेसि पुरुष एक निरमरा । नाम मुहम्मद पूनौ करा ।
(ख) जोन होत अस पुरुष उजारा । सूझि न परत पथ अंधियारा ।

प्रलय के दिन जीव के कर्मानुसार उसे सुख-दु ख तथा अच्छे-बुरे जन्म की प्राप्ति को मान्यता देते हुए जायसी का कथन है—

'गुन अवगुन विधि पूछव होइहिं लेख औ जोख ।'

मुहम्मद साहब उस समय जीव के मोक्ष-लाभ मे सहायक होंगे, इस आस्था को वाणी देते हुए कवि कहता है—

वह विनवउ आगे होइ करव जगत कर मोक्ख ।

इस्लाम आचरण-शुद्धि पर विशेष बल देता है और इसके लिए चार साधनों

के अनिवार्य रूप से अपनाने पर बल देता है। इन चार साधनो को इस्लामिक आचार के चार अग कहा जाता है। वे चार है—(१) रोजा (व्रत) (२) नमाज (प्रार्थना) (३) जकात (दान) तथा (४) हज (तीर्थ यात्रा)। प्रत्येक मुसलमान के लिए प्रतिदिन नमाज पढना, साल मे एक महीना (रमजान के महीने मे) रोजे रखना, अपनी आय का चालीसवां भाग दान करना तथा जीवन मे कम-से-कम एक बार मक्का-मदीना की यात्रा करना परमावश्यक है। इन अगो को न अपनाने वाला सच्चा मुसलमान नही कहला सकता।

जायसी के काव्य मे प्रथम और अन्तिम (रोजा तथा हज) का तो उल्लेख नही हुआ परन्तु द्वितीय, तृतीय (नमाज और जकात) का स्पष्ट महत्त्व वर्णित है। नमाज की महिमा के सम्बन्ध मे जायसी का कथन है—

'पढै नमाज सो बड गुनी।'

दान की महिमा का तो विस्तृत वर्णन रत्नसेन के दान के औचित्य-निदर्शन के माध्यम से इस प्रकार हुआ है—

लोभ न कीजै दीजै दानू। दान पुन्न तें होइ कल्यानू।
दरब-दान देवै विधि कहा। दान मोख होइ, दुख न रहा।
दान आहि सब दरब का जूरू। दान लाभ होइ बांचै मूरू।
दान करै रच्छा मझ नीरा। दान खेइ कै लावै तीरा।
दान करन दै, दुइ जग तरा। रावन सेंचा अगिनि मह जरा।
दान मेरु बढि लागि अकासा। सैंति कुबेर मुए तिहि पासा।

जायसी ने सूफी तथा इस्लामी साधना के अतिरिक्त कतिपय अन्य भारतीय साधना-पद्धतियो के उपयोगी तत्त्वो को भी ग्रहण किया है। वस्तुत. कतिपय तत्त्व ऐसे है, जिनकी सभी साधना-पद्धतियो में समान रूप से मान्यता है। गुरु की महत्ता की स्वीकृति इसी प्रकार का एक तत्त्व है। सूफी तथा इस्लामिक विचारधारा में ही नही, उपनिषदो में भी उसके महत्त्व का प्रतिपादन किया गया है। जायसी ने जहाँ इस्लाम के महत्त्व का वर्णन किया है, वहाँ वेदो के प्रति भी श्रद्धा-भाव दिखलाया है—

वेद वचन मुख सांच जो कहा। सो जुग जुग अस्थिर होइ रहा।

'तन चित उर मन राजा कीन्हा' के अनुसार रत्नसेन-पद्मावती की लौकिक प्रेम-कथा को आध्यात्मिक रूप देते हुए जायसी ने—'माया अलाउद्दीन सुलतानू' सुलतान अलाउद्दीन को माया का प्रतीक माना है। यहा यह उल्लेखनीय है कि सूफी चिन्तनधारा मे माया का कोई स्थान नही है। भारतीय अद्वैत दर्शन मे माया ब्रह्म-जीव के मध्य व्यवधान डालने वाली तथा जीव को ऐन्द्रियता की ओर ले जाने वाली स्वीकार की गई है। इस्लाम मे माया का स्थान शैतान ने ले लिया है। अलाउद्दीन

को 'माया' कहकर जायसी ने भारतीय दार्शनिक चिन्तन (उपनिषद) की मान्यता को ही अपना लिया है।

जायसी पर **बौद्ध-दर्शन** का प्रभाव भी दिखाई देता है। संसार की अस्थिरता तथा स्वप्न-तुल्यता—'यह संसार सपन कर लेखा। बिछुरि गए जानौ नहिं देखा।' के वर्णन में तथा शून्यतत्त्व से सृष्टि की उत्पत्ति और शून्य मे ही विलय के विश्वास मे बौद्ध-दर्शन का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। जायसी का कथन है—

भा भल सोइ जो सुन्नहि जानै। सुन्नहिं तें सब जग पहिचानै।
सुन्नहि तें है सुन्न उपाती। सुन्नहि तें उपजहिं बहु भाति।

जायसी की मान्यता पर **सिद्ध नाथ पन्थ** का प्रभाव भी कही-कही दिखाई देता है। जायसी ने रत्नसेन को पद्मावती के अनुपम सौन्दर्य को सुनकर उसकी प्राप्ति मे नाथपन्थी योगी के समान ही वेशधारी चित्रित किया है—

तजा राज राजा भा जोगी। औ किंगरी कर गहै वियोगी।
तन विसभर मन बाउर रटा। अरुझा पेम परी सिर जटा।
चद बदन औ चदन देहा। भसम चढाइ कीन्ह तन खेहा।
मेखल सिंगी चक्र धंधारी। जोगौटा रुद्राख अधारी।
कथा पहिरि डंड कर गहा। सिद्ध होइ कहं गोरख कहा।
मुद्रा स्रवन कंठ जपमाला। कर उपदान काध बघ छाला।
पावरि पांव लीन्ह सिर छाता। खप्पर लीन्ह भेस कै राता॥

इसके अतिरिक्त सिंहल द्वीप, सिंहलगढ तथा रत्नसेन-पद्मावती मिलन-स्थलो मे भी यौगिक वर्णन आए है—जो नाथपन्थ के प्रभाव के अन्तर्गत है। नाथपन्थ की मान्यतानुसार ही जायसी ने रत्नसेन द्वारा पद्मावती-प्राप्ति रूप सिद्धि प्राप्त कर लेने पर भी उसे पूर्ण परिष्कृत नही माना, प्रत्युत प्रसुप्तावस्था मे विद्यमान वासनारूपी नागमती के बन्धन मे फंसकर पतित होता चित्रित किया है। नाथपन्थी मान्यता के अनुसार ही कवि का कथन है—

काया जीउ मिलाइ कै कीन्हेसि अनंद उछाहु।
लवटि बिछोह दीन्ह तस कोउ न जानै काहु॥

वस्तुतः जायसी ने काया-गढ के रूप मे सिंहल का जो वर्णन किया है और 'गढछेकाखण्ड' मे सिंहल विजय की कठिनाइयो का जैसा चित्रण किया है उससे यह स्पष्ट है कि वे नाथो की विचारधारा से ही नही, कथा-परम्परा से भी प्रभावित है। पद्मावत मे योग की शब्दावली और साधना का परिचय इसके प्रमाण हैं।

पद्मावत में सूफी साधना के उपरान्त सर्वाधिक वाणी योग-साधना को मिली हैं। जायसी योगसाधना से उतना ही अधिक परिचित दिखाई देते हैं, जितना कि सूफी साधना से। उन्हे योगियों की साधना के अनेक भेद ज्ञात हैं। गुरु, चेला, धातु-कमाना, रसायन सिद्धि, हरतार, गन्धक-कुरकुटा, सिद्धि-गुटका, मेखला, सिंघी, चक्र,

घधारी, जोगबाट, रुद्राक्ष, अधारी, कथा, दण्ड, मुद्रा, जपमाला, उद्पान, बघ-छाला, पावरी, छाता, खप्पर, वज्रासन, सुखमना, पिंगला, आहार-सयम, ध्यान, अनहृद आदि के उल्लेख जायसी के योगसाधना के घनिष्ठ परिचय के ही सूचक है।

सूफी साधना की एकान्त प्रतिष्ठा

यहां यह उल्लेखनीय है कि जायसी ने योगसाधना पर सूफी साधना की विजय दिखाई है। योगसाधना का मूलतत्व है—तप-उपासना और सूफी-साधना का मूल है—प्रेमभावना। पद्मावत के पूर्वार्द्ध मे योगसाधना की महत्ता का वर्णन है। रत्नसेन इस योग साधना से ही पद्मावती की प्राप्ति मे सफल होता है परन्तु पद्मावती की सखिया उसके योगी वेश की खिल्ली उडाती हुई उसके सम्बन्ध मे प्रश्न करती हैं—

भतु कमाए सिखे तें जोगी। अब कस जस निरधातु वियोगी।
कहा सो खोए बीरौ लोना। जेहि रे होइ रूप औ सोना।

स्वय पद्मावती रत्नसेन के योगी रूप के प्रति घृणा का भाव दिखाती है—

.. ..। आवै बास कुरकुटा कोरी।
देखि भभूत छूत मोहि लागा। ... ...।
जोगी तोरि तपसी कै काया। लागी चहै अग मोहि छाया।

योगियो के प्रति पद्मावती के निन्दापरक वचन दर्शनीय है—

जोगी सबै छन्द अस खेला। तू भिखारी केहि माँह अकेला।
पवन बाधि उपसर्वाहि अकासा। मनसहि जहाँ जाहि तेहि पासा।
तै तेहि भाति सिस्टि यह छरी। एहि भेस रावन सिय हरी।

इतना ही नही, उसे तत्त्व की बात समझने की प्रेरणा देती हुई पद्मावती कहती है—

जोगि भिखारि करसि बहु बाता। कहे सि रंग देखौ नहि राता।
कापर रगे रग नहि होई। हिए औटि उपजै रंग सोई।
जरै विरह जेउं दीपक बाती। भीतर जरै उपर होइ राती।

अन्तत. पद्मावती रत्नसेन के साथ पासा खेलने के व्याज से उसकी परीक्षा लेती है और उसे सच्चा प्रेमी पाने पर ही उसे अपनाने को प्रस्तुत होती है—

विहसि धनि सुनि कै बाता। निस्चै तू मोरे रँग राता।

योगी रत्नसेन के मुह से जायसी ने प्रेम की महिमा का कथन इस प्रकार से कराया है—

सुनु धनि पेम सुरा के पिए। मरन जियन उर रहै न हिए।

इस प्रकार जायसी ने योगमार्ग पर प्रेमतत्त्व की प्रतिष्ठा की है। वस्तुत: बहुत-सी बातो मे उन दिनो योगियो और सूफियो मे साम्य था। दोनो समान रूप से अन्तस्साधना पर बल देते थे और पिण्ड मे ब्रह्माण्ड को देखने व ढूढने की बात करते

थे। दोनों मे अन्तर साधना के रूप में था। योगी लोग प्राणायाम, ध्यान, समाधि आदि द्वारा उसके दीदार करने के समर्थक थे और सूफी अनन्य प्रेमनिष्ठा के पक्षधर थे। जायसी ने रत्नसेन को योगियों के समान साधक बताते हुए सूफी साधना का सच्चा प्रेमी तथा सौन्दर्योपासक चित्रित किया है और लक्ष्य-प्राप्ति के उपरान्त रत्नसेन से कहलाया है—

का पूछहु तुम धातु निछोही। जो गुरु कीन अन्तरपट ओही।
सिधि-गुटका अब मो सग कहा। भएउ सग सत हिए न रहा।

जायसी की आस्था निश्चित रूप से ही योगमार्ग की अपेक्षा सूफी मार्ग पर अधिक थी। जायसी ने कबीर को सूफी और नारद को योगी मानकर—

'ना नारद तब रोय पुकारा। एक जुलाहे तें मै हारा।'

योगमार्ग पर सूफीमत की विजय दिखाई है।

इसी प्रकार इस्लाम भी शरीयत को महत्त्व देता है। उसमे रोजा, नमाज आदि की व्यवस्था मान्य है परन्तु जायसी ने इसे भी मान्यता नही दी। उन्होने सूफियो की प्रेमसाधना को ही ब्रह्म-प्राप्ति का एकमात्र साधन स्वीकार किया है। उनके अनुसार जीव और ब्रह्म आदि मे ऐब थे, बाद मे दोनो मे भेद उत्पन्न हो गया। जीव के लिए ब्रह्म का विरह असाध्य हो गया और वह अभिन्नता के लिए तडपने लगा, तड़प ही जीव की विरह-साधना है—

हुआ जो एक हि सग हौं तुम्ह काहे बीछुरे।
अब जिउ उठै तरग मुहम्मद कहा न जाइ किछु।

प्रेम की यह तरग ही प्रेमसाधना है और इसे जायसी ने सिर हथेली पर रखने वाले का विषय माना है—

आपुहि खोइ ओहि जो पावा। सो बोरी मनु जाइ जमावा।

इस प्रकार जायसी ने न तो योगियो की कामसाधना को महत्त्व दिया है और न ही इस्लाम के बाह्याचार को। उन्होने तो एकमात्र प्रेमतत्त्व को गौरव दिया है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जायसी की साधना मूलत सूफी साधना है। सूफी सिद्धान्तो की ही रसात्मक अभिव्यक्ति जायसी का काव्य है। जायसी मुसलमान होने के कारण इस्लाम की मान्यताओ से भी प्रभावित है, साथ ही अपने युग के योगियों से भी विशेष प्रभावित हैं। भारतीय हिन्दुओ के सम्पर्क मे आने के कारण उन पर वेदान्त तथा बौद्धमत का भी कुछ कच्चा-पक्का प्रभाव दिखाई देता है परन्तु इसका न तो यह अर्थ है कि जायसी की साधना-पद्धति भानमती का पिटारा है, न ही समन्वयात्मकता की चेष्टा को लिए हुए है और न ही सभी साधनाओं के उपयोगी तत्त्वों को ग्रहण किए हुए है। मूलत· जायसी की साधना सूफी साधना-पद्धति है। अन्य साधना-पद्धतियो के जो-जो तत्त्व उसके अनुरूप है तथा मान्य हैं, उन्ही का ही केवल ग्रहण हुआ है। इसे दूसरे शब्दो में इस प्रकार कह सकते है कि जायसी ने मात्र

सूफी साधना को वाणी दी है। सूफी-साधना के तथा अन्य साधनाओ के कतिपय तत्त्वो मे पर्याप्त अशो मे समानता है, अत' उनके द्वारा अन्य साधनाओ को वाणी देने का सन्देह होता है, अन्यथा उन्होने जहाँ भी सूफी-साधना-पद्धति की उपेक्षा कर अन्य किसी साधना-पद्धति के तत्त्व का ग्रहण किया है, वहा कुछ घपला-सा भी हो गया है। उदाहरणार्थ कवि ने इस्लाम के शैतान, वेदान्त की माया और योग-मार्गियों, सूफियो के दुनिया-धन्धा को एक साथ लेकर कथानक को उलझा-सा दिया है। इस प्रकार के प्रयत्न को छोडकर अन्यत्र सूफी-प्रभाव और स्वच्छ स्पष्ट है। स्थान-स्थान पर योगमत के चित्रण व पाठक के मन मे कवि पर उसके प्रभाव की उत्कटता को ज्ञापित अवश्य करते हैं परन्तु यह सब पूर्वपक्ष के रूप मे है। जिस प्रकार कृष्णभक्त कवियो ने भ्रमरगीत'प्रसग द्वारा निर्गुण पर सगुण की प्रतिष्ठा की है, उसी प्रकार का ही यह प्रयास समझना चाहिए।

समग्रत. जायसी सच्चे बाशरा सूफी थे। सूफीमत इस्लाम मत का ही विकसित रूप है। इस प्रकार जायसी ने मूलभाव से तो सूफी साधना को अपनाया है और इस साधना से मेल खाते हुए अन्य साधनाओं के कतिपय तत्त्वो का भी वर्णन हुआ है। यों वेदान्त, बौद्ध, योगसिद्धि तथा इस्लाम के प्रभाव को नकारा तो नही जा सकता परन्तु उनसे जायसी की मूल साधना मे विशेष अन्तर नही आया। उन्होंने सूफी मान्यतानुसार ही सृष्टि को परमसत्ता का दर्पण, परमसत्ता को दिव्य सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति, सासारिकता मे लिप्त साधक को गुरु द्वारा ज्ञान-प्राप्ति, गुरु द्वारा मार्ग-प्रदर्शन एव प्रेरणा, सच्चे प्रेम की पीर द्वारा अनेक कष्टो को सहने के उपरान्त लक्ष्य-सिद्धि अर्थात् जीव-ब्रह्म का पानी, शराब के समान मिलन आदि का वर्णन किया है। पद्मावत की कथा मे अन्य साधनाओ के तत्त्वो के निर्वाह मे कवि के प्रयत्न की सफलता अद्यावधि विवादास्पद है। निष्कर्षत: जायसी की साधना एक सच्चे सूफी की आदर्श साधना है।

जायसी का पद्मावत तथा अन्य कृतियां

पद्मावत की संक्षिप्त कथा

पद्मावत जायसी की एक महत्त्वपूर्ण काव्य-रचना है जिसमे कवि ने अपनी काव्य-प्रतिभा को जीवंत रूप प्रदान किया है। सम्पूर्ण पद्मावत, ५७ खण्डों मे विभक्त है। इस मे कवि ने मसनवी शैली के अनुसार सर्वप्रथम स्रष्टा की स्तुति की है और तत्पश्चात् पैगम्बर मुहम्मद और उसके चार खलीफाओ की कार्यक्षमता का वर्णन कर तात्कालिक शासक सम्राट शेरशाह के रूप, गुण, यश का बखान कर अपनी गुरु-परम्परा का उल्लेख किया है और उसके बाद अपने परिचय के साथ साथ ग्रन्थ-रचना का स्थान, समय आदि दे कर पद्मावत की संक्षिप्त कथा दी है।

सिंहलद्वीप खंड मे कवि ने सिंहलद्वीप के वैभव और वहा की पद्मिनी स्त्रियों का चित्रण कर वहा के राजा गन्धर्व सेन के वैभव का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है।

जन्मखण्ड के अन्तर्गत गन्धर्व सेन की पुत्री पद्मिनी के जन्म, शैशव, बाल्य एवं किशोरावस्था का चित्रण कर कवि ने बताया कि उसके पास एक विद्वान तोता था जो अन्तत. उस के लिए वर खोजने निकलता है। **मानसरोदक-खण्ड** मे मानसरोवर में पद्मावती और उस की सखियो की जलक्रीड़ा का चित्रण किया गया है जो कवित्व की दृष्टि से अत्यन्त ही मनोहारी है। इधर हीरामन तोता जो पद्मावती के लिए वर खोजने जगल मे निकला था वह बहेलिये के फंदे मे आता है और एक ब्राह्मण व्यापारी द्वारा खरीदा हुआ वह चित्तौड के राज्य मे जा पहुचता है।

चित्तौड मे चित्रसेन राजा के घर जन्मे रत्नसेन को ज्योतिषियो ने एक ऐश्वर्यशाली राजा होने की भविष्यवाणी की थी जो पिता के बाद राज्यासीन हुआ और उसी के दरबार मे अन्ततः हीरामन पहुंच गया, जहां एक बार रत्नसेन की पत्नी नागमती के आगे पद्मावती की प्रशसा करने पर उस के लिए वध की आज्ञा मिली, पर दासी उस का वध न कर अन्ततः उसे बचा लेती है। राजा से हीरामन की भेंट होने पर कवि ने बताया कि हीरामन ने पद्मावती के रूप-सौन्दर्य की चर्चा रत्नसेन के सामने जब की तो राजा अचेत हो गया। होश मे आने पर राजा जोगी बनकर सिंहलद्वीप की ओर चल पडता है जहाँ मार्ग की अनेक बाधाएं

पार कर वह हीरामन के निर्देश से महादेव की मढी पर पद्मावती से मिलन की प्रतीक्षा करता है।

वसंत पचमी के पर्व पर पद्मावती सखियो के साथ देवपूजन को मन्दिर पहुचती है। उसे देखकर राजा जो अब जोगी बना हुआ है सुधबुध खो बैठता है तब तक पद्मावती पूजा कर वापस चली जाती है। उस के वियोग मे राजा जल मरने को प्रस्तुत होता है जिसे पार्वती-महेश बचा लेते है और उसे सिंहलगढ पर जाने का मार्ग बताकर उसकी सहायता करते हैं।

सिंहलद्वीप पर रत्नसेन की चढाई का समाचार पाकर गन्धर्व सेन ने उसे पराजित कर वध का आदेश दे दिया जिसे वह एक स्वप्न-दर्शन के बाद वापस ले कर अपनी पुत्री का विवाह करने को प्रस्तुत हो जाता है। यहां विवाह उपरान्त षड्ऋतु-वर्णन के माध्यम से कवि ने दोनो के सयोग-शृगार का चित्रण भी किया है।

इधर रत्नसेन के विरह मे संतप्त नागमती पक्षियो के माध्यम से अपनी विरह-वेदना का सदेश रत्नसेन को भेजती है जिसे प्राप्त कर रत्नसेन पद्मावती को ले कर अपने राज्य की ओर चल पडता है। मार्ग मे अनेक बाधाए झेल कर जब वह राज्य मे लौटता है तो एक दिन उसका राघव चेतन—दरबारी ज्योतिषी से झगडा हो गया। राघव चेतन क्रोध मे दरबार छोड दिल्ली के शासक अलाउद्दीन के पास पहुच उसे पद्मावती के रूप-सौन्दर्य का वर्णन कर आक्रमण के लिए तैयार करता है। पद्मावती के रूप-सौन्दर्य की चर्चा से मुग्ध अलाउद्दीन चित्तौड पर आक्रमण कर जब सफलता प्राप्त नही कर सकता तो वह राजा से संधि करता है।

सधि के भोज के समय दर्पण मे पद्मावती के रूप को देख वह छल से राजा को पकडवा कर दिल्ली ले जाता है जिसे छुडाने के लिए रत्नसेन के सेनापति गोरा-बादल कपट से कहार बन कर राजा को छुडा कर वापस ले आते है। इधर एक अन्य शासक जो मूलत पद्मावती पर आसक्त था रत्नसेन के साथ युद्ध करता है जहा रत्नसेन की मृत्यु हो जाती है। रत्नसेन की मृत्यु का समाचार पाते ही दिल्ली का बादशाह गढ को घेरने के लिए पुन. आ गया पर सभी राजपूत प्राणपण से गढ को बचाने का प्रयास करते हैं जहा अन्त मे वे पराजित होते हैं। गढ मे प्रविष्ट बादशाह देखता है कि उस के आने से पूर्व पद्मावती और नागमती सती हो चुकी है। वही पड़ी राख को हाथ मे ले कर वह भी संसार की असारता का बखान करते हुए लौट जाता है।

५७ खण्डो मे विभक्त इस विशाल महाकाव्य की कथा का अवसान अत्यन्त ही विषादमयी स्थिति मे हुआ जहां नायक-नायिका एव अन्य सहायक वीर अपने भौतिक शरीर को छोड जाते हैं। रह जाती है केवल उनकी चच ासी ने इस अन्तिम दृश्य को इन शब्दो में वर्णित किया है—

> जौहर भइ सब इस्तिरी पुरुख भए संग्राम।
> पातसाहि गढ चूरा चित उर भा इसलाम।

पद्मावत की कथा के स्रोत

भारतीय वाङ् मय मे कथा-साहित्य की एक सुदीर्घ एव अविच्छिन्न परम्परा रही है। परम्परागत रूप से प्रचलित कथाओं को ही साहित्यकारो ने अपनी अमर कृतियो मे परिष्कृत और परिमार्जित रूप से समादृत किया है । कथा साहित्य की दृष्टि से प्रसिद्ध गुणाढ्य की 'वृहत्कथा' को विद्वानो ने 'कथा कोश' के रूप मे सम्मानित किया है जो मूलत' पैशाची भाषा मे लिखी गयी थी । यद्यपि अब यह रचना अपने मूल रूप मे अप्राप्य है तो भी इसकी अधिकाश कथाएं 'वृहत्कथा-मंजरी' और 'कथा-सारत्सागर' के रूप मे सस्कृत भाषा मे रूपान्तरित हो कर सुरक्षित रह पायी हैं । इन उपरोक्त रचनाओं मे प्राप्य कथाओ का भी एक लम्बा इतिहास है । एक ओर तो ये कथाए जनकंठ द्वारा दर पीढी पीढी चलती हुई एक युग से दूसरे युग मे मौखिक परम्परा से प्रचलित रही हैं और दूसरी ओर सस्कृत, प्राकृत, अपभ्र श काव्यो मे कथा काव्यो के रूप मे चल कर हिन्दी साहित्य के प्रेमाख्यान काव्यो मे लोक और साहित्य के समन्वित रूप मे जीवन्त हो उठी है ।

जहा तुलसी, सूर प्रभृति महाकवियों की पौराणिक आख्यान-परम्परा पर आधारित रचनाएं विद्वानो और सास्कृतिक धरातल से सम्बद्ध साहित्य-प्रेमियों एवं भक्तो के कंठो का हार बनी, वहा लोक-जीवन एवं चरित-काव्यो की परम्परा पर रचित प्रेमाख्यानो से सम्बद्ध रचनाएं ग्रामीण अंचलो एवं कस्बों की चौपालों पर समादृत होती रही । इन कथाओ मे वर्णित निश्छल प्रेम और कुतुहलपूर्ण घटनाओ ने जनसाधारण, को अपनी ओर अधिक आकर्षित किया । लोक-जीवन मे प्रचलित जीवन की सहज अभिव्यक्ति के कारण तथा विधि-निषेधो से रहित निश्छल भावाभि-व्यजना के कारण इन कथाओ मे लोगो को अधिक रस मिला । इस प्रकार इन की लोकप्रियता निरतर बढती गयी ।

हिन्दी के प्रेमाख्यानपरक काव्य के कथानक के मूल स्रोतों के सम्बन्ध मे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के इतिहास मे अपने मतव्य को अभिव्यक्त करते हुए कहा कि "हमारा अनुमान है कि सूफी कवियों ने जो कहानिया ली है, वे सब हिन्दुओ के घरो मे बहुत दिनो से चली आती हुई कहानिया हैं, जिनमे आवश्यकता-नुसार उन्होंने बहुत कुछ हेर-फेर किया है । कहानियो का मार्मिक आधार हिन्दू है । मनुष्यों के साथ पशु-पक्षी और पेड-पौधो को भी सहानुभूति-सूत्र मे बद्ध दिखा कर एक अखंड जीवन-समष्टि का आभास देना हिन्दू प्रेम-कहानियो का वैशिष्ट्य है । मनुष्य के घोर दु.ख पर वन के वृक्ष भी रोते है, पशु-पक्षी भी संदेसे पहुचाते है । यह बात इन कहानियों मे भी मिलती है ।[1]

निस्संदेह प्रेमाख्यानो मे वर्णित कथाए हिन्दू जीवन-परम्परा से सम्बद्ध हैं और इनमे हिन्दू जीवन-पद्धति जो प्रकारान्तर से भारतीय जीवन-पद्धति कही जा सकती

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ७२

है, को ही अपने सहज रूप मे अभिव्यक्ति दी है। इन सूफी कवियो ने लोक-प्रचलित कथानकों को ले कर जनमानस तक पहुचने का सफल प्रयास किया है। इस सम्बन्ध मे डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'हिन्दी साहित्य के आदि काल' मे विवेचन करते हुए कहा है कि ये सूफी प्रेमकाव्य 'वृहत्कथा' से चली आई प्रेमकथाओ की परम्परा मे ही आते है। इन कथाओ का स्रोत लौकिक है और ये सभी कथाए लोक-जीवन की परम्परा से ही गृहीत है।

पद्मावत और इस परम्परा पर रचित रचनाओ मे कतिपय ऐतिहासिक पात्रों के नाम देख कर विद्वानो ने ऐतिहासिक दृष्टि से इन रचनाओ की प्रामाणिकता पर प्रश्नचिन्ह लगाये है पर सत्य तो यह कि इन रचनाओ मे ऐतिहासिक व्यक्तियो के नामो के कारण इन्हे इतिहास से सम्बद्ध करना ही एक भूल है, क्योकि इन कथाओ मे इतिहास की या ऐतिहासिक घटनाओ की पुट मात्र ही दी गयी है न कि इन्हे इतिहास-सम्मत बनाने का प्रयास। इस सम्बन्ध मे प्रो० शिवसहाय पाठक के विचार इस कथ्य को स्पष्ट करने मे अधिक सहायक होते है जो इस प्रकार हैं, "जायसी ने अपनी कहानी को लोकाकर्षक बनाने के लिए इतिहास की छौक दे दी है। किन्तु यह छौक केवल छौक ही है, उसके मूल मे ऐतिहासिकता ढूढना ठीक नही है। क्योकि इन कथाओ मे एकाध नाम ही इतिहास-सम्मत है, अन्यथा सर्वत्र निजंधरी कथाओ के सदृश कल्पना तथ्य का योग रहता है।"[1]

इस कथन से स्पष्ट है कि ये रचनाएं इतिहास से सम्बद्ध नही कही जा सकती। इन्हे तो निजंधरी कथाओ के सदर्भ मे ही पढ कर कथा का रस लेना चाहिए।

लोक जीवन में पद्मावत की कथा

अनिंद्य सुन्दरी पद्मावती के जीवन से सम्बद्ध विविध आख्यान उत्तर भारत के लोक जीवन मे अपने विविध रूपो मे प्रचलित है। इस अनिंद्य सुन्दरी को प्राप्त करने के लिए राजकुमार या किसी राजा को सात समुद्र पार जाना पडा। इस तक पहुंचने के लिए उसने अनेकानेक विपत्तिया झेली और इस से विवाह कर लौटने के बाद भी उसे चैन न मिला। उस के रूपलावण्य पर आसक्त किसी अन्य राजकुमार या राजा ने जब पद्मावती से प्रेम निवेदन किया तो कही तो शील बचाने के लिए वह अग्नि की ज्वाला मे भस्म हो गयी और कभी उस के लिए राजा को संग्राम मे खेत रहना पडा, आदि आदि। पद्मावती सुआ, राजा या राजकुमार के नामों को लेकर अनेकविध प्रेम-कथाएं लोकगीतो, लोक-कथाओ के रूप मे ग्रामो और कस्बो की चौपालो मे न जाने कब से दन्तकथाओ के रूप मे चली आ रही हैं।

पद्मावती साहित्य मे

लोक जीवन के समान साहित्यिक कृतियो मे भी पद्मिनी या पद्मावती के नाम से एक रूपराशि नायिका के लिए नायक हजारो वर्षों से जोखम उठाता रहा है। यहा

भी एक राजकुमारी अपने पाले हुए पक्षी—सुआ, हस आदि, को अपनी मदनव्यथा बताती है, जिसे सुन कर वह सूदूर देश में रहने वाले राजा या राजकुमार के पास राजकुमारी की कामव्यथा निवेदन कर उसे राजकुमारी के लिए आर्कषित करता है। राजा या राजकुमार किसी मन्दिर या उत्सव मे राजकुमारी से मिल कर विवाह करता है। इस रूप मे एवं साधारण परिवर्तन-परिवर्द्धन के साथ यह कथा भारतीय वाड्मय की प्रमुख कृतियो मे स्थान पाती रही है। पृथ्वीराज रासो का 'पद्मावती समय' पाठक राजा वल्लभ की पद्मावती कथा (जो संस्कृत मे लिखी गई) और कथा सरित्सागर की उदयन और पद्मावती कथा मे वर्णित पद्मावती का आख्यान पद्मावती के प्रेम की धुरी पर ही आधारित है। इन के अतिरिक्त राजस्थान की प्रसिद्ध कहानी 'ढोला मारू रा दूहा', ब्रज मे प्रसिद्ध कथा 'सुपने को देसु और गोरा बादल' की कथा मे वर्णित आख्यान भी पद्मावती के आख्यान से थोडा बहुत मेल खाता ही है।

उपरोक्त निर्दिष्ट लोक-साहित्य और साहित्यिक रचनाओ मे वर्णित पद्मावती रूप और लावण्य की दृष्टि से अद्वितीय है। यह पद्मावती वस्तुतः कामसूत्र और उस की परम्परा पर लिखित कामशास्त्रीय ग्रन्थो मे वर्णित पद्मिनी नायिका ही है जिसे कामशास्त्रियो ने सर्वोत्कृष्ट नारी के रूप मे मान्यता प्रदान की है। शारीरिक गठन, अनिंद्य-सौन्दर्य एवं लावण्यता के कारण ही इसे सभी नारियो मे श्रेष्ठ माना गया था। उसी रूपराशि, रूपयौवन सम्पन्ना नायिका को ही लोक-कवियो और साहित्यिक रचनाओ मे पद्मावती के रूप मे प्रस्तुत किया गया है।

इस अनुशीलन से स्पष्ट है कि पद्मावत के रचयिता जायसी ने लोकजीवन मे एवं साहित्यिक कृतियो मे प्रचलित पद्मावती की प्रेम-कथा को कतिपय ऐतिहासिक पात्रो—रत्नसेन वा रत्नसिंह, अलाउद्दीन, गोरा बादल के नामो तथा चित्तौड, दिल्ली आदि ऐतिहासिक स्थानो की पुट दे कर अपनी उत्कृष्ट काव्य-कुशलता का परिचय दिया है।

कथानक-रूढियां

पद्मावत की इस लोकजीवन और साहित्यानुमोदित कथा को अधिकाधिक प्रभविष्णु एवं मनोहारी रूप प्रदान करने के लिए जायसी ने तात्कालिक लोकजीवन से परिचित कथानक-रूढियों का प्रयोग भी प्रचुरता से किया है। इस कृति के सौदर्य-वर्धन के लिए तात्कालिक लोकजीवन और साहित्य में प्रचलित जिन कथानक-रूढियो का प्रयोग किया है, उन में से कतिपय रूढिया इस प्रकार हैं—

१. मन्दिर मे नायक-नायिका का मिलन। दैवी शक्ति द्वारा वरदान।
२. सागर-यात्रा मे आपदाए और अन्तत. उन का निवारण किसी अदृष्ट पात्र द्वारा।
३. प्रेयसी को प्राप्त करने के लिए प्रिय का योगी या अवधूत बन जाना।

४. दैवी पात्रो द्वारा नायक के प्रेम की परीक्षा एवं प्रिया से मिलन का मार्ग निर्दिष्ट करना ।

५. अप्रत्याशित घटनाओ से वियोग और संयोग ।

६. नायिकाओ का सात समुद्र पार—सिंहलद्वीप, कजरी वन एवं त्रिया देश मे निवास ।

७ लौकिक प्रेम-कथा मे अलौकिक एव आध्यात्मिक प्रेम के सकेत आदि आदि ।

जायसी ने इस प्रकार की कथानक-रूढिया जो कि तात्कालिक लोक और साहित्य मे प्रचलित थी, को पद्मावत की प्रेम-कथा मे अनुस्यूत कर इसे एक सशक्त, साहित्यिक प्रेमाख्यान का रूप प्रदान किया ।

अन्त मे यह कहा जा सकता है कि पद्मावत का कथानक भारतीय लोक-जीवन और साहित्यिक रचनाओ से ही लिया गया है यह कवि-कल्पित नही है ।

पद्मावत का महाकाव्यत्व

महाकवि जायसी विरचित पद्मावत अपने समय की एक श्रेष्ठ कृति है । ठेठ अवधि भाषा मे लिखित यह कृति महाकाव्य के लिए निर्दिष्ट सभी प्रकार की विशेषताओ को पूरा करती है । इस कृति के महाकाव्यत्व पर विचार करने से पूर्व आचार्यो द्वारा निर्दिष्ट महाकाव्य की विशेषताओ की चर्चा यहा अप्रासगिक न होगी ।

साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने महाकाव्य के विविध अंगो का विशद विवेचन करते हुए इस के लिए अपेक्षित जिन लक्षणो की तालिका दी है, वह इस प्रकार है—

महाकाव्य का कथानक ऐतिहासिक, ख्यात अथवा जनाश्रित होना चाहिए । इस के कथानक पॉच नाट्य-सधियो—बीज, बिन्दु पताका, प्रकरी और कार्य का समावेश भी होना चाहिए । कथावस्तु सर्गो मे विभक्त हो और सर्ग न तो बहुत छोटे हो और न ही बहुत बडे, सर्गो की सख्या भी आठ से अधिक न हो । सर्गों मे वर्णित कथा मे तारतम्य बने रहना चाहिए ।

महाकाव्य का नायक देवता या सद्वश का क्षत्रिय राजा होना चाहिए । नायक अनेक राजा भी हो सकते हैं । शृगार, वीर और शान्त रस मे से किसी एक रस को अगी रस के रूप मे रखना चाहिए । अन्य रस गौण रूप से रखे जा सकते हैं । इसका लक्ष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष मे से किसी एक पुरुषार्थ को रखना चाहिए ।

इन उपरोक्त विशेषताओ के अतिरिक्त कतिपय अन्य विशेषताए भी इस में रहनी चाहिए—जैसे आरम्भ मे आशीर्वाद, नमस्कार अथवा वस्तु-निर्देशक विशिष्ट-कथन, सज्जनो की प्रशसा और दुष्टो की निन्दा । पूरे सर्ग मे एक ही छन्द

और सर्गान्त मे छन्द-परिवर्तन, एकाध सर्ग मे छन्दों की विविधता भी दिखाई जा सकती है। वर्ण्य-विषय के अनुसार ही सर्ग का नामकरण। काव्य का नाम नायक, नायिका या कवि के नाम पर होना चाहिए। प्रकृति-वर्णन एव ससार-चित्रण के रूप मे संध्या, सूर्य, चन्द्र, दिन, रात, प्रभात, मध्याह्न, नदी, वन पर्वत, ऋतु तथा वियोग-संभोग, मुनि, स्वर्ग, नगर, यज्ञ, यात्रा, विवाह, युद्ध, अभ्युदय आदि का वर्णन भी रहना चाहिए।[1]

आचार्य दण्डी ने भी महाकाव्य के लिए जो बाते[2] दी है वे प्रायः विश्वनाथ से मिलती है। केवल अन्तर इतना है कि दण्डी सस्कृत के काव्यों को सर्गबद्ध, प्राकृत के महाकाव्यो को स्कन्धबद्ध और अपभ्रंश के काव्यो का औसर बद्ध होना स्वीकार करते है।[3]

पाश्चात्य दृष्टि

भारतीय आचार्यों के समान पाश्चात्य आलोचको ने भी मुख्यत महाकाव्य मे प्राचीन घटनाओ के आधार को स्वीकृति प्रदान की है। पश्चिम मे प्रचलित सर्वस्वीकृत मान्यताओ के आधार पर कुछ प्रमुख मान्यताएँ इस प्रकार है —

१ महाकाव्य का आकार विस्तृत और शैली प्रकथन-प्रधान होनी चाहिए।
२. नायक युद्धप्रिय एव अन्य पात्र शौर्य-प्रधान हो।
३. जातीय भावो की प्रधानता रहनी चाहिए।
४ पात्रो की गतिविधि दैवी पात्रो द्वारा सचालित हो।

---

१. सर्गबन्धो महाकाव्य तत्रैको नायकः सुर.।
सद्वंशो क्षत्रियो वाऽपि धीरोदात्तः गुणान्वित॰॥
एकवंश भवः भूपा, कुलजा बहवोऽपि वा।
शृगार वीर शान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते॥ आदि आदि
साहित्यदर्पण, श्लोक ६१३-२२

२. सर्गबन्धो महाकाव्यमुच्यते तस्य लक्षणम्।
आशीर्नमस्क्रिया वस्तु निर्देशो वापि तन्मुखम्॥
इतिहास कथोद्भूतमिरद्वा सदाश्रयम्।
चतुर्वर्ग फलायत्तं चतुरोदात्त नायकम्॥
नगरार्णव शालतु चन्द्रार्कोदय वर्णनै.।
उद्यानि सलिलक्रीडा मधुपान रतोत्सवैः॥
काव्यादर्श, श्लोक १४-१६

३. सस्कृत सर्ग बन्धादि प्राकृतं स्कन्धकादिवत्।
ओसरादिरपभ्रंशो नाटकादित मिश्रकम्॥
काव्यादर्श, श्लोक-३७

५ विषय परम्परागत और लोकप्रिय होना चाहिए।
६ सम्पूर्ण कथा नायक से सबद्ध हो।
७ शैली मे उदात्त तत्त्व की प्रधानता होनी चाहिए।
८ इस मे एक ही छन्द का प्रयोग करना चाहिए।

महाकाव्य-सम्बन्धी भारतीय और पाश्चात्य विशेषताओं के अध्ययन से स्पष्ट है कि दोनो दृष्टिकोणो मे मौलिक अन्तर नही है केवल अन्तर इतना है कि भारतीय दृष्टि जातीय भावो के सघर्ष, यात्रा, ऋतु-वर्णन आदि पर बल देती है तो पाश्चात्य मत से जातीय भावों को प्रधानता देने पर ही अधिक बल दिया गया है। अन्य बातो मे थोडे बहुत अन्तर के साथ प्राय मतभेद नही है।

महाकाव्यो-सम्बन्धी लक्षणो के अध्ययन के अनन्तर जब पद्मावत को इस कसौटी पर कसते है तो हम इस निर्णय पर पहुचते हैं कि आचार्यो द्वारा निर्दिष्ट लक्षणो मे से अधिकाश लक्षण पद्मावत पर चरितार्थ होते है। उदाहरणार्थ—पद्मावत का कथानक ख्यात श्रेणी का है अर्थात् इसका कथानक लोक-प्रचलित और अर्द्ध ऐतिहासिक है।[1] इस मे जायसी ने स्वय बहुत बडा परिवर्तन नही किया। डॉ० कमलकुल श्रेष्ठ के अनुसार "जायसी से पहले रत्नसेन पद्मावती की कहानी को १४६७ विक्रमी मे पाठक राजवल्लभ ने सस्कृत मे लिखा था। रत्नसेन का व्यक्तित्व जायसी की कल्पना नही है।"[2]

पद्मावत मे पाच नाटकीय सधियो का निर्वाह भी किया गया है और इसके खण्ड सर्ग का ही रूपान्तर है। कुछ सर्ग छोटे-बडे अवश्य है पर इन से कथा के प्रवाह को कोई क्षति नही पहुचती। खण्डों की संख्या अधिक अवश्य है पर इस से काव्य के आकार मे अनावश्यक वृद्धि नही हो पाती। नागमति वियोग खण्ड मे लगता है कि कथा का क्रम विच्छिन्न हो रहा है, पर यदि कवि इस स्थल पर अपने को केन्द्रित न करता तो पद्मावत इस प्रकार के रमणीक और मार्मिक प्रसग से वचित हो कर मर्मस्पर्शी प्रभाव को खो बैठता। सत्य तो यह है कि 'नागमती वियोग खण्ड' इस का अत्यन्त ही मार्मिक स्थल है, इस स्थल मे कवि ने नागमती की घनीभूत पीडा को अभिव्यक्ति देने मे अपनी लेखनी का जो चमत्कार दिखाया है उसके कारण यह रचना प्रेम की पीर के मर्मज्ञो मे युगों तक समादृत होती रहेगी।

पद्मावत का नायक धीरोदात्त नायक है जो क्षत्रिय वश से संबद्ध है।[3] इस

---

१. मलिक मुहम्मद जायसी—डा० कमलकुल श्रेष्ठ, पृ० १३७
२ वही, पृ० १३८
३. जम्बु द्वीप चित उर देसा। चित्रसेन बड तहा नरेशा।
रतनसेन यह ताकर बेटा। कुल चौहान जाइ नहिं मेटा ॥

जा० ग्रं०, पृ० १३०

काव्य का मुख्य रस शृंगार है। वीर, करुण, रौद्र, शान्त आदि रसो का निर्वाह भी स्थान और प्रसंग के अनुकूल किया गया है। पुरुषार्थ चतुष्टय की दृष्टि से देखें तो इस काव्य का मूल लक्ष्य 'काम' है। यहा परम्परागत रूप से प्रचलित प्रेम-कथा-वर्णन करना लेखक का मूल उद्देश्य है, इस उद्देश्य के निर्वाह करने मे उसे पूर्णत सफलता प्राप्त हुई है।

जहाँ तक महाकाव्य मे पाई जाने वाली अन्य गौण विशेषताओं की बात है, यहा ईश्वर, गुरु, सामयिक शासक की स्तुति ही मगलाचरण है—

"सुमिरौ एक आदि करतारू। जेहि जिउ दीह्न कीह्न ससारू"

सारे काव्य मे चौपाई और दोहा का प्रयोग किया गया हैं। रचना का नाम नायिका के नाम पर है। युद्ध, शिकार, समुद्र, जन्म, विवाह आदि के साथ-साथ प्रभात, साय, वन, तडाग और उद्यानो का वर्णन भी यथास्थान मिलता है।

दोष दर्शन

पद्मावत काव्य मे महाकाव्य के अधिकाश गुणो के रहते हुए भी यह स्वीकार करना होगा कि इसमे कतिपय दोष भी है जिन्हे एक प्रबुद्ध आलोचक और पाठक इगित किये बिना नही रह सकता। इस महाकाव्य की आधिकारिक कथा के अन्तर्गत स्त्रीभेद-खण्ड और बादशाह भोज-खण्ड नितान्त अनावश्यक लगते है। स्त्रीभेद-खण्ड के अन्तर्गत कवि ने कामशास्त्रो मे वर्णित चार प्रकार की स्त्रियो—हस्तिनी, शंखिनी और चित्रणी तथा पद्मिनी का जो वर्णन किया है, वह सर्वथा नीरस और अमनोवैज्ञानिक है। यदि यह वर्णन कामशास्त्रो मे प्रतिपादित परम्परा पर भी होता तो सम्भव है कुछ सहृदयो का मनस्तोष कर पाता पर यह वर्णन तो मनमाने ढग का एव अव्यावहारिक ढंग का है। इस प्रसंग के न रहने से कथा-प्रवाह को कोई क्षति भी न पहुचती पर लेखक के सम्मुख जब पद्मिनी का नाम आता है तो वह उसकी विशेषताएं दिखाने का लोभ सवरण नही कर पाता। इसी प्रकार भोज के अवसर पर परोसे जाने वाले पदार्थों के परिगणन मे भी काव्य के पाठको को अरुचि हो जाती है। इस से भोजभट्ट भले ही क्षणिक खुशी हासिल कर ले पर सहृदय पाठक के लिए यह स्थल भी अनावश्यक-सा ही है।

इसी प्रकार 'नखशिख वर्णन खण्ड' और 'पद्मावती रूपचर्चा खण्ड' मे रूप-वर्णन, उपमाओ, उत्प्रेक्षाओ और अग-वर्णन आदि मे पुनरावृत्ति आ जाने से सहृदय को अरुचि होना स्वभाविक है। रूप-वर्णन परम्परागत शैली का तो है ही पर दो बार होने से एक खण्ड अनावश्यक-सा लगता है। लेखक दूसरी बार अर्थात् रूप चर्चा वाले खण्ड को सक्षिप्त करके पुनरावृत्ति को बचा सकता था, पर पदमावती के रूप के वर्णन का सदर्भ न हो तो जायसी का आगे चल पाना सभव प्रतीत नही होता। सृष्टि के कण-कण मे 'नूर' के दर्शन करने वाला भला 'सौन्दर्य' के वर्णन से पीछे कैसे रह सकता था।

निस्संदेह कवि का लोक-व्यवहार का ज्ञाता एव सर्वदर्शी होना आवश्यक है पर वर्णन के प्रसंगो मे लम्बी सूची चाहे फलो की हो या वृक्षो की, भोज्य-पदार्थों की हो या शस्त्रास्त्रो की, ये सूचिया वास्तव मे सहृदय पाठक के धैर्य की परीक्षा लेने वाली होती है, श्रेष्ठ कवि प्रायः इस प्रकार के अनावश्यक विस्तार से बचने का ही प्रयास करते है। इन सूचियो को पढकर किसी सीमा तक तो कवि प्रशसा का पात्र होता है पर अनावश्यक विस्तार के कारण जब पाठक ऊबने लगता है तो पाठक कवि की प्रशसा करने मे कंजूसी करने लगता है। कथानक की कतिपय असगतियो के अतिरिक्त पद्मावती रत्नसेन भेंट खण्ड के अन्तर्गत सुरत प्रसग वणन भी अत्यन्त अश्लील कोटि का है। कवि सुरत प्रसग छोड भी सकता था पर प्रथम मिलन की रात्रि के लम्बे वार्तालाप एव वाक्चातुर्य तथा चुम्बन, परिरम्भन के अनन्तर वह रतिरण को मोह सवरण न कर सका। वर्षों की प्रतीक्षा के पश्चात् मिल रहे दम्पती के सुरत को लेखक ने राम और रावण के संग्राम से उपमित किया है। इस सग्राम मे सेज का सारा श्रृगार ध्वस्त हो गया। राजा ने लका (कटि) पर आक्रमण कर उसे पूरी तरह लूट लिया। मांग अस्तव्यस्त हो गयी। केश खुल गए। द्वारो के टूटने से मोती बिखर गए। चोली फट़कर तार-तार हो गयी अर्थात् पूर्णत. फट गयी। कर्णाभूषण भी टूट गए। जोरदार आलिगन मे अंगो पर लिप्त चदन छूट गया। पुष्पो का सम्पूर्ण शृंगार मसल दिया गया फलतः पद्मावती के समस्त शरीर मे पुष्प रस की सुवास छा गयी।"[1]

"प्रिय की इस आतुरता को देख वह उससे विनय करती है कि प्रिय इस अमृत रस के पान मे त्वरा मत दिखाओ। प्रिय जो मागोगे वही मिलेगा पर इस रस को एक साथ पीने की बजाय धीरे-धीरे चख कर ही पियो। प्रेम-सुरा के पीने का मजा तब है—

---

१. कहौ जूझि जस रावन रामा। सेज विधासि विरह संग्रामा।
तीन्ह लक कंचन गढ टूटा। कीन्ह सिंगार अहा सब लूटा।
औ जोवन मैमत विधंसा। बिचला विरह जीव लै नसा।
लूटे अंग अंग सब भेसा। छूटी मंग भग भे केसा।
कचुकी चूर चूर भए ताने। टूटे हार मोति छहराने।
बारी टाड सलोनी टूटी। बाहु कंगन कलाई फूटी।
चदन अग छूट तस भेंटी। बेसरि टूटि तिलक गा मेटी।
पुहुप सिंगार संवार जो जोवन नवल वसत।
अरग जेऊं हियलाइकै मरगज कीन्हे कन्त ॥ जा० ग्र० सटीक, पृ० ३३४
तुलनार्थ देखिए सस्कृत का एक श्लोकार्ध जिसमे संभोग के बाद नायिका प्रिय से कहती है कि—
स्वामिन! भगुरयालकं सतिलकं भाल विलासिन कुरु।
प्राणेश! त्रुटित पयोधर तटे हारं पुनर्योजय ॥

जब पीने और पिलाने वाले को यह पता ही न चले कि कब कितनी पी है और कैसे पी है। द्राक्षारस (चूचक पान) तो एक ही बार पीना चाहिए दूसरे बार पीने से तो अचेत होने की स्थिति आ जाती है। अधरपान भी धीरे-धीरे कीजिए ताकि रसमयी स्थिति बनी रहे आदि आदि।"[1]

उपरोक्त वर्णन मे अश्लीलता तो है ही पर सुरत प्रसग को जो युद्ध का रूप दिया है उससे राक्षसी सभोग की गध आती है। इस प्रकार के वर्णन रीतिकाल के कवियो ने भी किये है जिन्हे शब्दो की खिलवाड़ माना गया है। सुरत प्रसग को युद्ध का रूप देने की अपेक्षा कवि इन्ही बातो को व्यग्य रूप मे कहता तो उसमे काव्य-सौन्दर्य की हानि भी नही होती और कुछ सीमा तक यह वर्णन मर्यादित भी बना रहता। अस्तु, इतना तो स्पष्ट है कि इस प्रकार के प्रसगो से काव्य मे उत्कर्ष तो नही लाया जा सकता तो भी यह तो सत्य है कि इस प्रकार के दो-एक स्थलो के कारण इसे महाकाव्यत्व पर आच नही आती।

महाकवि जायसी के अमर काव्य पद्मावत को महाकाव्य की कसौटी पर कसने के बाद पाठक इस निष्कर्ष पर पहुचता है कि उपरोक्त दोषो के रहते हुए भी यह कृति अपने आप मे महान् है। लोक परम्परा मे प्रचलित पद्मावती रत्नसेन के आख्यान मे दिल्ली के सुलतान अलाउद्दीन के ऐतिहासिक आख्यान का 'मणिकाचन' सयोग कर लेखक ने प्रेम की पीर को जो मार्मिक अभिव्यक्ति दी है उसी के कारण ही यह कृति रसिको के गले का 'कठहार' बन गयी है।

इस महाकाव्य मे भारतीय और मसनवी शैलियो का समन्वय कर लेखक ने दोनो पद्धतियो मे रचे जाने वाले काव्यो की विशेषताओ से इस कृति को विभूषित कर दिया है। इसमे कथानक की आधार-भूमि के रूप मे जहाँ भारतीय काव्य-रूढियों, पौराणिक आख्यानों, रामायण, महाभारत प्रभृति जातीय काव्यो मे निर्दिष्ट उपाख्यानो का समावेश मिलता है वहाँ मसनवी शैली पर रचित रचनाओ मे वर्णित काव्य रूढि, कवि-परम्पराओ एवं प्रेम की पीर की अभिव्यजक विधाओं का निदर्शन भी स्थान स्थान पर किया गया है।

लौकिक प्रेम-कथा पर आधारित इस महाकाव्य की समासोक्ति शैली के कारण बीच-बीच मे आध्यात्मिक सकेत भी मिलते हैं जो कि सूफी कवियों की साधना के सर्वथा अनुकूल हैं और जायसी की आध्यात्मिक एवं ईश्वरोन्मुख साधना का परिचय देते है।

---

१. 'विनती करै पदुमावती बाला। सो धनि सुराही पिउ पियाला।
....
पै पिउ वचन एक सुनु मोरा। चाखि पियहु मधु थोरह थोरा।
पेम सुरा सोई पै पिया। लखे न कोई कि काहु दिया।
चुवा दाख मधु सो एक बारा। दोसरि बार होइ बिसंभारा।
... .
पान फूल रस रग करीजै। अधर अधर सो चाखन कीजै। जा०ग्रं० सटीक, पृ० ४२४

पद्मावत के अनुशीलन से स्पष्ट होता है कि—क्या पाश्चात्य और क्या भारतीय सभी के महाकाव्यो के लक्षण पद्मावत मे मिल जाते है। इस प्रकार स्पष्ट है कि फारसी मसनवी शैली का आभास ग्रहण करते हुए भी जायसी ने अपने प्रबन्ध काव्य मे भारतीय सस्कृति, रीति रिवाज, धार्मिक परम्पराओ और भारतीय जन-कथाओ के विषय मे अपनी अभिज्ञता का पूर्ण परिचय दिया है। शृगार, वीर आदि रसो का वर्णन परम्परागत भारतीय काव्य पद्धति के अनुसार किया गया है। युद्ध-वर्णन, यात्रा-वर्णन तथा राजसी ठाठ-बाट के वर्णन मे जायसी ने विशेष कुशलता प्राप्त की है। प्रकृति-वर्णन मे कवि ने अज्ञात के प्रति जो सकेत किये है, वे अत्यधिक चित्ता-कर्षक और उपयुक्त बन पडे है। अलकारो का भी समुचित प्रयोग किया गया है। साराश यह है कि पद्मावत, प्रबन्धकाव्य का श्रेष्ठ उदाहरण है। पद्मावत हिन्दी के श्रेष्ठ महाकाव्यो मे गिना जाता है।[1]

डॉ० रामकुमार वर्मा ने पद्मावत महाकाव्य मे भारतीय और मसनवी शैली का सुन्दर सामजस्य दिखाते हुए इसे 'मसनवी शैली का प्रबन्ध काव्य' माना है।[2]

डॉ जयदेव ने भी पद्मावत के अनुशीलन के पश्चात् ऐसा अभिमत व्यक्त किया है। पद्मावत का पूर्ण अनुशीलन करने के उपरान्त हम सक्षेप मे कह सकते है कि यह एक सरस प्रबन्ध काव्य है जिस मे विभिन्न जीवन दशाओ के व्यापक और मनोहर चित्र उपस्थित किये गये है तथा जिसके कल्पित कथानक मे ऐतिहासिकता का पुट दे कर कवि ने उसको अधिक हृदयग्राही बना दिया है। स्थान-स्थान पर मनोहर आध्यात्मिक सकेतो द्वारा इस कृति का मूल्य अधिक बढ जाता है। साप्रदायिक मोह के कारण एकाध स्थल पर अश्लीलता की गध अवश्य आ गयी है और लम्बी-लम्बी नामावलियाँ भी अवश्य अरुचिकर हो गयी है किन्तु यह इस युग की सामान्य प्रवृत्ति थी। अस्तु, कवि दोनो के लिए अवश्य क्षमा का पात्र है। वस्तुत पद्मावत हिन्दी का सबसे पहला उत्कृष्ट प्रबन्ध काव्य है।"[3]

सत्य तो यह है कि पद्मावत जैसी उत्कृष्ट कृति मे कवि ने युगधर्म का निर्वाह तो सफलतापूर्वक किया है पर यह कृति परवर्ती कृतियो के लिए भी प्रेरणास्रोत सिद्ध हुई है। इस कृति के प्रामाणिक पाठ और सस्करणो के सदर्भ मे विद्वानो ने निरन्तर इस के काव्यरूपो की उत्कृष्टता को स्वीकार किया है। सचमुच प्रेम की अमर पीर की अभिव्यंजना करने वाली यह महान् कृति रसिक समाज की अमर थाती है जिसके लिए रसिक पाठक महाकवि जायसी के ऋणी रहेगे।

फारस की मसनवी और पद्मावत

हिन्दी के प्रसिद्ध आलोचक डॉ० रामकुमार वर्मा ने पद्मावत मसनवी शैली का

---

१ साहित्य विवेचन—सम्पादक सुमन तथा मलिक, पृ० ८०-८१

२. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० २८६

३. सूफी महाकवि जायसी, पृ० १३०

काव्य कहा है। अन्य विद्वानो ने इस मे भारतीय और फारसी मसनवी की काव्य-शैली के सामजस्य की बात कही है। पद्मावत मसनवी शैली का प्रेमकाव्य है अथवा इस पर मसनवी शैली का प्रभाव पडा है। इस का विशद विवेचन करने से पूर्व मसनवी काव्य शैली के स्वरूप पर विचार करना तर्कसगत प्रतीत होता है।

मसनवी फारस मे लिखे गये प्रेमाख्यान काव्यो की एक शैली है जिसमे गज़ल, रुबाई और बैत नामक छन्दो का प्रयोग किया जाता है। कालान्तर मे यह शैली इतनी लोकप्रिय हुई कि मसनवी को ही छन्द विशेष मान लिया गया। इस काव्य शैली मे साधारणत: निम्नलिखित विशेषताएं रहती है—

(१) इस का छन्द अपने-आप मे पूर्ण होता है और इस अन्त्यानुप्रास की पुट दी जाती है।

(२) इसका विषय कथात्मक और शैली वर्णनात्मक होती है।

(३) कथा के आरंभ मे खुदा, पैगम्बर, मुहम्मद की स्तुति के अनन्तर गुरु-परम्परा, तात्कालिक शासक की प्रशंसा, अपनी रचना का उद्देश्य और अपने वश का परिचय दिया जाता है।

(४) सामी सस्कृति की इसमे प्रधानता रहती है। इस संस्कृति से सम्बद्ध पौराणिक आख्यानो के आधार पर प्रेमकथा विकसित होती है।

फारसी मसनवी शैली के प्रमुख प्रेमाख्यानों मे फिरदौसी का शाहनामा, यूसफ जुलेखा, कवि निजामी रचित शीरी फरहाद और लैला मजनूं अत्यधिक प्रसिद्ध प्रेमकाव्य है।

हिन्दी साहित्य के प्रेमाख्यान काव्यो पर फारसी की मसनवी शैली के काव्यो का पर्याप्त प्रभाव पडा है। इन कवियो की फारसी भाषा, साहित्य एव सस्कृति से न्यूनाधिक सम्बन्ध बना रहा जिससे इन का प्रभावित होना अस्वाभाविक नही माना जा सकता।

हिन्दी प्रेमाख्यान परम्परा के पहले महाकवि जायसी के पद्मावत के अनुशीलन से स्पष्ट पता चलता है कि उस पर फारसी मसनबी शैली की कविता का प्रभाव पडा है। पद्मावत के आरम्भ मे ईश्वर स्तुति, पैगम्बर और मुहम्मद स्तुति के अनन्तर सामयिक शासक की श्लाघा की गयी है।

जहा तक छन्द का सम्बन्ध है कवि ने भारतीय परम्परा पर रचे गये चरित-काव्यों की शैली पर पद्मावत चौपाई और दोहा छन्द का प्रयोग इस क्षेत्र मे भारतीय काव्य-शैली को ही महत्त्व प्रदान किया है। जैसे मसनवी ५ या ७ बन्दो के बाद एक बैत का प्रयोग किया जाता है। यहा सात अर्धालियो के बाद एक दोहा रखा गया है। समस्त काव्य मे इसी छन्द-शैली का प्रयोग किया गया है।

पद्मावत मे सामी सस्कृति का प्रभाव वर्णन की अतिशयता और कथावस्तु के कुतुहल के रूप मे तथा कथा में प्रयुक्त ऊहात्मक उक्तियो के प्रयोग में तो दृष्टिगोचर

होता है पर इस प्रेमाख्यान की पृष्ठभूमि मे भारतीय पौराणिक परम्पराओ और कथानक रूढियो को ही आश्रय दिया गया है सामी संस्कृति को नही ।

भारतीय प्रेमाख्यान काव्यो और मसनवी शैली के काव्यो मे सयोगवश समानताएं अधिक है और विषमताए कम जिससे लगता है कि पद्मावत मसनवी शैली से प्रभावित है ।

दोनो काव्य-पद्धतियो मे जो समानताएं दृष्टिगोचर होती है वे इस प्रकार है—

(१) दो पद्धतियो मे रचित काव्यो की मुख्य धुरी प्रेम है ।

(२) दोनो पद्धतियो के काव्यो मे पछी पात्र रूप मे आकर नायक-नायिका की सहायता करते हैं ।

(३) सुआ, परी, राक्षस, कबूतर तिर्यक् योनि के होते हुए भी मानवी पात्रो के समान आचरण करते हैं और प्रायः विद्वान, वाग्मी एव गुत्थिया सुलझाने वाले होते है ।

(४) दोनो पद्धतियो के प्रेमाख्यानो मे इतिहास की पुट दी जाती है पर तब भी इतिहास प्रेम से मुख्य नही हो पाता । पाठक सदा इन्हे परम परक कृतिया ही मानकर रस लेता रहता है जबकि विद्वान इतिहास के नाम शर मस्तिष्क का व्यायाम करके इन कृतियो की प्रामाणिकता के झमेले मे समय गवाया करते है ।

(५) प्रेमख्यानो मे यत्र-तत्र नीति-सम्बन्धी बाते भी रहती है पर गौण रूप मे । कथानक की चरम परिणति नायक-नायिका के मिलन मे होती हैं ।

(६) इन के नायक सघर्षशील और नायिकाए अद्भुत सुन्दरिया होती है ।

(७) दोनो मे ईश्वर, खुदा, गुरु, सामयिक शासक की प्रशसा आदि 'स्तुति-खण्ड' के रूप मे रहती है ।

(८) अतिशयोक्ति, अत्युक्ति, दैवी घटनाए, स्वप्न, दैवी चमत्कार, रूप-परिवर्तन आदि कथानक रूढिया दोनो प्रकार की काव्य-पद्धतियो मे प्रचुर मात्रा मे पढने को मिलती है ।

इन उपरोक्त समानताओ के अतिरिक्त इन मे कतिपय असमानताए भी है जो देश, काल और भिन्न सास्कृतिक दृष्टिकोणो के कारण स्वाभाविक है—

(१) फारसी मसनवियो मे नायक-नायिकाओ के बाह्य हाव-भावो एव अतिरजित चित्रो को अकित किया जाता है जबकि भारतीय प्रेमाख्यानो मे जीवन के आन्तरिक पक्ष को उजागर करने पर भी पर्याप्त बल दिया जाता है ।

(२) फारसी मसनवियो मे देश और संस्कृति की भिन्नता के कारण नैतिकता का स्वर इतना सुदृढ नही होता जितना कि भारतीय प्रेमाख्यानो मे यह स्वर रहता है। उदाहरणार्थ भारतीय प्रेमाख्यानो मे विवाह की मर्यादा अक्षुण्ण रखी जाती है जब कि फारसी मसनवियो मे इस पक्ष पर इतना बल नही दिया गया। वहा विवाह किसी से प्रेम किसी और से जबकि पद्मावत की नायिका नागमति रत्नसेन के चले जाने पर भी अपने शील को बनाये रखती है। इधर पद्मावती भी देवपाल और अलाउद्दीन की दूतियो को फटकारने मे पीछे नही रहती।

इस अन्तर का मूल कारण दोनो देशो की जीवन-पद्धति, चरित्र-सबन्धी मर्यादा एवं जीवन-दर्शन का अन्तर है। तब भी इतना तो निश्चित है कि प्रेम दोनो काव्य शैलियो की मूल धुरी है। भारतीय प्रेमाख्यान काव्य मसनवी प्रभाव को ग्रहण कर के भी भारतीय सामाजिक सास्कृतिक पृष्ठभूमि से सम्बन्ध-विच्छेद नहीं करते, क्योकि यहां भी इन प्रेमकाव्यो के प्रचलन से पूर्व शृगार की परम्परा पर लिखे जाने वाले काव्यो की एक सुदीर्घ परम्परा रही है जो संस्कृत, पाली और अपभ्रंश काव्यो से होती हुई इन कवियो को विरासत के रूप मे मिली थी। भारत मे कथानक रूढियो और काव्य-रूढियो की अपनी एक विशिष्ट परम्परा रही है जिस का उपयोग इन प्रेमाख्यान के कवियो ने उन्मुक्त रूप से किया है।

सक्षेप मे यह कह सकते है कि पद्मावत पर मसनवी काव्य-शैली का बाह्य प्रभाव तो लक्षित होता है पर इसके अनुशीलन से हम इस निर्णय पर पहुचते है कि कवि ने इस मे हिन्दू परम्परा जो कि प्रकारान्तर से भारतीय परम्परा कहाती है, का ही उद्घाटन किया है। सारे ग्रन्थ मे भारतीय संस्कृति की एक अक्षुर्ण्ण धारा इस के भीतर प्रवहमान दिखाई देती है। कवि ने उसके उद्घाटन मे अपनी लेखनी की समस्त शक्ति लगा दी है।

जन्म, विवाह, पर्व, प्रथाए, जीवन-दर्शन आदि के अकन मे भारतीय दृष्टि का ही उद्घाटन लेखक ने किया है जो तात्कालिक सामाजिक पृष्ठभूमि मे कवि को अभीष्ट था।

पद्मावत समासोक्ति है या अन्योक्ति ?

महाकवि जायसी ने सूफी भावना और दर्शन का अनुसरण करते हुए पद्मावत मे प्रेम की भावना को सर्वाधिक महत्त्व प्रदान किया है। कवि ने यहा परमसत्ता की कल्पना भी प्रेम और सौन्दर्य के रूप मे की है। रत्नसेन और पद्मावती के माध्यम से जिस प्रेम की अभिव्यजना यहा की गयी है उसे लौकिक नायक-नायिका का प्रेम न कह कर जीवात्मा और परमात्मा के मध्य विकसित होने वाले अलौकिक प्रेम की सज्ञा भी दी जा सकती है। महाकवि ने पद्मावत के कथानक मे अनेक स्थलो पर लौकिक प्रेम-भाव का चित्रण करते हुए अलौकिक प्रेम और सौन्दर्य से सम्बद्ध दिये हैं। जिन से

लगता है कि यह काम लौकिक प्रेम-भावनाओ से ओतप्रोत होते हुए आध्यात्मिक सौन्दर्य की अभिव्यंजना के सूक्ष्म सूत्र अपने मे समाहित किये हुए है।

इस प्रकार का सश्लिष्ट वर्णन जहा एक ओर जायसी की विशेषता माना गया है वहा दूसरी ओर इस के कारण विद्वानों मे एक विवाद भी खडा हो गया है कि उक्त महाकाव्य समासोक्ति शैली मे लिखा गया है या इसे अन्योक्ति काव्य का नाम दिया जाना चाहिए ? इस सम्बन्ध मे विद्वानो मे मतैक्य नही है।

पद्मावत को समासोक्ति माना जाये या अन्योक्ति, इससे पूर्व समासोक्ति और अन्योक्ति के स्वरूप का विचार करना भी तर्कसगत होगा।

समासोक्ति

आचार्यों ने समासोक्ति अलकार का लक्षण करते हुए कहा है कि जहा विशेषणो की समानता के कारण अथवा सश्लिष्ट पदो के कारण प्रस्तुत अर्थ में अप्रस्तुत अर्थ का बोध होता है वहां समासोक्ति अलकार हुआ करता है।

पद्मावत के एक प्रसंग को ही इस के उदाहरण के रूप मे प्रस्तुत किया जा सकता है। रत्नसेन के दिल्ली मे कैद हो जाने पर चित्तौड मे पद्मावती विलाप करते हुए दिल्ली का वर्णन जिस रूप मे करती है उस लौकिक अर्थ मे एक अलौकिक अर्थ भी अभिव्यजित हो रहा है—

'सो दिल्ली अस निबहुर देसू। कोई न बहुरा कहै सदेसू।
जो गवनै सो तहाँ कर होई। जो आवै कछु जान न सोई।
अगम पंथ पिय तहाँ सिधावा। जो रे गएउ सो बहुरि न आवा।

पद्मावत के कथा-प्रबन्ध के अन्तर्गत ये सारी बातें यद्यपि दिल्ली की दूरी, संदेश का न आना, मार्ग की कठिनाई को प्रकट करती है तो भी इस प्रस्तुत अर्थ के साथ-साथ एक अप्रस्तुत अर्थ की व्यजना भी यहा होती है जिस मे परलोक से सम्बद्ध अर्थ ध्वनित होता है। वहा जाने वाला लौटता नही और आने वाला अर्थात् नया जन्म लेने वाला शिशु इतना अबोध होता है कि उसे वहा का कुछ पता नही होता।

इस प्रकार के कई अन्य स्थल पद्मावत मे दृष्टिगोचर होते है।

अन्योक्ति

इस अलंकार मे कवि किसी अप्रस्तुत प्रसग का उल्लेख कर के प्रस्तुत अर्थ का स्पष्टीकरण करता है अर्थात् जहा अप्रस्तुत के द्वारा प्रस्तुत का बोध कराया जाये वहा अप्रस्तुत प्रशसा अथवा अन्योक्ति अलकार होता है।

जैसे—पद्मावत के ही अन्त मे एक रूपक का उल्लेख कर के जायसी ने समस्त लौकिक आख्यान को अलौकिक रूप देने का प्रयत्न किया है —

तन चित उर मन राजा कीन्हा। हिय सिंघल बुद्धि पद्मिनी चीन्हा।
गुरु सुआ जेहि पंथ देखावा। बिन गुरु जगत को निरगुन पावा।

कवि के इस कथन से तो यह प्रतीत होने लगता है कि उसे लौकिक आख्यान अभीष्ट ही न था। वह वस्तुत इस अलौकिक आख्यान के लिए ही सारा आयोजन कर रहा था। वह का मुख्य लक्ष्य अलौकिक प्रेम था, लौकिक प्रेम तो उस के लिए साधन मात्र था।

इसी रूपक के कारण ही समासोक्ति और अन्योक्ति का विवाद उभर कर आया है, यदि यह अन्तिम रूपक न होता तो विद्वान इसे सर्वसम्मत रूप से समासोक्ति मान सकते थे। उनके अनुसार लौकिक कथा के वर्णन मे जहा कही अलौकिक भाव की अभिव्यंजना होती है वह समान विशेषणो अथवा संश्लिष्ट पदावली के कारण ही सभव है। जायसी सदृश प्रेम की पीर के साधक के काव्य ऐसे प्रसंगों का समावेश अस्वाभाविक नही माना जा सकता।

कविता की दृष्टि से अत्यन्त उत्कृष्ट इस साहित्यिक कृति के ऊपर इस प्रकार के विवाद का मूल कारण है। पद्मावत के अन्त मे वर्णित रूपक, जिस में कवि ने कहा कि पद्मावत के समाप्ति के पश्चात् मैंने इस कृति का अर्थ विद्वानो से पूछा, जिस पर उन्होने कहा कि इस के लौकिक कथानक के अतिरिक्त इस का कोई और अर्थ नही है। तब कवि स्वय इस रूपक को स्पष्ट करते हुए कहता है कि इस काव्य मे वर्णित चित्तौड वस्तुतः शरीर है और राजा रत्नसेन मन है। सिंहलद्वीप हृदय है और उस मे रहने वाली पद्मावती बुद्धि है। राजा को मार्ग दिखाने वाला सुआ गुरु है तो नागमती रानी ससार का गोरखधंधा है जिस मे फंस कर व्यक्ति का उद्धार सरल नही होता। राघवसेन मुख्यत शैतान है तो अलाउद्दीन सुलतान इस मे माया का कार्य कर रहा है—

मै एहि अरथ पडितन्ह बूझा। कहा कि हम्ह किछु और न सूझा॥
चौदह भुवन जो तर उपराही। ते सब मानुष के घट माही॥
तन चित उर मन राजा कीन्हा। हिय सिंघल बुद्धि पद्मिनी चीन्हा॥
गुरु सुआ जेहि पंथ देखावा। बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा॥
नागमति यह दुनिया धन्धा। बाचा सोई न एहि चित्त बधा॥
राघव दूत सोई सैतानू। माया अलाउद्दीन सुलतानू॥
प्रेम कथा एहिभान्ति विचारहु। बूझि लेहु जो बूझै पारहु॥

इस रूपक के कारण ही इस काव्य-स्वरूप पर विद्वानो मे वितण्डावाद खडा हो गया है।

पद्मावत काव्य के सबन्ध मे विद्वानो मे मुख्यत दो विचार हैं—

(१) पद्मावत एक अन्योक्ति काव्य है।[1]

(२) पद्मावत एक समासोक्ति काव्य है।[2]

इसे अन्योक्ति मानने वाले विद्वानो ने जो तर्क दिये है वे इस प्रकार है—

(१) पद्मावत के अन्त मे लेखक ने जो रूपक दिया है, उस से प्रतीत होता है कि लेखक स्वय इसे अन्योक्ति स्वीकार करता है।[3]

(२) पद्मावत के कथानक मे भी यत्र-तत्र ऐसे संकेत मिलते है जहा लेखक लौकिक प्रेम मे अलौकिक प्रेम की ओर उन्मुख होता दिखाई देता है।

इन उपरोक्त दो कारणो का समाधान बहुत कठिन नही है। 'तन चित उर मन राजा कीन्हा' का उल्लेख करते समय कवि ने यह भी कहा है कि उस ने इस रचना के गूढ अर्थ के बारे मे जब पंडितो से पूछा तो उन्होने भी उस अर्थ के बारे अपनी अनभिज्ञता व्यक्त की, इस से उस ने स्वयं बताया कि इस काव्य का साध्य इस प्रकार है, पर रूपक के सम्यक् अध्ययन करने से प्रतीत होता है कि इस रूपक को सम्पूर्ण पद्मावत पर घटाना सर्वथा असभव है जैसे इस मे नागमती और पद्मावती के पुत्रो की इस रूपक मे कोई चर्चा नही। पद्मावती के पिता गन्धर्वसेन का भी इस मे कही उल्लेख नही मिलता। इसके अतिरिक्त इस रूपक मे अन्य भी अनेक असंगतिया विद्यमान है जिनके रहते इस रचना को अन्योक्ति मानना तर्कसंगत नही लगता। इस रूपक के अनुसार राजा रत्नसेन को मन और सिंघलद्वीप को 'हिय' कहा गया है। प्रकारान्तर से देखें तो 'हिय' भी मन ही है। एक तन मे दो 'मनो' की अवस्थिति तर्क और बुद्धि से परे की बात है। इस दृष्टि से कवि का उक्त कथन समीचीन नही लगता।

इसी प्रकार नागमती (जिसे कवि ने दुनिया का धन्धा कहा है) भी प्रकारान्तर से माया ही है जबकि कवि ने अलाउद्दीन को भी माया की सज्ञा प्रदान की है और विवेकपूर्वक देखा जाये तो राघव चेतन, जिसे शैतान कहा गया है एक दृष्टि से वह भी माया ही है, क्योकि सूफीमत और मुस्लिम धर्म मे वर्णित शैतान भी साधक की साधना मे बाधा उत्पन्न करता और हिन्दू दर्शन मे वर्णित माया भी प्रायः वही कार्य करती है। इस प्रकार देखें तो यहा नागमती, अलाउद्दीन और राघव चेतन—ये तीनो पात्र ही माया के रूप मे आते हैं। यदि माया को अपना काम करना है तो साधक और साध्य के मिलन से पूर्व ही इसे आना होगा न कि बाद मे। प्रिय मिलन के बाद माया का क्या काम ? मिलन से पूर्व तो नागमती आती है उसे माया कैसे कहे, वह तो एक आदर्श भारतीय रमणी है जिस के माध्यम से कवि ने विप्रलभ शृंगार का मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है।

जिस आदर्श भारतीय ललना के माध्यम से कवि ने पद्मावत की अत्यन्त ही मार्मिक और हृदयद्रावक प्रसग की उद्भावना की है और जो स्थल इस रचना का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थल बन पडा है उस प्रणय और समर्पण की साक्षात् मूर्ति को माया या 'दुनिया का धन्धा' कैसे माना जा सकता है ? अलाउद्दीन तो स्वय पद्मावती पर आसक्त है उसे माया कैसे कहा जायेगा। यही बात राघव चेतन के विषय मे है। ये दोनो अन्तिम पात्र रत्नसेन-पद्मावती के मिलन के बाद हैं पहले नही, यदि इन्हे माया का रूप देना अभीष्ट होता तो वह इन की अवतारणा काव्य के पूर्वार्ध मे ही

करता, उत्तरार्ध मे नही । अतः माया के ये तीन रूप न तो शास्त्रीय दृष्टि से मनन योग्य है और न ही व्यावहारिक दृष्टि से तर्क की कसौटी पर खरे उतरते है ।

डॉ० सूर्यकान्त शास्त्री[1] तथा ए० जी० शिरिफ[2] प्रभृति विद्वानो ने इसे (पद्मावत को) अन्योक्ति पर लिखा काव्य माना है । इनके मन्तव्य का आधार यही है कि कवि ने स्वयं ग्रन्थ के अन्त मे रूपक का उल्लेख किया है, परन्तु वस्तुस्थिति यह है कि पद्मावत के सम्पूर्ण रूप पर उक्त रूपक चरितार्थ नही होता, क्योकि इस के प्रेमाख्यान को पढते हुए पाठक कल्पना भी नही कर सकता कि यह आख्यान तो अप्रस्तुत है और इस मे निहित आध्यात्मिक रूपक प्रस्तुतार्थ का द्योतक है । जायसी इस कृति मे इस प्रकार का निर्वाह करने मे सर्वथा असफल रहा है ।

डॉ० कमल कुलश्रेष्ठ ने पद्मावत की इस समस्या पर विस्तृत विवेचन दे कर कहा है कि "ऐसा प्रतीत होता है मानो कवि ने इस कथा का प्रारम्भ तो एक रहस्य-वादी अन्योक्ति या समासोक्ति की भावना से किया था परंतु कवि उस का निर्वाह नही कर सका । धीरे-धीरे वह अन्योक्ति की भावना उस की मुट्ठी से छूटने लगी और उत्तरार्ध मे बिल्कुल निकल गयी है ।"[3]

डॉ० कुलश्रेष्ठ के मत से भी स्पष्ट है कि पद्मावत को अन्योक्ति काव्य नही कहा जा सकता ।

डॉ० माता प्रसाद गुप्त ने रचना के अन्त के रूपक को पूर्णतः प्रक्षिप्त मानकर अन्योक्ति का आधार ही समाप्त कर दिया है । डॉ० गुप्त द्वारा संपादित सस्करण मे उक्त रूपक को सर्वथा हटा दिया गया है । इससे पूर्व डॉ० पीताम्बर दत्त बडथ्वाल ने भी कहा है कि पद्मावत के अन्त मे रूपक के रूप मे लेखक ने जो कुजी दी है वह ठीक नही है ।[4]

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि पद्मावत अन्योक्ति काव्य नही है । इसे समा-सोक्ति मानने वाले विद्वानों मे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का नाम प्रमुख रूप से आता है । जायसी ग्रन्थावली की भूमिका मे विस्तृत विवेचन प्रस्तुत करते हुए शुक्ल जी ने लिखा है कि "यदि कवि के स्पष्टीकरण के अनुसार व्यंग्यार्थ को ही प्रधान या प्रस्तुत माने, तो जहा-जहां दूसरे अर्थ भी निकलते हैं, वहा वहा अन्योक्ति माननी पडेगी । पर ऐसे स्थल अधिकतर कथा के अग हैं और पढते समय कथा के अप्रस्तुत होने की धारणा किसी पाठक को हो ही नही सकती । अत· इन स्थलो के वाच्यार्थ को अप्रस्तुत

१. पदुमावती, भाग १, (१९३४) प्रिफेस, पृ० २
२. पदुमावती, अग्रेजी अनुवाद (१९४४)
३ मलिक मुहम्मद जायसी, पृष्ठ १०३ (१९४७)
४. द्विवेदी अभिनन्दन ग्रन्थान्तर्गत लेख—'पद्मावत की कहानी और जायसी का अध्यात्मवाद', पृ० ३९५-४०१

नही कह सकते। इस प्रकार वाच्यार्थ को प्रस्तुत और व्यंग्यार्थ को अप्रस्तुत होने से ऐसी जगह सर्वत्र समासोक्ति ही माननी चाहिए। पद्मावत के सारे वाक्यों के दोहरे अर्थ नही हैं। सर्वत्र अन्य पक्ष के व्यवहार का आरोप नही है। केवल बीच मे कही-कही दूसरे अर्थ की व्यंजना होती है। अतः इन स्थलो मे वाच्यार्थ से अन्य अर्थ, जो साधना पक्ष में व्यग्य रखा गया है, वह प्रबन्ध काव्य की दृष्टि से अप्रस्तुत ही कहा जा सकता है, और वहाँ समासोक्ति ही माननी पडती है।"[1]

आचार्य शुक्ल के उपरोक्त मत का समर्थन परवर्ती विद्वानों ने भी किया है। श्री शिवसहाय पाठक तो रूपक को ही प्रक्षिप्त मानते हैं और वे कहते हैं रूपक को यदि प्रामाणिक माना भी जाये तो तब भी यहा समासोक्ति है, अन्योक्ति नही।[2]

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि पद्मावत अन्योक्ति नही समासोक्ति है। प्रेमकथा के प्रवाह मे अमरप्रेम के गायक जायसी ने यत्र-तत्र ऐसे सश्लिष्ट पदो एवं स्थलो का उपक्रम किया है जहा प्रस्तुत अर्थ के अतिरिक्त एक अन्य अप्रस्तुत अर्थ की प्रतीति भी होती है जिसे सूफी परम्परा के शीर्ष कवि जायसी की विशेषता कहा जा सकता है। पद्मावत में ऐसे स्थल यद्यपि बहुत हैं तो भी उनमे निम्नलिखित स्थलो का विशेष महत्त्व है—

(१) पद्मावती-नागमती विलाप खण्ड

सो दिल्ली अस निबहुर देसू। कोई न बहुरा कहै सदेसू।
जो गवने सो तहाँ कर होई। जो आवै कछु जानै न सोई।
अगम पंथ पिय तहाँ सिधावा। जो रे गएउ सो बहुरि न आवा।

यहा प्रस्तुत अर्थ है रत्नसेन का दिल्लीगमन, पर एक अन्य अप्रस्तुत अर्थ परलोक गमन की अभिव्यजना भी स्पष्ट रूप से प्रतीत हो रही है।

(२) सिंहलद्वीप का हाट वर्णन

जिन्ह एहि हाट न लीन्ह बेसाहा। ताकहँ आन हाट कित लाहा॥
कोई करै बेसाहनी काहू केर बिकाई। कोई चले लाभ सन कोउ मूरि गवाई॥

हाट मे किसी की कमाई और किसी का मूल गंवा बैठना इस प्रस्तुत अर्थ के साथ एक पारमार्थिक अप्रस्तुत अर्थ भी व्यक्त हो रहा है जहा संसार मे कोई नाम कमाता है तो कोई अपना नाम डुबा कर भी जाता है।

---

१. जायसी ग्रन्थावली की भूमिका, पृ० ५६-५७
२. शिवसहाय पाठक—पद्मावत का काव्य-सौन्दर्य, पृ० १३१-१३४

(३) सिहलगढ़ वर्णन

गढ तोरि बाकि जैसी तोरि काया।
पुरुष देख ओही की छाया ।।

× × ×

नौ पौढि तेहि गढ मझियारा
औ तहा फिरहि पाच कोतवारा ।

× × ×

दसवं द्वार ताल का लेखा । उलट दृष्टि लाव सो देखा ।

प्रस्तुत अर्थ मे तो यहा गढ-वर्णन किया जा रहा है पर इस मे हठयोग की साधना का संकेत है जिस के अनुसार शरीर के दस रन्ध्रो और प्राणायाम आदि का अप्रस्तुत अर्थ भी यहां अभिव्यक्त हो रहा है ।

इस प्रकार के अन्य भी अनेक स्थल हैं जहां समासोक्ति का निर्वाह अत्यन्त ही सफल शैली मे दृष्टिगोचर होता है ।

आखिरी कलाम

आखिरी कलाम अथवा 'आखरियनामा' ६० दोहो और ४२० अर्धालियो की एक छोटी-सी रचना है । इसमे जायसी ने यहूदी, ईसाई तथा इसलाम मत के विश्वास के अनुसार महाप्रलय की स्थिति का चित्रण किया है । सृष्टि के अन्तिम दृश्य के वर्णन के कारण ही इसे सम्भवत 'आखिरी कलाम' की सज्ञा प्रदान की गयी है ।

इसमे कवि ने ईश-स्तुति के उपरान्त अपने जन्म के समय के भूकम्प का वर्णन किया है ।[1] तत्पश्चात् रसूल की स्तुति[2] तात्कालिक शासक बाबरशाह की प्रशंसा[3] कर गुरुवन्दना, जायस-वर्णन[4] तथा मायावर्णन कर इस कृति का रचना

---

१. भा औतार मोर नौ सदी । तीस बरिख ऊपर कवि बदी ।
आवत उधतचार बडठाना । भा भूकंप जगत अकुलाना ।
धरती दीह्न चक्रविधि भाई । फिरै आकाश रहट कै नाईं ।
गिरि पहार मेदिनी तस हाला । जस चाला चलनी भल चाला ।
मिति लोक जेहि रचा हिंडोला । सरगपाताल पवन घट डोला ।
गिरि पहार परबत ढहि गए । सात समुद्र कहच मिल भए ।
धरती छात फाटि भहरानी । पुनि भय मया जो सिस्टी हठानी ।
जा० ग्र० सटीक, पृ० ६१६

२. रतन एक विधनै अवतारा । नाव मुहम्मद जग उजियारा । वही, पृ० ६२०

३. बाबरशाह छत्रपति राजा । राज पाठ उनका विधि साजा । वही, पृ० ६२०

४. जायस नगर मोर अस्थानू । नगर का नाव आदि उदयानू ।
तहा देवस दस पहुने आएऊं । भा वैराग्य बहुत सुख पाएऊं । वही, पृ० ६२१

काल[1] दिया है। हिजरी सन् के अनुसार यह कृति ९३६ में लिखी गयी।

प्रलयकालीन वर्णन मे पृथ्वी का द्रव्य उगलना, अग्निवर्षा मे सृष्टि का विनाश, चालीस दिनो तक जलवर्षा, तत्पश्चात् धरती के समतल होने का उल्लेख किया गया है। चालीस वर्ष तक अकेले रह कर ईश्वर ने सृष्टि के प्राणियो के साथ न्याय करने के लिए चारो फरिश्तो—जिबरइल, मैकाइत, इसराफील और इज़राइल को जीवित किया, जिन्होने ईश्वर के आदेश पर न्याय के लिए सभी प्राणियो को प्रस्तुत किया।

इसी बीच मुस्लिम धर्म में प्रचलित विभिन्न विश्वासो का विस्तृत विवरण देते हुए जायसी ने दिखाया कि मुहम्मद की प्रार्थना पर खुदा (ईश्वर) ने उन्हे और उन पर ईमान लाने वालो को प्रकाशक के रूप मे दर्शन दिये। इस प्रकाश की चका-चौध मे दो दिन तक बेसुध रहने के वाद जिबरइल फरिश्ते ने उन सब को जगा कर सुन्दर वस्त्र धारण कराये और सब को बहिश्त (स्वर्ग) मे ले गया जहा उन्हे बहुत सी हूरे और परिया सभोगार्थ मिली।

उस स्वर्ग मे न मृत्यु थी, न नीन्द, न दुख था और न कोई व्याधि। सब लोग वहाँ भोग-विलास मे मग्न हो गए—

ताप न जूड न गुनगुन दिवस राति नहिं दुक्ख।
नीन्द न भूख मुहम्मद सब बिरसै अति सुक्ख॥

इस कृति मे मुस्लिम धर्म मे प्रचलित प्रमुख आख्यानो का चित्रण जायसी ने मनोरम शैली मे प्रस्तुत किया है। ये आख्यान है—ईश्वर के समक्ष नगे बदन सभी प्राणियो का उपस्थित होना, बीबी फातिमा के आगमन पर सभी प्राणियो को नेत्र बद कर लेने का आदेश, प्राणियो का प्रकृत अवस्था मे 'तालू पर नेत्र' होने का प्रसग, रसूल का अपने अनुयाइयो को कष्ट से बचाने के लिए खुदा के आगे दैन्य-प्रदर्शन, बहिश्त मे दावत एवं रसूल की खुदा से दर्शन देने की याचना करना आदि आदि।

इन सभी आख्यानों के मनन में तर्क की अपेक्षा श्रद्धा और विश्वास का ही महत्त्व है जो साधारण लोगो को ईश्वर और पैगम्बर से उन्मुखी बनाये रहती है। यद्यपि ऐसे वर्णनो से कवि की कांव्य-प्रतिभा को आघात पहुचता है तो भी कवि अपने उद्देश्य—प्रलयकालीन स्थिति के चित्रण में सफ़ल रहा है, ऐसा ही मानना समीचीन होगा।

प्रस्तुत कृति की प्रबन्धात्मकता का विस्तृत विवेचन करते हुए डा० जयदेव ने यह स्पष्ट किया है कि कवि इसमे कथा प्रवाह के निर्वाह मे असमर्थ रहा है और इस रचना मे वर्णित आख्यानो मे बहुत बडा व्यतिक्रम है और कही-कही कवि का 'बदतोव्याघात' (अर्थात् अपने ही कथन को आप काट देना) भी है जिस से कथानक

---

१. नौ सौ बरस छतीस जो भए। तब एहि कविता आखर कहे।
जा० ग्रं० सटीक, पृ० ६२१

अनेक असगतियो का शिकार हो गया है। इसके लिए एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा सकता है। जब सृष्टि के सभी प्राणी प्रकृत अवस्था मे है और उनके नेत्र तालू से लगे है अर्थात् सामने देख ही नही सकते तो फातिमा बीबी के आने के समय उन्होने नेत्र बन्द कैसे कर लिए जबकि वे सामने देख ही नही सकते। यदि उनके नेत्र बन्द करने की बात को मान ही लिया जाये तो अन्य स्त्रियो के आने पर उन्होने नेत्र बन्द किये या नही, कवि ने इस की चर्चा ही नही की। इस प्रकार के अन्य भी कई तथ्य है जिनसे कथानक असगतियो से ओत-प्रोत है।

अपने समस्त विवेचन का उपसंहार करते हुए डा० जयदत्त ने कहा कि आखिरी कलाम जायसी का प्रौढ काव्य है —यह उनकी प्रारभिक कृति है। फलतः इसमे उसका सौष्ठव एव सौन्दर्य का अभाव है जिनके कारण पद्मावत आदरणीय समझा गया और सहृदयो के गले का कंठहार बना रहा।[1]

सक्षेप मे यह कह सकते है कि 'आखिरी कलाम' कवि की आरभिक कृति है जिसमे 'महाप्रलय' की स्थिति का वर्णन कर कवि ने सृष्टि-संहार के इसलामिक विश्वासों का विस्तृत चित्रण किया है। इस रचना को विशुद्ध सैद्धातिक धरातल पर ही देखना चाहिए। इसके प्रबन्ध मे शिथिलता है या प्रबन्ध मे कसावट है आदि आदि बातो को लेकर इसका विवेचन कवि के प्रति अन्याय होगा। इस मे जहाँ-जहाँ कवित्व-सौन्दर्य आता है वह वस्तुतः कवि की भावी कृति पद्मावत के लिए पृष्ठभूमि का सूचक है। जिस लक्ष्य से यह कृति लिखी गयी है और जिन लोगों के विश्वास को सुदृढ आधार देने के लिए लिखी गयी है इसी सदर्भ मे यदि इस कृति की विवेचना की जायगी तो कवि और कृति को न्याय मिल सकेगा अन्यथा नही।

अखरावट

अखरावट जायसी की अन्तिम रचना है। यह प्रेमकथन न हो कर एक सिद्धान्त-काव्य है। इसमें इसलामिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन अत्यन्त ही सरस और सरल भाषा मे किया गया है। इसका आरंभ मुहम्मद साहब के नूर-वर्णन से किया गया है:—

गगन हुता नहिं मही हुती, हुते चन्द नहिं सूर।
ऐसह अंध कूप-महँ, रचा मुहम्मद नूर॥

मुहम्मद की प्रीति से ही सृष्टि की रचना हुई—

तेहि कँ प्रीति बीज अस जामा। भए दुई बिरिछ सेत औ सामा।

इस रचना मे ५४—५४ दोहे और ३७१ अर्धालियाँ है। पद्मावत की छन्द-शैली जिस मे सात अर्धालियों के पश्चात् एक दोहा लिखने का क्रम रखा गया है

1. सूफी महाकवि जायसी, पृ० ८२

यहाँ भिन्नक्रम को अपनाया गया है। यहाँ क्रमशः दोहा, सोरठा तत्पश्चात् सात अर्धालिया और फिर दोहा और सोरठा रखने का उपक्रम किया गया है। यहां लेखक ने ककहरा पद्धति (अक्षरपरक) के आश्रय से कविता लिखी है। ग्रथ के विषय-प्रवेश के विषय मे जायसी ने स्वय कहा है—

> कहौं सो ज्ञान ककहरा, सब आखर महिं लेखि।
> पण्डित पढ़ै अखरावटी, टूटा जोरेहु देखि॥

वर्ण्य विषय

कवि जायसी ने इसमे सर्वप्रथम शून्य अवस्था का वर्णन कर बताया उस समय केवल ब्रह्म ही था जिस ने अपना ऐश्वर्य प्रकट करने के लिए संसार की रचना की। उस ब्रह्म ने सर्वप्रथम चार फरिश्तो की रचना की जिन्होने चार तत्त्वो—वायु, जल, अग्नि और मिट्टी से मनुष्य को मूर्त रूप दिया। मनुष्य या आदम के लिए उन फरिश्तो ने हौआ की रचना की और दोनों को जन्नत (स्वर्ग) मे विहार करने का अवसर प्रदान किया। जहा जन्नत में रहते हुए आदम और हौआ ने शैतान के बहकावे मे आकर वर्जित फल को खा लिया जिसके फलस्वरूप उन्हे अनेक वर्षों तक सुखों से वंचित होना पडा। खुदा (ईश) की कृपा से दोनो—आदम और हौआ—का मिलन हुआ जिन से हिन्दू और तुर्कों की सृष्टि बनी।

सृष्टि के इस क्रम को कविता-वद्ध करने के बाद जायसी ने बताया कि मानव-शरीर की रचना बाह्य दृश्यमान संसार के समान ही है। जो बाहर है वही भीतर है। मानव-शरीर मे ही ठगो का वास है। इन ठगो से बचने के लिए साधक को सदा सचेष्ट रहना चाहिए। माता के रज और पिता के वीर्य से समुत्पन्न मानव जब अपने हृदय-रूपी दर्पण को स्वच्छ रखता है तो उसे खुदा (ईश्वर) की प्राप्ति हो सकती है। कवि ने इसी शरीर मे ही सात खण्डो, सात ग्रहों की कल्पना कर बताया कि साधक को अपनी साधना जारी रखनी चाहिए। यदि एक जन्म मे उसकी साधना फलवती न हो पायी तो दूसरे जन्म मे अवश्य उसका फल साधक को मिलेगा। इसके पश्चात् साधना का विवेचन, उसकी प्रशसा, गुरु का महत्त्व प्रतिपादन कर कवि ने इसलाम को अन्य धर्मों से श्रेष्ठ बताया है। इसके बाद हसरूप, दीपकरूपक का वर्णन कर अन्त मे जुलाहा कर्म का रूपक देकर उसने कबीर की प्रशंसा कर साधना को गोपनीय कह कर ककहरा (अक्षर परक) शैली की कविता को समाप्त कर प्रश्नोत्तर शैली मे गुरु और शिष्य के मध्य प्रेम और सृष्टि-सम्बन्धी चित्रण कर रचना को समाप्त किया है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि जायसी की यह रचना इसलाम धर्म के अनुसार सृष्टि-रचना के सिद्धान्त को प्रतिपादित करने के लिए लिखी गयी है। जीवन के अन्तिम वर्षों मे जब कवि आध्यात्मिकता की ओर अधिक झुक गया था, उन दिनों लिखी गयी यह कृति सिद्धान्त-प्रतिपादक होते हुए भी अधिक शुष्क नही है। लेखक ने

ठेठ अवधि का प्रयोग कर इसे दोहा, चौपाई और श्रुतिमधुर सोरठा के द्वारा अत्यन्त ही सरल और सरस शैली मे इसलामिक सिद्धान्तो के अनुसार सृष्टि-निर्माण का वर्णन किया है।

डा० कमल कुलश्रेष्ठ के अनुसार "यह (अखरावट) पद्मावती के बाद की ही रचना है जबकि कवि का झुकाव आध्यात्मिकता की ओर अधिक हो रहा होगा।"[1]

उर्दू आलोचक सैयद मुस्तफा ने इस कृति मे जायसी द्वारा शब्दों के चुनाव, भाषा के प्रवाह और छन्दो की चुस्ती की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए इसे कवि की अन्तिम रचना होना स्वीकार किया है।[2]

पद्मावत में वर्णित तात्कालिक समाज

साहित्य को 'समाज का दर्पण' कहा गया है। किसी भी युग के समाज को तात्कालिक साहित्य मे देखा जा सकता है। युग-कवियो की रचनाओं मे उस युग का परिवेश प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से अभिव्यक्ति पाता रहा है। युग के परिवेश का परित्याग करने वाले कवियों को समाज ने बहुधा समादृत भी नही किया। इसी दृष्टि से युगबोध का महत्त्व स्वीकार किया जाता रहा है। समर्थ कवि युग की परिस्थि-तियो से प्रभावित होते रहे है और अपने समय के समाज की बुराइयो के समाप्त करने के लिए संघर्षरत रह कर नया दृष्टिकोण भी देते रहे है। क्रान्तद्रष्टा कवियो के काव्य इस प्रकार के अनेकानेक उदाहरणों से भरे पडे है।

पद्मावत को भी जब हम मध्यकालीन समाज के सदर्भ मे देखते है तो स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि प्रेम की पीर की अभिव्यक्ति करने वाले महाकवि जायसी ने भी तात्कालिक सामाजिक जीवन को अपनी कृति मे समुचित स्थान दिया है। तात्का-लिक भारत का समाज कैसा था। उस समय विवाह की पद्धति क्या थी, विभिन्न अवसरो पर दिये जाने वाले भोजो मे खाद्य पदार्थों की तालिका कितनी लम्बी होती थी। तात्कालिक भारत मे दीपावली, होली, वसन्त आदि पर्वों को संभ्रान्त परिवारो मे कैसा और कितना महत्त्व मिलता था। युद्धो का क्या स्वरूप था। नगर, हाट-बाजार आदि मे व्यापार की क्या परम्परा थी आदि-आदि बातो का विवरण पद्मावत के कथानक में आनुषंगिक रूप से अध्येता को मिल ही जाता है। इन उपरोक्त बातो के सभी वर्णन भले ही मार्मिक और सरल न हो इससे वस्तुओ और पदार्थो, परम्पराओ और प्रथाओ की जो जानकारी मिलती है वह स्वय भी कम रोचक नही। अब संक्षेप मे उपरोक्त सामाजिक स्थिति का विश्लेषण ही इस प्रकरण मे अभीष्ट है।

---

१ मलिक मुहम्मद जायसी, पृ० ४९

२. "अल्फाज का इन्तखाब, जुबान की रवानगी, बन्दिश की चुस्ती पता देती हैं कि यह नज्म शायर जायसी के दौर का आखिर का नतीजा है।"

मलिक मुहम्मद जायसी, पृ० १६०

महाकवि जायसी ने पद्मावत में विवाह, भोज, जौहर, सतीप्रथा, सामाजिक उत्सवो एवं नगर-वर्णन और गढ-वर्णन को ही रसमय प्रसगो के रूप मे चित्रित किया है । इनकी सक्षिप्त रूपरेखा इस प्रकार है—

विवाह

'रत्नसेन-पद्मावती विवाह खण्ड' मे हिन्दुओ मे प्रचलित इस महत्त्वपूर्ण सस्कार को अत्यन्त ही मर्मस्पर्शी रूप मे चित्रित किया है । निस्संदेह तात्कालिक भारतीय जीवन संभ्रान्त राजपरिवारो मे जिस प्रकार इस महत्त्वपूर्ण कृत्य को सोल्लास सम्पादित किया जाता था, पद्मावत मे उसकी झाकी अत्यन्त ही मनोहारी रूप मे प्रस्तुत की गयी है । इससे प्रतीत होता है कि जायसी ने हिन्दु जीवन-पद्धति मे बहुत समीप से देखा और समझा था अन्यथा विवाह से पूर्व के लग्न, मुहूर्त-विचार का एवं विवाह के अंगभूत तिलक-ग्रन्थी-बन्धन, मंडप वन्दनवार, सोहागगीत, सप्तपदी, राशि-नाम आदि सूक्ष्मातिसूक्ष्म बातो का चित्र वह कैसे प्रस्तुत कर सकता था । पद्मावती-रत्न-सेन के विवाह के अवसर पर पचासो तरह के बाजे बजाये गए । सारे सिंहल मे हर्ष छा गया । पद्मावती की सखियो ने सुहाग गीत गाए । अनेकविध मणियो से मंडप की रचना की गयी । पृथ्वी पर लाल रंग के बिछावन बिछाये गए । मडप के नीचे चन्दन के स्तम्भो की रचना की गयी । मणियो के दीपक प्रज्वलित किये गये । प्रत्येक घर के द्वार पर बंदनवार सजाये गए । सम्पूर्ण नगरी गीतो की गुजार से गूजने लगी ।

विवाह का लग्न निश्चित होते ही रत्नसेन को हीरे-मोतियो से जडे वस्त्र भेजे गए । एक हजार राजकुमारो ने आकर रत्नसेन से विनती की कि विवाह अब शरीर की विभूति उतार कर सम्पूर्ण राज्यवैभव का उपभोग करे । अपने कानों से मुद्राएं हटा दे, स्वर्णनिर्मित कुडलो को धारण करे । जीर्ण कथा को छोड स्वर्ण-खचित परि-धान को धारण करे । योगी वेश को छोड़ राज्योचित वेश मे अश्व पर सवार होकर विवाहार्थ सन्नद्ध हो जावे ।

राजकुमारो की विनती स्वीकार कर रत्नसेन नवीन परिधान धारण कर विवाह-मडप की ओर आया और पद्मावती प्रासाद पर चढ कर वर की रूप-सज्जा को देख कर पद्मावती की जो स्थिति हुई कवि ने उस का चित्रण इस प्रकार किया है.—

"रत्नसेन को देखते ही पद्मावती मे आठो सात्विक भावो का एक साथ उदय हो गया । वर का रूप-दर्शन करते ही उस के नेत्र हर्ष से आपूरित हो गए, रजित खिल उठे, सम्पूर्ण शरीर प्रिय की कान्ति को निहार कर खिल उठा । असीम हर्ष के कारण उस का हिया कचुकी की सीमा मे न रह सका । हर्षातिरेक के कारण उसके कुचयुग्म कसमसाने लगे जिस से कंचुकी के बन्द स्वत: ही टूट गए । उल्लास एव हर्षाधिक्य से उसकी भुजलताएं फडक उठी, जिससे उसकी चूडियां टूट गयी । आज उसकी लक (कटि) आनन्द से परिपूर्ण हो उठी, क्योकि उसे लगा कि उसका प्रिय

अब उस पर राज करने को आ गया है। इस हर्षोल्लास के कारण वह अपने-आपको न संभाल सकी और तत्काल ही मूर्च्छित हो गयी।[1]

प्रिय-दर्शन से पूर्व तो कवि ने केवल विवाह से सबद्ध प्रथाओ की सूचना-मात्र ही दी है जिसे केवल इतिवृत्त मात्र ही कहना चाहिए परन्तु रत्नसेन के दर्शन के बाद पद्मावती मे जिस सात्विक भाव का उदय दिखा कर रस और भाव की दृष्टि से एवं हृदय की प्रेम और कुतूहल से अभिभूत स्थिति का जो मनोरम चित्र प्रस्तुत किया है उसका इस कृति मे एक विशिष्ट स्थान है।

इससे आगे जायसी ने लग्न-निर्धारण[2], मंडप[3], वन्दनवार[4], कलशस्थापन[5] का वर्णन कर मंडप मे वधू को लाने[6] के बाद ग्रन्थि-बन्धन का चित्र प्रस्तुत किया है। हिन्दू विवाह-परम्परा मे तलाक की प्रथा न थी। विवाहिता नारी इस जीवन मे तो प्रेम की ग्रन्थी को महत्त्व देती ही थी, परलोक मे भी पति के साथ रहने की कल्पना भी वह ले कर चलती थी। उसी तथ्य को स्पष्ट करते हुए कवि ने कहा कि मंडप मे वर और वधू मे ग्रन्थी बधन किया गया जो परलोक मे भी नही छूट सकता—

गाठि दुलह दुलहिन कै जोरी।
दुऔ जगत जो जाइ न छोरी॥

यहां द्वितीय पक्ति ध्यान देने योग्य है। इससे हिन्दू विवाह-पद्धति मे विवाहिता नारी को जीवन में विवाह के उपरान्त एक निश्चित भविष्य का विश्वास मिलता था। उसे अन्य धर्मों मे प्रचलित तलाक-प्रथा का शिकार हो कर दर-दर नहीं भटकना पडता था।

इसके आगे मंत्रोच्चारण[7], मगलाचार[8] के [बाद सप्तपदी का उल्लेख किया

---

१. देखा चाँद सुरज जस साजा। अस्टौ भाव मदन तन गाजा।
हुलसे नैन दरस मदमाते। हुलसे अधर रग रस राते॥
हुलसा वदन ओप रवि आई। हुलसि हिया कंचुकी न समाई।
हुलसे कुच कसनी बन्द टूटे। हुलसी भुजा वलय कर फूटे॥
हुलसी लंक कि रावन राजू। राम लखन दर साजहिं साजू।
....
अंग अंग सब हुलसे केउ कतहु न समाइ।
ठावहिं ठाँव बिमोहा गई मुरुछा गति आइ। जा० ग्रं० सटीक, पृ० ३०२ (जायसी ग्रन्थावली विवाह-प्रसंग)

२. धरा लगन औ रचा विवाहू।

३. रचि रचि मानिक मडप छावा।

४. बन्दन वार लाग सब तारा।

५. कचन कलस नीर भरि धारा।

६. इन्द्र पास आनी अपच्छरा।

७. वेद पढहिं पंडित तेहि ठाऊ।

८. करहिं सो पदमिनि मंगलचारा।

गया। यह सप्तपदी यद्यपि विवाह मे एक साधारण सी प्रथा लगती है पर हिन्दू विवाह-प्रणाली सप्तपदी के बिना व्यर्थ है क्योंकि यदि किसी विवाह मे अग्नि के सम्मुख सप्तपदी—अर्थात्, वर-वधु का सात पग साथ चलना, न की जाए तो उस विवाह को मान्यता कही भी नही दी जाती।[1] इस दृष्टि से सप्तपदी विवाह का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। जायसी की पैनी दृष्टि से यह अंग कैसे ओझल हो सकता था जबकि उसने इस पद्धति के सूक्ष्मातिसूक्ष्म लोकाचारो को भी अपनी दृष्टि से ओझल नही होने दिया। यहाँ कवि ने वर को सूर्य और वधू को चन्द्र की उपमा देते हुए कहा है कि—

चाँद सूरुज दुहुं भावरि लेही।
नखत मोती नेवछावरि देही॥
फिरहिं दुवौ सत फेर को टेकै।
सातौ फेर गांठि सो एकै॥

जायसी के इस विवाह के दृश्य के चित्रण से ज्ञात होता है कि वे काव्य और जीवन का अविच्छिन्न सम्बन्ध मानते थे। जीवन को सर्वाधिक प्रभावित करने वाले इस कृत्य का रसमय वर्णन कर उन्होने अपने शास्त्रज्ञान एवं हिन्दू जीवन के अंगभूत लोकाचार ज्ञान का सम्पूर्ण परिचय दिया है। दूल्हा बने रत्नसेन को देखने के बाद पद्मावती में हर्षातिरेक एवं प्रफुल्लता का सहज और मनोविज्ञानसम्मत मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करके कवि ने सहृदयो को भाव-विभोर करने मे पर्याप्त सफलता प्राप्त की है। पद्मावत का यह प्रसंग पाठक को अविस्मरणीय क्षणो का स्मरण कर रसविभोर करने की क्षमता लिए हुए है।

भोज-वर्णन

हिन्दू जीवन-परम्परा मे भोजों का भी विशेष महत्त्व है। पुत्र-जन्म, नामकरण, मुडन, विवाह, मृत्यु एवं अन्य अनेकविध सामाजिक सम्मेलनो मे भोज का विशेष महत्त्व है। इसके अतिरिक्त अनेक धार्मिक और सामाजिक कृत्यो मे ब्राह्मण भोजन या वर्ग-विशिष्ट के व्यक्तियो को सामूहिक भोजन कराने का प्रचलन समाज मे बहुत प्राचीन काल से चला आ रहा है। हिन्दुओ के ही कुछ वर्गो मे मृत्युभोज न करने वालो को हेय दृष्टि से देखा जाता है। इस दृष्टि से भोजन जीवन का अपरिहार्य अंग माने जाते है। तात्कालिक भारतीय समाज विशेषत: सामन्ती व्यवस्था मे इनका महत्त्व और भी अधिक था।

जायसी ने पद्मावत मे दो स्थलो पर होने वाले भोजों का वर्णन किया है।

(१) रत्नसेन-पद्मावती विवाह के अवसर पर पद्मावती के पिता गन्धर्व सेन द्वारा दिया गया भोज।

---

1. The majority view is that the parties become wife and husband at the end of the saptapadi.

Dr A S. Alter's, "The position of the hindu women in hindu civilization" P 97.

(२) रत्नसेन-अलाउद्दीन के बीच हुई मैत्री के अवसर पर दिया गया भोज।

इन दोनो मे एक अन्तर बहुत स्पष्ट है, जो भोज विवाह के अवसर पर गन्धर्वसेन ने दिया वह तो निरामिष है और जो भोज चित्तौड-दिल्ली संधि के अवसर पर दिया गया वह सामिष है। यह तो नही कि हिन्दू समाज निरामिष था पर कवि ने संभवतः हिन्दू विवाह की पवित्रता को बनाये रखने के लिए ही उसे निरामिष बताया हो। इन दोनो भोजो के वर्णन से स्पष्ट है कि आज से लगभग चार साढे चार सौ वर्ष पूर्व के लोगो मे खानपान की प्रथाएं कैसी थीं और लोग इन भोजों को अपने जीवन मे कितना महत्त्व देते थे। इन भोजों मे वर्णित विस्तृत सूचियो से कथा-प्रबन्ध में तो शिथिलता आई है, पर इससे तात्कालिक खान-परम्परा की जो जानकारी मिलती है उसके महत्त्व को भी सर्वथा नकारा नही जा सकता। पाकशास्त्र मे रुचि रखने वालो को तो इसका लाभ उठाना ही चाहिए यद्यपि अलौकिक रस प्राप्त करने के इच्छुको को इन सूचियो से निराशा ही हाथ लगती है पर पद्मावत मे वर्णन केवल दो है। इस दृष्टि से इन्हे सर्वथा अनावश्यक नही कहा जा सकता।

विवाह के अवसर पर दिये गए भोज के लिए कवि ने कहा कि उसमे छप्पन प्रकार के पदार्थ परोसे गए थे। इनमे कपूर से सुवासित भात, माँडे (विशेष विधि से तैयार किये गए घृत मिश्रित परावठे) विविध प्रकार की लुचई, पूरी, अदृष्ट पूर्व एवं अनाघ्रात बावन प्रकार के खाद्य पदार्थों के अतिरिक्त विविध प्रकार के व्यंजन और अचार आदि भी दिया गया। दूध और दही से निर्मित अनेक खाद्य पदार्थ भी परोसे गए।[1]

यहा वर्णित सम्पूर्ण भोज्य सामग्री निरामिष बतायी गयी है।

इसके विपरीत द्वितीय भोज मे जो विशुद्ध राजनीतिक आधार पर दिया गया उसमे जगल के विविध परिन्दो, जानवरों एव अन्यान्य निरीह पशुओं के मांस का वर्णन किया गया है। इस भोज की लम्बी सूची मे से कुछ नाम इस प्रकार हैं—

भेडें, बकरे, हिरन, नीलगाय, चित्रमृग, खरगोश, तीतर, बटेर, लवा, सारस, मोर, क्रौंच, कबूतर, हारिल, मुर्गाबी के अतिरिक्त विविध प्रकार की मछलिया तथा निरामिष पदार्थों मे से चावल से निर्मित विविध पदार्थ, विविध सूखे फलो को भुने मास मे मिश्रित कर लोगो के आगे रखा गया।[2]

यहा खाद्य पदार्थों की सूची आवश्यकता से बहुत अधिक है। इसी अनावश्यक विस्तार के कारण ही आलोचको ने सूची परिगणन की भर्त्सना भी की है। यह तो पहले ही बताया गया है कि भोजो मे वस्तु परिगणन परम्परा के निर्वाह के लिए ही कवि

१ जायसी ग्रंथावली सटीक, पृ० ३०५-६

२. जायसी ग्रथावली सटीक, पृ० ५१४-५२१, छन्द ५४१-५४६

ने दिखाया है उसे स्वयं इसमे कोई रुचि हो ऐसा भी नही। इसके विपरीत उस ने भोज्य-पशुओ का परिगणन करते हुए जो संकेत दिया है उससे तो उन पशुओं पर उसे दया भी आ रही है। ऐसा आभास निम्नलिखित पंक्तियो मे देखा जा सकता है—

"मोट बड़े सबु टोइ टोइ धरे। उबरे दुबरे खुरुक न चरे।
कंठ परी जब छुरी रकत ढरा होइ आंसु।
कै आपन तन पोरवा भा सो परावा मासु॥

पशुओ के गले पर छुरी पडते ही उनकी आखो मे आसू आना वर्णन कर संभवतः कवि उनके मन की पीर का निदर्शन करा कर इस अत्याचार के प्रति अपनी विरक्ति दिखाना चाहता है।

इन उपरोक्त भोजो मे काव्य सौन्दर्य देखने की कल्पना व्यर्थ है। यह तो लेखक परिगणन शैली के परिचायक हैं अथवा इनके तात्कालिक समाज की विशेषतः सामन्ती समाज की खान-पान की प्रथाओ की जानकारी ही मिलती है। इससे अधिक इन भोजो का कोई महत्त्व नही। विवाह के अवसर पर दिया गया भोज वर्णन सक्षिप्त है अत उससे तो कथानक पर विशेष व्याघात नही पडता पर दूसरे भोज की सूची अनावश्यक रूप से विस्तृत होने के कारण कथा प्रबन्ध मे शैथिल्य लाने का कारण अवश्य बनी है जिससे आलोचको ने इस सूची पर आपत्ति भी की है।

गौना प्रथा

विवाह से ही संबद्ध इस प्रथा के अनुसार तात्कालिक हिन्दू समाज मे विवाह के तत्काल बाद अथवा एक, तीन या पाच वर्ष के अन्तर से, कही कही केवल कुछ दिनों का ही अन्तर डाल वधू पहली बार ससुराल मे जाती है। यह प्रथा किसी न किसी रूप में अब भी प्रचलित है। विशेषतः वहां इसका प्रचलन अधिक है जब विवाह बाल्यावस्था मे ही कर दिया जाता है। पद्मावत के अनुसार पद्मावती भी विवाह के एक वर्ष के बाद ही ससुराल गयी थी। प्रस्तुत ग्रन्थ मे इस प्रथा का मार्मिक चित्रण दो स्थलो पर किया गया है। एक तो पद्मावती की विदाई के समय और दूसरा वीर बादल की पत्नी की विदाई वेला मे। ये दोनों ही दृश्य अत्यन्त मर्मस्पर्शी चित्र प्रस्तुत करते है। पियर से विदाई और पियागृह गमन ये दोनो बाते बडी मार्मिक है। ऐसे अवसर पर अश्रु और उल्लास के समन्वित भावो का चित्र उपस्थित होने पर कौन सहृदय है जिसका चित्त आन्दोलित नही होता। इस हर्ष और विषाद की वेला मे परिजनो को छोड प्रियजनों के पास जाना एक विचित्र सयोग है। एक ओर परिवार प्रसन्न है उसने पुत्री का विवाह कर कर्त्तव्य पालन किया। वर्षो से पालित पुत्री जो मूलत धरोहर थी अपने दामाद को सौप दी पर साथ ही पुत्री के जाने का अवसाद भी कम नही होता। जायसी ने इस परिस्थिति को व्यापक सदर्भ मे तो प्रस्तुत नही किया पर पद्मावती के मन पर और उसकी सखियो पर उस समय क्या बीती इसका चित्र बडी गहराई से उतारा है—

पद्मावती को अपने गौने की जब जानकारी मिली तो उसका हृदय काप उठा। नेत्रो मे आसू आ गए। पीहर छोड पब 'पी' के घर जाना होगा। अपनी सहेलियो का साथ छूट जायगा। उसके हृदय मे दुख की तीव्र अनुभूति होने लगी।[1] सखियां उसके गौने का समाचार सुनकर उसके पास आई। अब तो उसे सात समंदर पार पी के देस जाना होगा जहां से वापिस आना कठिन होता है। वहा से कुशलक्षेम कैसे मिलेगी आदि आदि।[2]

पद्मावती की मन स्थिति का इस प्रकार चित्रण कर कवि ने सबके समान एक हृदयद्रावक दृश्य प्रस्तुत कर दिया। फलतः उसकी सब सखिया भी रोने लगती है और पद्मावती से कहती हैं कि जब तेरा पिता राजा है अपनी पुत्री को घर पर नही रख सका तो उनके पिता कैसे रखने मे समर्थ होगे अर्थात् उन्हे भी तो एक दिन अपने पीहर से जाना ही होगा। लड़कियो का जन्म तो चलने (पिया का घर) के लिए ही होता है। प्रिय के घर जाने वालो को भला कैसे रोका जा सकता है—

चलने कहँ हम औतरी औ चलन सिखा हम आई।
अब तो चलन चलावै, को राखै गहि पाई॥[4]

विधि के इस विधान को सिर झुका कर वे सखिया पद्मावती से भेंट करती है क्योंकि कौन जाने पुनः भेंट कब हो—

कत चलाई का करौ, आयसु जाइ न भेंटि।
पुनि हम मिलहिं कि न मिलै, लेहु सहेली भेंटि।[5]

जायसी ने जहा भारतीय समाज के इस हृदयस्पर्शी चित्र की मार्मिक अभिव्यंजना की है, इस अवसर पर प्रचलित तिथि-पत्रा आदि के माध्यम से मुहूर्त विचार के ज्ञान का परिचय भी दिया गया है। गन्धर्वसेन ने बिना मूहूर्त विचार के पद्मावती

---

१. गवन चार पदुमावती सुना। उठा धक्कि जिय औ सिर धुना।
गहबर नैन आए भरि आसु। छाड़व यह सिघल कविलासु।
× × ×
छांडिउ आपन सखि सहेली। दूरि गवन तजि चलिउं अकेली।
२ पुनि पदुमावती सखी बोलाई। सुनि कै गवन मिलै सब आई।
× × ×
सात समुद पार वह देसू। कत रे मिलत कत आव संदेसू।
३ धनि रोवत सब रोवहिं सखी। हम तुम्ह देखि आपु कहँ झखी।
तुम अैसी जह रह न पाई। पुनि हम कहा जो आहिं पराई।
४. जायसी ग्रन्थावली सटीक, पृ० ३८०
५. वही, पृ० ३७९

को विदाई नही दी इस तथ्य की ओर सकेत देते हुए कवि ने कहा कि यात्रा के समय यदि चन्द्र दाया हो तो सुखदायी होता है और बाया चन्द्र आपदाएं देता है आदि आदि ।[1]

इससे स्पष्ट हैं कि तत्कालीन समाज मे प्रचलित ज्योतिष की कतिपय बातो सें कवि पूर्णतः परिचित था तभी उसने विदाई के समय इस प्रकार के विचारो को अभिव्यक्त किया है ।

इस कृति में 'गोरा बादल युद्ध यात्रा-खण्ड' के अन्तर्गत दिखाया है कि वीर गोरा जिस दिन युद्ध के लिए प्रस्थान कर रहा है उसी दिन उसका गौना आया है—

"बादल गवन जूझ कर साजा ।
तैसाहि गवन आई घर बाजा ।।

इसके पश्चात् कवि ने बादल नवोढा प्रिया चारुरूप एवं सौन्दर्य का चित्र इन शब्दो मे प्रस्तुत किया है—

का वरनौ गवने का चारु । चन्द्रवदनि रचि कीन्ह् सिंगारु ।
मांग मोति भरि सेंदुर पूरा । बैठि मयूर बाक तस जूरा ।
भौहि धनुक टकोरि परीखे । काजर नयन मार सर तीखे ।
घालि कचपटी टीका साजा । तिलक जो देख ठाव जिउ तासा ।
मनि कुंडलाडोलै दुई स्रवना । सीस धुनहिं सुनि सुनि पिउ गवना ।
नागिन अलक झलक उर हारु । भएउ सिंगार कत बिनु भारु ।
गवन जो आई पिय रवन्नि पिय गवने परदेस ।
सखी बुझावौ किमि अनल बुझै सो कहु उपदेस ।।[2]

कहां तो वर्षों से पिय मिलन की आस को मन में संजोये एक नवला पीहर को छोड कर आयी और आते ही उसे पता चले कि उसका 'पिया' तो आज शत्रु से जूझने रणभूमि मे जा रहा है । उस नवला के मन पर क्या बीती । इसकी कल्पना भी पाठक को सिहरा देती है । नवला भी कैसी जिसने प्रिय मिलनार्थ अभी-अभी अपने को संवारा है जिसकी माग मोतियो और सिन्दूर से भरी है । जिसके जूड़े का बाकपन अभी तक अस्पर्शित है । जिसकी धनु सदृश भौए है । कजरारी आखो में यौवन सुलभ मादकता है । जिस के हिलते हुए कर्ण-कुडल मानो प्रिय के जाने के समाचार को सुनकर हिलने के माध्यम से अपना सिर धुन रहे हैं । नागिन सदृश वेणी जिसके वक्ष के हार पर आ बैठी है उस नवला को ये सारे आभूषण और हार तो भार लगने ही थे, उस अभुक्ता नवोढ़ा ने प्रिय को नयन भर कर देखा भी तो नही । न तो उसके लाज के बोल ही खुले थे और न उसने प्रिय को अधरामृत ही पिलाया था ।

१. दाहिन चन्द्रमा सुख सर्वथा ।
बाएं चन्द्र त दुख आपदा ।। जा० ग्रं०, ना० प्र० स०, पृ० १६९

२. जा० ग्र० सटीक, पृ० ५७१

ऐसी नवपरिणीता का जो चित्र जायसी ने यहा दिया है और चन्द्रमा, मयूर, धनुष, मारसर, नागिन, आदि उपमानो की योजना से उस नवला के मुख, जूडा, भौह, कजरारे नेत्र और अलको के सौन्दर्य का अकन कर जिस जीवन्त प्रतिमा को प्रस्तुत किया है उसके प्रति किस सहृदय की सहानुभूति न होगी। इस प्रकार के सश्लिष्ट वर्णन द्वारा उस नवला के रूप का चित्रण कर कवि ने उस नवला की मन-स्थिति का उद्घाटन उसके इन शब्दो मे प्रस्तुत कर दिया—

रमणी तो प्रिय से रमण करने पीहर से पिया के घर आई पर आज का पिया परदेश जा रहा है। नवला सखी से पूछती है कि वह आग (कामाग्नि) बुझाये तो कैसे ?

गवन जो आई पिय रवनि। पिय गवने परदेस।
सखी बुझावौ किमि अनल। बुझै सो कहु उपदेस॥

यहा जायसी ने जो रवनि (रमणी) और अनल का प्रयोग किया है उस के निहतार्थ को समझने मे ही सहृदय की सहृदयता है। इस प्रकार सार्थक और उद्देश्य-पूर्ण प्रयोगो से पद्मावत भरा पडा है। इस प्रकार के प्रयोग ही रसिको की अमर थाती है।

पीहर से प्रिय के घर आई नवला ने प्रिय से अनेक विनती की कि वह उसे भेंटे बिना युद्ध मे न जाए इस अवसर पर नवला ने जो मार्मिक उक्तिया कही उनमे से कतिपय इस प्रकार है—

आजु गवन हौ आई नाहाँ। तुम न कत गवनउ रन माहाँ।
× × ×
अलक परी फँदवारि होइ कैसहु तजै न पाय।
× × ×

कन्त ने कान्ता की जब एक भी न सुनी तो उस समय हृदय की अपार व्यथा के कारण जो अश्रुपात हुआ उससे उसका सारा शृगार ही धुल गया। प्रिय के हाथों से अनछुई उसकी चोली भी भीग गई। उस अश्रुस्नाता और स्वेदखिन्ना नवला की जो दशा थी, जायसी ने उसका चित्र इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

कैसहुं कंत फिरै नहिं फेरे।
आगि परी चित उर धनि केरे।
उठे सो धूम नैन करुआने।
जबहि आसु रोइ बेहराने।
भीजे हार चीर हिय चोली।
रही अछत कंत नहिं खोली।
भीजी अलक चूई कटि मंडन।
भीजे भंवर कंवल सिर फुदन।

चुई चुई काजर आँचर भीजा।
तबहु न पिय कर रोवँ पसीजा।[1]

इस प्रकार के मोहक चित्रो के माध्यम से महाकवि जायसी ने तत्कालीन गौना का वर्णन किया है।

जौहर और सती प्रथा

राजपूती जीवन से संबद्ध काव्यो मे जौहर और सती प्रथा का वर्णन कवियो का प्रिय विषय रहा है। मृतक पति की देह को गोदी मे रख कर जब कोई वीर रमणी चिता मे जल जाती थी तो उसे सती कहा जाता था और वीरों की पराजय अथवा युद्ध मे खेत रहने पर सामूहिक रूप से जो वीर पत्नियां धधकती आग के शोलो मे अपने को झोका करती थी तो उस प्रथा को 'जौहर' का नाम दिया गया। जन-श्रुति के अनुसार राजपूती गढो के भीतर युद्धकाल मे विशाल अग्निचिता धधकती रहती थी। युद्ध मे पराजय सुनते ही वीरागनाएं शत्रु के हाथो अपमानित होने की अपेक्षा अपने को अग्नि मे समर्पित करने मे गौरव का अनुभव करती थी। मध्ययुगीन सम्पूर्ण भारतीय वीर काव्यो मे इस प्रकार की अनेक घटनाओ का चित्रण मर्मस्पर्शी काव्यात्मक शैली मे उपलब्ध होता है। वस्तुतः जौहर एक सामूहिक आत्म-बलिदान था जहाँ वीरागनाए अग्नि मे कूद कर प्राणान्त करती थी जबकि उनके वीर पति रणभूमि मे मृत्यु पर्यन्त लड कर प्राण दिया करते थे।[2]

पद्मावत मे जौहर का वर्णन तब आता है जब दिल्लीपति अलाउद्दीन के साथ संघर्ष करते हुए राजपूतो को अपनी पराजय का विश्वास होने लगा। इस समाचार के ज्ञात होते ही राजपूत रमणिया अपने को प्रसाधित कर जल मरने को प्रस्तुत होने लगी—

जौहर कहँ साजा रनि वासू। जिन्ह सत हिये कहा तिन्ह आसू।
पुरुषन्ह षड्ग सम्हारे। चन्दन खेवरे देह।
मेहरन्ह सेन्दुरमेला। चहहिं भइ जरि खेह।

परन्तु संधि का समाचार दिला कर कवि ने वीर रमणियों को अग्निशिखा से आलिंगन करने से यहाँ रोक दिया।

इसके बाद देवपाल से युद्ध करते हुए जब राजा रत्नसेन की मृत्यु हो गई और अलाउद्दीन ने गढ को घेर लिया तो उस समय के 'जौहर' की मार्मिक अभिव्यक्ति करते हुए कवि ने कहा कि अलाउद्दीन के पहुंचने से पूर्व ही वीरागनाएं सामूहिक रूप से अग्निशिखा मे भस्म हो गई—

---

१. जा० ग्रं० सटीक, पृ० ५७५
२. श्री० ए० जी० शिरेफ-पदुमावति, पृष्ठ २६३ पादटिप्पणी।

जौहर भइ सब इस्तरी, पुरुष भये संग्राम।
बादशाह गढ चूरा, चितउर भा इसलाम ॥

यहाँ राजपूतो की वीरता एवं वीरांगनाओ की शौर्यगाथा के माध्यम से वीर और करुण रस का अद्भुत परिपाक दर्शा कर कवि ने काव्यात्मक सौन्दर्य को चरम सीमा तक पहुचा दिया है। सती प्रथा के अन्तर्गत वीर रमणी सदा यही कामना करती आयी है कि वह परलोक मे पति के सग विहार किया करेगी। रत्नसेन की मृत्यु के पश्चात् नागमती और पद्मावती ने पति से परलोक मे मिलने के लिए जब जीवन का अन्तिम शृगार किया और प्रिय की चिता के पास जाकर अपने केश खोले तो कवि कहता है कि केशो को खोलने से मोतियो की लड़िया जब टूटी तो ऐसे प्रतीत होता था मानो रात्रि में गगन के सितारे ही टूट पडे हो।[1] इस समय हर्ष और विषाद की एक मिश्रित भावना दृष्टिगोचर हो रही थी। बाजा बज रहा था। यह बाजा एक बार विवाह के समय बजा था और दूसरी बार सती होने के समय बज रहा था। इस करुण दृश्य पर कवि ने कहा—

आजु सूर दिन अथवा, आजु रैनि ससि बूड।
आजु बाँचि जिउ दीजिए, आज आगि हम्ह जूड ॥[2]

आज सूर्य दिन मे ही अस्त हो गया, आज चन्द्रमा रात्रि मे ही डूब गया। आज हम स्वेच्छा से जीवन देंगी। आज आग हमारे लिए शीतल हो गयी है।

अन्तत. रानियो ने कहा प्रिय जीते जी तूने हमे कंठ से लगाया था, मरणोपरान्त हम तुम्हे कंठ लगा रही हैं। पाणिग्रहण (विवाह) के समय तूने जो गाठ जोडी थी वह गाठ अन्त तक छोडी नही जा सकती—

जियत कंत तुम्ह हम कंठ लाई।
मुए कंठ नहिं छाडहिं सांई।
औ जो गाठि कत तुम्ह जोरी।
आदि अन्त दिह्नि जाइ न छोरी।

इस के पश्चात् प्रिय को कंठ लगा कर वे दोनो रानिया सती हो गई। उन की मृत्यु पर कवि ने कहा कि शील और सौन्दर्य की वे प्रतिमूर्तिया पति के प्यार मे रंगी जब स्वर्ग पहुची तो स्वर्ग भी उन की लाली से लाल हो गया—

"राती पिय के नेह गई सरग भएउ रतनार"

उनकी शौर्यपूर्ण गाथा के अन्त मे करुणा की अतिशयता से व्याकुल कवि ने कहा कि जिसका जन्म हुआ है उसकी मृत्यु अवश्यंभावी है। संसार मे कोई सदा नही रहा—

"जो रे उवा सो अथवा रहा न कोई ससार।"

---

१. छोरे केस मोति सब टूटी। जानहु रैन नखत सब टूटी। जा० ग्रन्थावली, पृ० ५९७

२. जा० ग्रं०, पृ० ५९८

इस अन्तिम दृश्य मे कवि ने हर्ष-विषाद तथा निर्वेद के तीनो भावों को रसगुम्फित कर अपनी काव्य-कला की उत्कृष्टता का जीवन्त उदाहरण प्रस्तुत किया है। अन्ततः अलाउद्दीन का चिता की राख को हाथ में ले कर संसार को मिथ्या कहना दिखा कर कवि ने इस दृश्य का पर्यवसान शान्त रस के रूप मे कर पटाक्षेप ही कर दिया—

"छार उठाई लीन्ह इक मूठी। दीन्ह उडाई परिथमी झूठी"

सौन्दर्य की जिस अप्रतिम राशि के लिए बादशाह ने इतना बडा संघर्ष किया उस की यह कारुणिक परिणति सचमुच हृदयविदारक है।

सामाजिक उत्सव और पर्व

लोक-जीवन के चितेरे महाकवि जायसी ने तत्कालीन भारतीय समाज को सर्वाधिक प्रभावित करने वाले वसन्त, होली और दीवाली प्रभृति उत्सवो और पर्वों का वर्णन भी कथानक के अगरूप मे प्रस्तुत किया है। इनमे षड्ऋतु वर्णन के अन्तर्गत वसन्तश्री का वर्णन अत्यन्त ही रोमानी शैली मे किया गया है। होली और दिवाली का उल्लेख वसन्त के सदर्भ मे तो है ही, 'नागमती वियोग खड' के अन्तर्गत 'बारहमासा' मे भी इनके संकेत दिये गए हैं। इससे ज्ञात होता है कि तत्कालीन भारत मे इन पर्वों का एवं वर्षाऋतु के अन्तर्गत तीज आदि को भी लोग विशेषताए स्त्रिया सोल्लास मनाया करती थी।

वसंत-पूजा के लिए गौरी के मन्दिर में गई पद्मावती की भेट रत्नसेन से हुई थी जहा उसके रूप-सौन्दर्य को देखते ही जोगी बना राजा अचेत हो गया था। उन दिनो वसन्त-पचमी के दिन गौरी-शिव की पूजा प्रचलित रही होगी। तभी सिंहल-सुन्दरी वहा गयी थी। इस अवसर पर विभिन्न प्रकार के अन्य आयोजनो के अतिरिक्त लोकनृत्य, लोकगान, चाचरी आदि नृत्यो मे भाग लेती हुई स्त्रियां शृंगार कर वसन्त की मोहक छटा मे आकठ डूबकर यौवनसुलभ आनन्द का उपभोग करती थीं।

जायसी ने अपनी सहज मधुर लोक-भाषा मे वसन्त के इस दृश्य का अकन इस प्रकार किया है—

नवल वसन्त नवल सब बारी। सेंदुर बुक्कन होइ धमारी।
खिनहिं खिनहिं खिन चांचरि होई। नाच कूद भूला सब कोई।
सेंदुर खेह उड अस। गगन भएउ सब रात।
राती सगरिउं धरती। राते बिरछन्ह पात॥

गुलाल से धरती-आकाश की ललिमा के चित्रण के पश्चात् कवि ने कहा कि फाग मे होने वाले नृत्यो ने विरह की होली जला डाली है। प्रिया प्रिय के सग नृत्य-मग्ना है तो भंवरे कलियो के संग नृत्य कर रहे हैं।[1] वसन्त के इस काव्यात्मक चित्रण

---

१. होइ फाग भरी चाचरि जोरी। विरह जराय दीन्ह जस होरी।
पति संजोग धनि जोबन वारी। भौर पुहुप संग करहिं धमारी।
वसन्त वर्णन, जा० ग्रंथावली

में पद्मावती के सयोग शृंगार के अन्य चित्र भी बहुत आकर्षक बन पडे है ।

संयोग मे वसंत और होली जहां आनन्ददायक होते हैं वही पर्व वियोग मे सालने वाले हो जाते है । पति के संयोग मे वसन्त-होली पद्मावती के लिए वरदान थे तो ये पर्व वियोगिनी नागमती के लिए अभिशाप; फाग के आते ही सब युवतिया अपने प्रियतम के साथ विभिन्न नृत्यो मे मस्त हो जाती है पर मेरा शरीर ऐसे जल रहा है जैसे होली । सभी वृक्षो ने पुराने पत्ते सडने के बाद नए फूल-पत्तो से नाता जोड लिया है । चैत मास मे वसन्त के धमारी नृत्य और गान गूजने लगे है पर मेरे लिए तो यह संसार उजाड हो गया है—

फागु करहिं सब चाचरि जोरी ।
मोहिं तन लाइ दीन्ह जस होरी ।।
तरिवर झरहिं झरहिं बन ढाखा ।
भइ ओनंत फूलि फरि साखा ।।
चैत वसन्ता होइ धमारी ।
मोहि लेखे संसार उजारी ।।[1]

इसी बारहमासा के अन्तर्गत कवि ने दिवाली का चित्रण भी किया है । वियोगिनी नागमती को दुख है तो इस बात का कि इस महान पर्व पर सभी सखिया आनन्द और उल्लास मे मस्त होगी । बिछडे लोग गले मिलेंगे पर उसका निठुर प्रिय अब तक भी नही लौटा । उसके लिए दिवाली भी अन्य पर्वों के समान दुखदायक ही हो रही है ।[2]

कवि ने इन पर्वों के द्वारा जहा तत्कालीन भारतीय हिन्दू समाज की धार्मिक और सांस्कृतिक परम्पराओ का निदर्शन किया, वहां इनके द्वारा जीवन के हर्ष और विषाद को अभिव्यक्ति देकर पद्मावत के काव्य-सौन्दर्य को भी एक निखार दिया है ।

नगर-सौन्दर्य-वर्णन

पद्मावत मे जायसी की लेखनी केवल सिंहल द्वीप के सौन्दर्य-वर्णन पर ही सीमित रही है । सौन्दर्य-राशि पद्मावती की जन्म-स्थली के सौन्दर्य-वर्णन मे कवि ने अपनी लेखनी की अधिकाधिक शक्ति लगा दी । उसके मनश्चक्षु वहा से हटने का नाम ही नही लेते । सौन्दर्य की अप्रतिम मूर्ति जहा जन्मी थी भला उसके सौन्दर्य को कवि कैसे छोड सकता था । सौन्दर्य की उपासना करने वाले एव सौन्दर्य को ही ईश्वर मानने वाले कवि ने दिल्ली, चित्तौड प्रभृति नगरो के वर्णनो की पूर्णतः उपेक्षा कर दी । प्रसंगवश यदि कही कहना भी पडा तो वह वर्णन चलता-सा है । उसकी

---

१. जा० ग्रं०—नागमती वियोग खड ।
२. सखि माने तिउहार सब, गाइ, दिवारी खेलि ।
हौं का गावौं कन्त बिनु रही छार सिर मेलि ।। (वही)

दृष्टि तो सिंहल के प्राकृतिक एवं नागरिक सौन्दर्य पर टिकी थी । फलतः उसी के चित्रण मे ही उसने अपनी लेखनी को धन्य कर लिया ।

सिंहल द्वीप की प्राकृतिक छटा में कवि ने सघन अमराइया[१] मलयाचल के वृक्ष और पादप[२] विविध पक्षियों का कूजन, चतुर्दिक सज्जित वाटिकाएं, मानसरोवर, ताल-तलैया आदि का वर्णन कर दर्शाया है कि सिंहल द्वीप पर प्रकृति की अपार कृपा थी ।

हीरामन सुआ के पीछे चलने वाला राजा रत्नसेन सात समुद्रो की अनेक आपदाओ और बाधाओ को पार करने के उपरान्त जब अकस्मात् प्रकृति मे परिवर्तन का अनुभव करता है तो वह एक साथ चमत्कृत हो उठता है । वस्तुस्थिति तो यह थी कि वह अदृष्ट पूर्व सिंहल द्वीप के पास पहुच चुका था । वहा पहुचते ही उसे लगा कि वहा की हवा मे शीतलता है । गन्धवाही मलय पवन तन की तपन बुझाने लगा है ।[3] सामने ही जहा-तहा फैले मेघो मे बिजली कौंधने लगी है ।[४] उस समय हीरामन ने राजा को बताया कि अब वह सिंहल द्वीप मे पहुच चुका है ।

सिंहल द्वीप की प्राकृतिक शोभा के वर्णन के पश्चात् कवि द्वीप के आन्तरिक सौन्दर्य का अकन इन शब्दो मे कर रहा है ।

हीरामन तोता रत्नसेन को पद्मावती के सौन्दर्य की ओर आकर्षित करने के लिए उसकी जन्म-स्थली के आन्तरिक सौन्दर्य का परिचय देने के लिए कहता है कि वहा पग-पग पर कूप और सुन्दर बावलिया बनी हुई है । उन्ही के तट पर अनेक साधु-तपस्वी साधनानिरत है ।[५] उस द्वीप मे बने मानसरोवर के सौन्दर्य का तो कहना ही क्या ? वह तो सागर सम गहरा और गम्भीर है, उसका जल अमृत सदृश निर्मल और कपूर की गध से सुवासित है । लका द्वीप से लाई शिलाओ से उस के घाट बनाये गये है । उसके चारो ओर सीढ़िया बनी हैं जो जल तक पहुचती है, उस सरोवर मे सहस्र दल खिले हुए है । सीपियो के उलटने से वहा मोती बिखरे हुए है जिन्हे केलि करते हुए हंस ही चुगा करते हैं । सरोवर के किनारे सकल वृक्षो की पक्तिया शोभा देती है ।[६]

---

१. "घन अंबराऊं लाग चहुपासा"
२. "तरुवर सबै मलय गिरि लाए" जा० ग्र०—सिंहल वर्णन
३ "पवन वास शीतल लै आवा"
४. "उठे मेघ अस जानहु आगे । चमके बीजु गगन पर लागै"
५. पग पैग कुआबावरी । साजि बैठक औ पावरी । [जा० ग्र०—सिंहल द्वीप वर्णन
६. मानसरोदक देखिए काहा । भरा समुन्द अस अति अवगाहा ।
पानी मोती अस बिरमर तासू । अम्रित बानि कपूर सुबासू ।
लंक दीप कै सिला अनाई । बाधा सरवर घाट बनाई ।
खंड खंड सीढी भइ गरेरी । उतरहि चढहि लोग चहुफेरी ।
फूला कंवल रहा होई राता । सहस सहस पंखुरिन्ह कर छाता ।
उथ लहि सीप मोति उतराहि । चुगहि हंस केली कराहि ।

उस मानसरोवर पर पनिहारिन पानी भरने आती हैं जिनके वदन देखकर भंवरे कमल के भ्रम से मडराने लगते है । उन पनिहारिनो की लम्बी केशराशि मेघ-घटा सी है तो उनके दर्शन विद्युत् की भाति अपनी कौंध दिखाया करते है । कनक-कलशो को पीनस्तनो से थामे वे पनिहारिने अपने कटाक्ष मात्र से दर्शको को घायल किया करती हैं । वे पनिहारिन क्या हैं वे तो साक्षात् मदन बालाएँ ही है । जिस सिंहल द्वीप की पनिहारिने इतनी रमणीय और कमनीय है वहा की रानी पद्मावती के रूप का तो कहना ही क्या । उसे तो साक्षात् रति ही कहना होगा ।[1]

द्वीप के इस आन्तरिक प्राकृतिक और मानव-निर्मित वैभव के वर्णन के उप-रान्त कवि ने वहां के हाट-बाजार का चित्र भी प्रस्तुत किया है ।

सिंहल के इन हाटो पर लक्ष्मी की अपार कृपा है । इन हाटो मे रत्न, माणिक, हीरे व पन्ने का प्राचुर्य देखने की वस्तु है । कपूर, खस, चन्दन, अगर आदि सुगधित द्रव्यो की यहा कोई कमी नही है। इन हाटो मे क्रय-विक्रय-कर्त्ताओ मे कोई तो लाभा-न्वित हो रहा है और कोई मूल भी गंवा रहा है ।[2]

हाट-वर्णन करते समय कवि रूपजीवा वनिताओ को नही भूला । सामती सस्कृति की अगभूत इन वार-वनिताओ को कुसुम्भी साडी पहने, पान की लाली से लाल अधर किये एवं विविध आभूषणो से सजे रूप मे वर्णित कर कवि ने कहा कि इनके सान पर चढे कटाक्ष-शरों मे घायल करने की असीम शक्ति है । इन की कचुकी मे छुपे उरोजो को गोटो से उपमा देते हुए कवि ने कहा कि इन गोटों से खेले तो बहुत है पर बहुधा उन्हे हाथ झाड कर ही यहां से जाना पडा है ।[3]

इसके पश्चात् मालिनो, ऐन्द्रजालिको, ठगो, धूर्तो, नर्तको का संक्षिप्त उल्लेख कर कवि सिंहलगढ के वैभव के चित्रण मे तल्लीन हो गया ।[4]

१. पानि भरइ आवहिं पनिहारी । रूप सरूप पदुमिनी नारी ।
पदुम गंध तेन्ह अँग बसाही । भंवर लाग तेन्ह सग फिराही ।
+ + +
केस मेघावरि सिर ता पाई । चमकै दसन बीज की नाई ।
कनक कलस मुख चन्द दिपाही ।........ .... ।
जासौं वह हेरहिं चख नारीं । बक नैन जनहु हनहिं कटारी ।
मानहु मैनमूरति सब अछरी वरन अनूप ।
जेन्हिकी ये पनिहारी सो रानी केहि रूप । जा० ग्रं०—सिंहल द्वीप वर्णन खड

२. पुनि देखअ सिंघल की हाटा । नवौ निद्धि लछिमी सब बाटा, आदि आदि ।
जा० ग्र०, पृ० ९६

३. पुनि सिंहार हाट धनि देसा । कइ सिंगार तहं बैठी वेसा ।

४ लै लै बैठ फूल फुलवारी । पान अपूरब धरे सवारी । —वही

गढ-वर्णन

जहा तक गढ-वर्णन का सम्बन्ध है कवि ने चित्तौड और सिंहल गढो का ही वर्णन किया है। दिल्ली के गढ के वर्णन का अवसर यहा नही आ पाया।

सिंहलगढ के वर्णन मे कवि ने जहा इस गढ के बाह्य और आन्तरिक वैभव का चित्र प्रस्तुत किया वहा इसमे एक आध्यात्मिक सकेत भी दिया गया है जो वस्तुतः योग-साधना का द्योतक है जिसके अनुसार मानव के शरीर को एक दुर्ग का रूप देकर इस के दस रन्ध्रो को दशद्वारो की सज्ञा प्रदान की गई है। नौ द्वारो से श्वास रोक कर साधक सिर के बीच विद्यमान दशम द्वार मे प्राण वायु को ले जाने का अभ्यास कर अन्ततः ब्रह्मरन्ध्र (दशमद्वार) के माध्यम से मोक्ष प्राप्त करता है। गढ की इस सश्लिष्ट वर्णन-पद्धति का निर्देश शिव रत्नसेन को करते है ताकि वह सिंहलगढ के सम्पूर्ण रहस्य को हृदयगम कर गढ पर आक्रमण कर अपनी लक्ष्यसरूपा पद्मावती को प्राप्त कर सके।

इससे मिलता-जुलता वर्णन हीरामन तोता ने भी रत्नसेन के समक्ष किया था जो सिंहलद्वीप मे पहुचने पर राजा को वहा का परिचय दे रहा है। सश्लिष्ट वर्णन के कारण ही इस लौकिक प्रेम-कथा में वर्णित गढ के साथ-साथ एक अलौकिक आध्यात्मिक अर्थ अन्त सलिला सरिता की भान्ति अध्येता के मनश्चक्षुओ के समक्ष स्पष्ट होने लगता है—

गढ तस बॉक जैसी तोरि काया।
परखि देखु तै ओहि छाया।
पाइअ नाहि जूझि हठ कीन्हे।
जेइँ पावा तेइं आपु चीन्हे।
नौ पौरी तेहि गढ मझिआरा।
औ तह फिरहि पाच कोटवारा।
दसवँ दुआर गुपुत एक नाकी।
अगम चढाव बाट सुठि बाकी।
भेदी कोउ जाइ ओहि घाटी।
जौ लौ भेद चढै होइ चाटी।
गढ तर सुरंग कुड अँवगाहा।
तेहि मँह पथ कहौ तोहि पांहा।
चोर पैठि जब सधि संवारी।
जुआ पैत जेउ लाव जुआरी।

---

१. यहा स्पष्ट है कि महादेव ने जिस गढ का वर्णन किया है वह आध्यात्मिक साधना मे वर्णित योगाभ्यास का मार्ग भी है।

जस मरजिया समुद्र धसि मारै हाथ आव तब सीप।
ढूँढ लेहि ओहि सरग दुवारी औ चढ़ सिंहलदीप।

जा० ग्र०. पृ० २४५

इस से पूर्व भी सिंहल के गढ-वर्णन में आध्यात्मिक सकेत मिलते है जहा हीरामन सुआ रत्नसेन को सिंहल द्वीप से परिचित करा रहा है।

गढ-वर्णन मे कवि ने गढो के चतुर्दिक खाइयो का वर्णन किया है जहा सदा पानी भरा रहता है ताकि शत्रु आक्रमण न कर सके। गढों के साथ ऊंची प्राचीरो, सूचना देने के लिए घंटो और घडियालो की व्यवस्था के अतिरिक्त सेना के विभिन्न अवयवो के चित्रण द्वारा तत्कालीन सैनिक व्यवस्था की जानकारी भी मिलती है।

गढ चित्तौड के वर्णन मे भी प्रायः इसी प्रकार के भाव है पर सिंहल द्वीप के समान सिंहलगढ-वर्णन मे कवि ने अधिक उदारता दिखाई है।

अन्त मे यह कहा जा सकता है कि जायसी ने पद्मावत मे तत्कालीन सामाजिक जीवन की छटा का अंकन कर रसिक अध्येता को मध्यकालीन समाज के कतिपय जीवन्त और सुन्दर पहलुओं से परिचित कराया है।

जायसी का रहस्यवाद

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने—"साधना के क्षेत्र के अद्वैतवाद को भावना के क्षेत्र का रहस्यवाद" माना है। रहस्यवाद की सत्ता दर्शन और काव्य दोनों में रहती है। परन्तु रहस्यवाद का प्रयोग केवल काव्यगत रहस्यवाद के लिए ही होता है। दर्शन का रहस्यवाद जहां ज्ञान-प्रधान होता है, वहां काव्य का रहस्यवाद भाव-प्रधान होता है। काव्य मे ज्ञान और भाव—दोनों का समन्वय होते हुए भी अनिवार्यतः भाव की प्रधानता रहती है। दर्शन मे भाव के लिए कोई स्थान नही रहता। इस प्रकार जब साधक भावना का आधार लेकर आध्यात्मिक सत्ता की रहस्यमयी अनुभूतियो को शब्दमय चित्रो मे सजा कर अभिव्यक्त करने लगता है, तभी साहित्य मे रहस्यवाद की सृष्टि होती है।

रहस्यवाद और धर्म-साधना

रहस्यवाद का धर्म से सीधा, घनिष्ठ और सच्चा सम्बन्ध है। इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुए डा० राधाकृष्णन का कहना है—"प्रत्येक धर्म मे कुछ विधि-निषेध हुआ करते है। आध्यात्मिकता में विधि-निषेधों की प्रतिष्ठा न होकर सर्वोच्च सत्ता को जानने, उससे तादात्म्य स्थापित करने और जीवन के सर्वांगीण विकास के विस्तार करने पर ही सर्वाधिक बल दिया जाता है, आध्यात्मिकता वास्तव में धर्म का अन्त-सार है। रहस्यवाद का सम्बन्ध धर्म के सारपक्ष से रहता है।" डा० ई० के यर्ड ने तो इसे और अधिक स्पष्ट शब्दों में इस प्रकार कहा है—"रहस्यवाद वास्तव में वह धार्मिक अनुभव है जिसमे ईश्वर की अनुभूति अपनी पराकाष्ठा में पाई जाती है।"

वस्तुत मानव-जाति अपनी सृष्टि के आरम्भ से ही कुछ महत्त्वपूर्ण समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न करती रही है और अपने निरन्तर बढते हुए अनुभव और ज्ञान के सन्दर्भ मे नाना प्रकार से उनका समाधान ढूढती रही है। जीवन और मृत्यु क्या हैं? मृत्यु के पश्चात् क्या होता है? इस जगत् की सृष्टि कैसे हुई? इस समग्र सृष्टि का उद्देश्य और साध्य क्या है? दु ख का मूल कारण और उसका वास्तविक स्वरूप क्या है। इस दु.ख से सदा के लिए निवृत्ति का साधन क्या है? इन प्रश्नो को सचमुच ही सार्वकालिक तथा सार्वभौमिक कहा जा सकता है। इन प्रश्नो के विभिन्न कालो और

देशो मे विभिन्न उत्तर दिए गए है और ये उत्तर ही संसार के सभी धर्मों के आधार हैं।

विश्व के विभिन्न धर्मों मे परस्पर अनेक भेद हैं किन्तु उन सब मे एक मूलभूत समानता है। सभी धर्मो का विश्वास है कि इस सम्पूर्ण चराचर जगत् के पीछे कोई परमतत्त्व शक्ति या सत्ता कार्य कर रही है। सभी धर्मों की मान्यता है कि उनके आधारभूत सिद्धान्त उन दिव्य पुरुष अथवा ग्रन्थो की देन है जिन्हे उस परमतत्त्व, शक्ति अथवा सत्ता से प्रत्यक्ष ज्ञान की अनुभूति हुई है। उदाहरणार्थ, हिन्दुओ का विश्वास है कि वेद शाश्वत है और उनमे शब्दबद्ध ज्ञान ईश्वर-प्रदत्त है। बौद्धो का विश्वास है कि तथागत को उस परमतत्त्व की प्रत्यक्षानुभूति हुई थी, जिसके कारण ज्ञान-निर्वाण का मार्ग प्रशस्त होता है। ईसाई धर्मावलम्बियों की मान्यता है कि ईसामसीह ईश्वर के पुत्र थे, अत. उन्हे ईश्वर और उसके लोक का सम्यक् तथा प्रत्यक्ष ज्ञान था। मुसलमान भी इसी प्रकार का दावा करते हुए कहते है कि मुहम्मद साहब ईश्वर के दूत थे, अत. उसके साथ उनका प्रत्यक्ष सम्पर्क था। इस प्रकार परमतत्त्व, शक्ति या सत्ता के प्रत्यक्षानुभव का तत्त्व रहस्यवादी तत्त्व है और संसार के सभी धर्मों का मूलाधार यही रहस्यवाद है।

किसी धर्म का विश्लेषण करने पर उसमे तीन मुख्य बातें दिखाई पड़ेंगी—

(१) **आस्तिकता** अर्थात् परमतत्त्व, शक्ति अथवा **सत्ता की प्रत्यक्षानुभूति**—यह सभी धर्मो का मूलाधार है।

(२) **दार्शनिकता** अर्थात् उस **प्रत्यक्षानुभूति की बौद्धिक व्याख्या**—यह सभी धर्मों का दार्शनिक पक्ष होता है।

(३) **साधना-पथ** अर्थात् कतिपय विशेष धार्मिक क्रियाए, उपासना-पद्धति तथा नैतिक नियमो एवं सिद्धान्तों की एक संहिता—जिसके पालन से उस धर्म के अनुसार व्यक्ति को अपने चरम प्राप्तव्य तक पहुचने मे सहायता मिलती है। इस प्रकार यह निश्चित है कि रहस्यवाद का मूलतत्त्व—ईश्वरानुभूति विश्व के सभी धर्मो का आधार है। इसका विश्लेषण ही प्रत्येक धर्म का दर्शन है और इस आधारभूत लक्ष्य की प्राप्ति के साधनरूप ही सभी साधन-पद्धतिया है। इस प्रकार धर्म और रहस्यवाद का घनिष्ठ सम्बन्ध स्पष्ट और असन्दिग्ध है।

रहस्यानुभूति की अनिर्वचनीयता

रहस्यवाद शब्द की विविध व्याख्याए की गई है। इसका एक कारण यह है कि विभिन्न देशो तथा कालो मे उत्पन्न होने वाले सभी रहस्यवादियो का निश्चित तथा स्पष्ट मत है कि रहस्यवादी-अनुभूति शब्दाभिव्यक्ति का विषय नही। कबीर ने इसे 'गूगे के गुड' की उपमा देते हुए इस तथ्य को इन शब्दो मे अभिव्यक्त किया है—

आतम अनुभव ज्ञान की जो कोई पूछै बात ।
सो गूगा गुड खाइ के कहै कौन मुख स्वाद ।।

क० ग्रन्थावली, पृ० ८

कवि-शिरोमणि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी इसी सत्य को इन शब्दो मे वाणी दी है—"कभी-कभी मनुष्य के शब्द भाषा न रह कर गूगे की वाचिक मुद्राएँ मात्र बन जाते हैं। उनसे उस मनुष्य के अन्तर्विचारो का संकेत मिल सकता है, पर समुचित अभिव्यक्ति नही होती। उसके विचार जितने ही सजीव और सप्राण होगे, उतनी ही अधिक आवश्यकता इस बात की होगी कि उसके शब्दो का विवेचन करते समय उसके जीवन पर बराबर दृष्टि रखी जाए जो उसके शब्दो के स्पष्टीकरण के लिए शब्दकोश का सहारा लेते है, वे नाम मात्र को ही घर तक पहुच पाते है, क्योकि बाह्य प्राचीरें उनका मार्ग निरुद्ध कर देती हैं और अन्तर्भवन मे प्रवेश करने का उन्हे कोई मार्ग ही नही मिलता। यही कारण है कि जब हम अपने महान् ऋषियो के उपदेशो को जीवन मे चरितार्थ करने के स्थान पर शब्दार्थ द्वारा उन्हे समझाने का प्रयत्न करते हैं तो नाना प्रकार के मतभेद उठ खडे होते है।" जर्मनी के महान् रहस्यवादी दार्शनिक एकहार्ट ईश्वरानुभूति (रहस्यवाद) की अनिवर्चनीयता की चर्चा के पश्चात् अपने मत के समर्थन मे सन्त आगस्टाइन के प्रस्तुत शब्दो को प्रमाण के रूप मे उद्धृत करते हुए कहते हैं—"ईश्वर के सम्बन्ध मे किसी व्यक्ति का सर्वोत्तम कथन यही हो सकता है कि वह अपने अन्त विवेक और बुद्धिमत्ता के बल पर उसके सम्बन्ध मे मौन धारण कर ले।" यहा यह उल्लेखनीय है कि विवेकजन्य मौन और अज्ञानप्रसूत मौन मे एक स्पष्ट और गहरा अन्तर है।

रहस्यवाद की विभिन्न परिभाषाए

रहस्यानुभूति के अनिर्वचनीय होने पर भी कतिपय मनीषियो ने उसके निर्वचन का प्रयास किया है। वस्तुतः अनन्त-असीम परमसत्ता के दृश्य जगत् मे अनन्त रूप दिखाई देते है अत. विभिन्न रहस्यवादियो ने अथवा एक ही रहस्यवादी ने विभिन्न अवसरो पर उस सीमातीत परमसत्ता की अनुभूति को अपने स्वभाव और परिस्थितियों के अनुसार भिन्न-भिन्न रूप मे देखने के कारण उसे विभिन्न प्रकार से अभिव्यक्ति दी है। इस प्रकार 'रहस्यवाद' शब्द की विभिन्न विद्वानो ने भिन्न-भिन्न प्रकार से व्याख्या-परिभाषा प्रस्तुत की है। **एवलिन अण्डर हिल** के अनुसार—"रहस्यवाद भगवत सत्ता के साथ एकता स्थापित करने की कला है। रहस्यवादी वह व्यक्ति है जिसने किसी-न-किसी सीमा तक इस एकता को प्राप्त कर लिया है, अथवा जो उसमे विश्वास करता है और जिस ने इस एकता-सिद्धि को ही अपना चरम लक्ष्य बना लिया है।" प्रो० आर० डी० रानाडे के शब्दो मे—"रहस्यवाद का अभिप्राय ईश्वरैक्य सुख का मौन उपभोग करना है।" **डा० रामकुमार वर्मा** के अनुसार—"रहस्यवाद आत्मा की उस अन्तर्हित प्रवृत्ति का प्रकाशन है जिसमे वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना

शान्त और निश्छल सम्बन्ध जोड़ना चाहती है और यह सम्बन्ध यहा तक बढ जाता है कि दोनो मे कुछ भी अन्तर नही रह जाता।" डा० सरनामसिंह शर्मा के शब्दो मे—"विशेष अनुभूति की प्रतीकाश्रित अभिव्यक्ति साहित्य मे 'रहस्यवाद' नाम पाती है। रहस्यवाद कोई दार्शनिक वाद न होकर वस्तुतः साहित्यिक वाद है जिसका लक्षण प्रेमाश्रयी अद्वैतानुभूति और प्रतीकाश्रयी सांकेतिक अभिव्यक्ति है।"

डाक्टर गोविन्द त्रिगुणायत ने पूर्ववर्ती विद्वानो की परिभाषाओ को अपूर्ण मानते हुए अपनी ओर से पूर्ण परिभाषा इन शब्दो मे प्रस्तुत की है—"रहस्यवाद उस रहस्यमय अध्यात्म पुरुष के विराट् के सौन्दर्य से मुग्धभूत जीवात्मा की उस भावमयी साधना का सरस प्रकाशन है जिसमे वह अपने प्रियतम से सुहाग प्राप्त करने के लिए तडप उठती है और यह तडप इस सीमा तक बढ जाती है कि उस पीडा मे उसके अस्तित्व का विलय हो जाता है और नीर-छीर वा शराब-पानी की तरह दोनो मिलकर एक हो जाते है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं मे से किसी भी एक् परिभाषा मे जीवन, सौन्दर्य, सत्य, अथवा आनन्द के समस्त प्रयोजनो को गुम्फित कर देना सम्भव नही हुआ। वस्तुत. किसी से भी यह आशा करना उचित नही कि भगवद् सत्तानुभूति की सम्पूर्ण उपपत्तियो को एक व्याख्या या परिभाषा की सीमा मे बांध दे, जब कि वह सत्ता अपने-आपको उपर्युक्त सभी माध्यमो से अभिव्यक्त करती है और फिर भी उनसे अतीत है।

रहस्यवाद की आदर्श परिभाषा और उसका आधार

अनादिकाल से मानव अपने-आपमे एक अपूर्णता का अनुभव करता रहा है और इस अपूणता के अनुभव ने ही उसके अन्तर्मन मे एक स्थायी उद्विग्नता को जन्म दिया है जिसका परिणाम विश्व की समस्त विधाओ, कलाओ, दर्शनो तथा ज्ञानविज्ञानों का जन्म और विकास है। मानव विश्व मे व्याप्त अगणित विषमताओ के अन्तस्तल मे किसी सामान्य सिद्धान्त तथा नियामक सत्ता के प्रति जिज्ञासु रहा है जिससे उसकी अपूर्णता पूर्णता मे बदल सके। कवीन्द्र रवीन्द्र के शब्दो मे—"द्वैतवाद के अस्तित्व से हमारे मन मे तुरन्त ही एक प्रश्न उठता है और हम अद्वैत मे उसका समाधान खोजते हैं। अन्ततः जब हमे इन दोनो के सम्बन्ध का ज्ञान होता है और हम जान जाते है कि तत्त्वत. वे दोनो एक ही है, तब हम अनुभव करते है कि हम ने सत्य को पा लिया है और तब हमारे मुख से इस महान विस्मयकारी विरोधाभास का उच्चार होता है कि—एक ही अनेक दृष्टिगोचर होता है, कि जो कुछ दृष्टिगोचर होता है वह सत्य के बिलकुल विपरीत है और फिर भी अविच्छेद्य रूप से सम्बद्ध है।" मानव-जाति का इतिहास इसी लक्ष्य को समक्ष रखकर किए गए चिन्तन, मनन, अन्वेषण एवं गहन अध्ययन के वर्णनो से भरा पडा है। अतः हम **रहस्यवाद की व्याख्या** इस प्रकार से भी कर सकते हैं कि **रहस्यवाद भौतिक जगत और इसकी परिस्थितियों की विषमताओं के मूल में विद्यमान एकात्मकता की अनुभूति है जिसके कारण पूर्णता का**

अनुभव और अन्ततः मुक्ति की उपलब्धि होती है।

रहस्यवाद के विभिन्न रूप

इस एक ही लक्ष्य के अनेक पथ हैं। साधना-पथ, साधक के स्वभाव और परिस्थितियो की विभिन्नता के अनुसार उस अनुभूति की व्यजना मे भी अंतर आ जाता है। इस प्रकार रहस्यवाद मे कई सूक्ष्म अन्तर हो जाते है। **मनस्वी-रहस्यवादी** मनन द्वारा उस अखण्ड सत्ता की अनुभूति का प्रयत्न करता है, तो **भक्त रहस्यवादी** भक्ति द्वारा। **योगी रहस्यवादी** सर्वप्रथम उस परमसत्ता का अन्तर मे साक्षात्कार करता है और तब इस निष्कर्ष पर पहुचता है कि बाह्य जगत् उस अखण्ड एव परम सत्ता की ही छाया है, जो उसके तथा अन्य सभी के अन्तर में विद्यमान है। **प्रकृति रहस्यवादी** अपने अन्तर मे तथा प्रकृति के समस्त व्यापारो मे समान रूप से प्रवाहित होने वाली एक ही जीवनधारा का पता लगाने का प्रयत्न करता है। इसी प्रकार के अन्य कर्म-रूप भी सम्भव है। विद्वानो ने अपने ढंग से रसस्यवाद के निम्नोक्त रूप और प्रकार स्वीकार किए हैं—

(१) भावात्मक अथवा प्रेमप्रधान रहस्यवाद
(२) प्रकृतिमूलक रहस्यवाद
(३) आध्यात्मिक रहस्यवाद
(४) यौगिक रहस्यवाद
(५) अभिव्यक्तिमूलक रहस्यवाद
(६) जादू-टोनापरक रहस्यवाद।

वस्तुत. विचारपूर्वक देखने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि रहस्यवाद की प्रतिक्रियाएं दो प्रकार से सम्भव है—एक अन्तर्मुखी और दूसरी बहिर्मुखी। अन्तर्मुखी प्रक्रिया में साधक अपने हृदयस्थ प्रियतम की खोज करता है और बहिर्मुखी साधना मे वह सारे विश्व मे अपने प्रियतम के दर्शन करता है। अन्तर्मुखी रहस्यवाद शुद्ध भावमूलक और योगमूलक दोनो प्रकार का होता है, बहिर्मुखी रहस्यवाद के अन्तर्गत प्रकृतिमूलक, अभिव्यक्तिमूलक आदि भेद आते हैं।

रहस्यवाद बौद्धिक प्रक्रिया नही

रहस्यवादियो के पथ विभिन्न होते हुए भी इस बात पर सभी रहस्यवादी एकमत है कि केवल शास्त्रीय तर्कजाल से मनुष्य परमसत्ता की अनुभूति नही कर सकता, मानव-मस्तिष्क भौतिक परिस्थितियो की क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं का परिणाम है। अत वह साधक को परम सत्य तक—जो अपने-आपको इन भौतिक परिस्थितियो के माध्यम से व्यक्त करते हुए भी इनकी सीमाओं से अतीत है—नही पहुचा सकता। अभीष्ट उद्देश्य तक पहुंचने का एक ही मार्ग है—अन्तर्ज्ञान अर्थात् आत्मा द्वारा परम सत्य की प्रत्यक्षानुभूति। अन्तर्ज्ञान की सत्ता बुद्धिसम्भव नही। प्रो० रानाडे के अनुसार—"अन्तर्ज्ञान बुद्धि, भावना अथवा इच्छाशक्ति का विरोध न करके इन सबको भेद कर

इनके पीछे स्थित रहता है।···रहस्यवादी साधना मे बुद्धि, इच्छाशक्ति और भावना सभी आवश्यक है, बस इन्हे अन्तर्ज्ञान का सहारा मिलना चाहिए।"

रहस्यवादी साधक को ब्रह्म, जीव और जगत् के स्वरूप और उनके पारस्परिक सम्बन्ध के विषय मे तर्क एव वादविवाद द्वारा अपने-आपको चिन्तित करने की आवश्यकता नही। वह तो एक ही तत्त्व मे विश्वास करता है और वह है अनुभूति की स्वतन्त्र शक्ति। स्वानुभूतिजन्य ज्ञानप्राप्ति के उपरान्त उसे अपने पक्ष के समर्थन मे किसी अन्य की उक्तियो को प्रमाणस्वरूप प्रस्तुत करने की आवश्यकता नही रहती। वस्तुतः उसके कथन मे अखण्ड और अविचल आत्मविश्वास के कारण ऐसी असाधारण शक्ति आ जाती है कि श्रोता उसे सत्य मानने के लिए विवश हो जाता है। रहस्यवादी अनुभूति की इस स्वतन्त्र शक्ति के सम्बन्ध मे 'इन्ट्यूशन आफ गाड' मे टी० एस० वाट का कथन है—"रहस्यवादी अपनी साधना मे ऐसी राहो से गुजरता है, जहा से कोई नही गुजरता, उसे वह चीज प्राप्त होती है, जो केवल परम्परा-पालन से नही मिल सकती—तीव्र और प्रत्यक्ष अन्तर्दृष्टि के एक क्षण मे ईश्वर की सानुराग स्वानुभूति।"

कतिपय रहस्यवादी किसी महात्मा अथवा पन्थ द्वारा उपदिष्ट अथवा निर्दिष्ट किसी निश्चित पद्धति का स्वय तो अनुकरण करते है कभी-कभी दूसरो को भी निश्चित मार्ग के अनुसरण का निर्देश कर देते हैं। परन्तु वस्तुतः ये साधन-पद्धतिया स्वयं में साध्य न होकर आत्मा को अहंभाव से मुक्त कराने के साधन मात्र है। रहस्यवादी सस्कार अथवा साधना को आत्मा का बन्धन नही बनने देता, अतः वह उनके सम्बन्ध मे कट्टर पन्थी नही होता। रहस्यवादी के लिए तपस्या के विधायक-पक्ष—आत्मदमन—की अपेक्षा निषेधात्मक पक्ष—ऐन्द्रिक वासनाजन्य सुख का निषेध—का अधिक महत्त्व है।

यह उल्लेखनीय है कि विभिन्न कालो मे निर्दिष्ट विभिन्न साधना-पथो मे मूलतः समानता है। सभी की मान्यता है कि समस्त सासारिक एव आध्यात्मिक आकाक्षा-धाराओं को एक समन्वित शक्तिशाली एवं चरम लक्ष्योन्मुख धारा का रूप दे देना चाहिए। रहस्यवादी इस लक्ष्य की सिद्धि—ब्रह्म के प्रति-पूर्ण एव निःस्वार्थ आत्मसमर्पण तथा श्रद्धाजनित प्रेम द्वारा करता है।

इस्लाम धर्म और रहस्यवाद

इस्लाम धर्म में रहस्यवादी साधना का सूत्र स्वय हजरत मुहम्मद के जीवन मे मिलता है। उन्होने तापसी साधनो, रात्रि-जागरण, व्रत-प्रार्थनाओ आदि की उपयोगिता पर बल दिया है। इन साधनो का प्रयोग वे स्वयं भी करते थे। किन्तु एक आन्दोलन के रूप मे इस्लाम के अन्तर्गत रहस्यवाद का सूत्रपात सूफीवाद मे हुआ। प्रारम्भिक सूफी इस्लाम से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित थे। आगे चल कर दूसरी शती हिजरी में बसिरा की महिला सन्त रबिआ ने रहस्यवादी प्रेम का सिद्धान्त प्रचारित

किया । तदनन्तर ईश्वर के प्रति भक्ति और उससे मिलन के रहस्यो की अभिव्यक्ति लौकिक प्रमाण और सुरापान की शब्दावली मे होने लगी । तीसरी शती हिजरी मे इस्लाम मे ईश्वरवाद के विरोधी सर्वेश्वरवादी सिद्धान्त का विकास हुआ । आगे चल कर सीरिया मे अबू सुलेमान अल दारानी ने ज्ञान और आनन्द के माध्यम से रहस्यानुभूति के सिद्धान्त की स्थापना की । ईरान के अबू वाजिद (८७४ ई०) ने सर्वेश्वरवाद स्वीकार करके फना का सिद्धान्त प्रतिपादित किया । तीसरी शती ईसवी तक सूफी सम्प्रदाय सुसंघटित हो गया । साधना के पथ-प्रदर्शक ग्रन्थो की रचना हुई । साधना मे अनेक सीढिया पार करनी होती है—प्रायश्चित्त, परिवर्तन, त्याग, दरिद्रता, धैर्य, ईश्वर मे विश्वास तथा ईश्वरेच्छा मे सन्तोष आदि । इनके उपरान्त आध्यात्मिक अनुभूति की विभिन्न दशाए—भय, आशा, प्रेम, ध्यान और साक्षात्कार आदि आती है । सूफी-साधना मे दरिद्रता, तप और पवित्रतायुक्त जीवन आदि के लिए सद्‌गुरु की कृपा अनिवार्य रूप से स्वीकृत है । गजाली, जलालुद्दीन रूमी, हाफिज, उमर खैयाम, निजामी, सादी और जामी प्रसिद्ध ईरानी सूफी कवि हैं ।

जब सूफी कवि भारतवर्ष मे आए तो उनका सम्पर्क भारतीय वेदान्तियों से हुआ । वेदान्तियो के अद्वैतवाद ने सूफियो को प्रभावित किया और दोनो धर्मों के समन्वित रूप से एक सामान्य भक्ति-मार्ग का उदय हुआ । इस सामान्य भक्ति मार्ग के प्रचारक सर्वप्रथम कबीर थे । उनके रहस्यवाद मे साधना की प्रमुखता के कारण अपेक्षित सरसता न आ सकी । जायसी ने साधनात्मक रहस्यवाद के स्थान पर भावनात्मक रहस्यवाद को अपना कर सत्य की अत्यन्त सरस अभिव्यक्ति की और इस प्रकार साहित्य-जगत् मे अपना अद्वितीय स्थान बना लिया । आचार्य शुक्ल ने जायसी के रहस्यवाद की रमणीयता के सम्बन्ध मे उचित ही लिखा है—"हिन्दी के कवियों में यदि कही रमणीय और सुन्दर अद्वैती रहस्यवाद है तो जायसी मे, जिनकी भावुकता बहुत ही उच्च कोटि की है ।" कहने की आवश्यकता नही कि भारतवर्ष के सूफी-कवियो मे ही नही, हिन्दी के समग्र रहस्यवादी कवियो में जायसी का स्थान अप्रतिम है ।

रहस्यवाद के तत्त्व

रहस्यवाद के धर्म-साधना से सम्बन्ध की चर्चा मे हम यह कह चुके हैं कि परमतत्त्व, दिव्यशक्ति अथवा परोक्षसत्ता की प्रत्यक्षानुभूति सभी धर्मो का मूलाधार है और यही रहस्यवाद का प्राणतत्त्व है । अबुल हसन अलनूरी ने "ए लिटरेरी हिस्ट्री आफ दा अरब्स" मे ईश्वर-प्रेम तथा जगत-वैराग्य को सूफी अथवा रहस्य-साधना माना है । 'मिस्टिसिज्म इन ईस्ट एण्ड वेस्ट' के लेखक रूडोल्फ ओटो महोदय ने 'आस्तिकता' को रहस्य भावना की आधारभूमि माना है । अल गजाली "प्रतिपल परम प्रियतम मे रमने को" तथा शिब्बली साहब 'वैराग्य को' रहस्यवाद की आधार-भूमि मानते हैं । इन विद्वानो की मान्यता में किसी प्रकार का मतभेद नही, वस्तुतः एक बात

को भिन्न ढंग से प्रस्तुती है। वास्तव मे संसार से विरक्ति के बिना साधक की ईश्वर मे अनुरक्ति नही हो सकती और उस अनुरक्ति के लिए उसकी सत्ता और महत्ता में दृढ विश्वास एवं अटल निश्चय अपेक्षित है। संसार से विरक्ति और ईश्वर में अनुरक्ति के लिए अर्थात् साध्य मे सिद्धि के लिए पथप्रदर्शक गुरु की आवश्यकता और महत्ता सर्वसम्मत तत्त्व है। इस प्रकार आस्तिकता, गुरु, प्रेम तथा वैराग्य रहस्यवाद के प्रधान तत्त्व हैं। गुरु की कृपा से साधक परब्रह्म का ज्ञान प्राप्त कर संसार से विरक्त हो जाता है और गुरु-प्रेरणा से ब्रह्म मे अनुरक्त होकर उसकी प्राप्ति मे संलग्न होता है। गुरु की ही कृपा और सहायता से पथ के विकट विघ्नों को पार करके अन्त मे लक्ष्य-प्राप्ति मे सफल हो जाता है—यही सूफी मार्ग है और यही रहस्य दर्शन है। मलिक मुहम्मद जायसी ने इन्ही तत्त्वो—**आस्तिकता** (ईश्वर की सत्ता मे विश्वास), **गुरु**, **पथ की बाधाए**, **साधना के विविध रूप**, प्रेम और **लक्ष्य-प्राप्ति** का अपने काव्य मे सफल चित्रण किया है और इस प्रकार जायसी एक उत्कृष्ट रहस्यवादी कवि के रूप मे हमारे सामने आते है।

सूफी कवियों मे रहस्यानुभूति

यह पहले कहा जा चुका है कि सूफियो ने भावनात्मक रहस्यवाद को अपनाते हुए घट के भीतर ब्रह्म को देखने के बदले सृष्टि के कण-कण मे उसकी सत्ता व्याप्त मानते हुए बाह्य जगत् में उसे देखने का समर्थन किया है। उनके अनुसार मूलतत्त्व परमात्मा के प्रति साधक का आकर्षण उसी प्रकार होता है, जिस प्रकार लोक मे एक प्रेमी का अपने प्रिय पात्र के प्रति होता है। जिस प्रकार स्वप्न-दर्शन, चित्र-दर्शन, गुण-श्रवण अथवा प्रत्यक्ष दर्शन द्वारा प्रेमी अपने प्रेम पात्र के प्रति आकृष्ट होकर उसे प्राप्त करने के लिए अधीर एवं उत्सुक हो उठता है, उसी प्रकार एक साधक भी अपने सद्गुरु अथवा पीर के द्वारा परमात्मा की झाकी प्राप्त कर उसके विषय मे चिन्तन करता हुआ उसकी प्राप्ति के लिए अधीर हो उठता है। वह अपने प्रिय बन्धुओ, मित्रो तथा पारिवारिक जनों का परित्याग करके उसी की धुन मे बाजी लगाता है। अपनी अभीष्ट-प्राप्ति के लिए कृच्छ्र से कृच्छ्र साधनो में प्रवृत्त हो जाता है। संसार के प्रति पूर्ण विरक्त हो जाता है और अन्त मे उसे पाकर हर्षोत्फुल्ल हो जाता है। यहा उल्लेखनीय यह है कि चाहने पर भी वह दूसरो को अपनी अनुभूति से परिचित कराने मे पूर्णरूप से सफल नही हो पाता। अतः सूफी कवि उसके लिए किसी न किसी प्रेम-कहानी का आश्रय लेते है। इस कहानी मे लोक-तत्त्व के माध्यम से आध्यात्मिक सत्य की अभिव्यंजना की जाती है।

जायसी ने भी सूफी कवियो की इसी परम्परा का पालन करते हुए पद्मावत मे रत्नसेन-पद्मावती के माध्यम से साधक-साध्य के मिलन आदि का वर्णन किया है। पद्मावत मे रत्नसेन और पद्मावती आत्मा और परमात्मा के प्रतीक रूप मे प्रस्तुत हुए हैं।

जायसी के काव्य में रहस्यवादी तत्त्व

(१) **आस्तिकता (ब्रह्म-सम्बन्धी धारणा)**—अनादि, अनन्त परमात्मा की शाश्वत स्थिति मे विश्वास करना ही आस्तिकता है और जायसी इस रूप मे कट्टर आस्तिक सन्त थे। उनकी ईश्वर-सम्बन्धी धारणा इस्लामी एकेश्वरवाद पर आधारित होने पर भी वेदान्ती अद्वैतवाद के पुट को लिए हुए है। जायसी के पद्मावत के अनु-सार ईश्वर एक है और वह संसार का स्रष्टा तथा जीवनदाता है—

सुमिरौ आदि एक करतारू, जेहि जीउ दीन्ह कीन्ह ससारू।

वह सृष्टिकर्त्ता-भर्त्ता ईश्वर अलख और अरूप है। किसी मे भी उसके वर्णन करने की क्षमता नही, वह सबमे और सब उसमे विद्यमान हैं। वह रूप, रग-रहित ईश्वर प्रत्यक्ष रूप से हो अथवा परोक्ष रूप से, सर्वत्र जल-थल-आकाश, सृष्टि के कण-कण में व्याप्त है परन्तु केवल पुण्यात्मा ही उसकी सत्ता को पहचान पाते है, पापी लोग नही।

अलख अरूप अवरन सो कर्ता, वह सब सो सब ओहि सो बर्ता॥
परगट गुपुत सो सरब बिआपी, धरमी चीन्ह न चीन्हे पापी॥

'अखरावट' में ईश्वर के सम्बन्ध मे जायसी का कथन है—वह ईश्वर काल की समस्त सीमाओ से अतीत है और संसार का यह सारा खेल उसी का रचा हुआ है। जगत् का कण-कण जिसकी सत्ता से मुखर है, उस ईश्वर की लीलाएं अपरम्पार है—

आवहुं ते जो आदि गोसाईं। जेहि सब खेल रचा दुनियाई॥
जस खेलेसि तस जाइ न कहा। चौदह भवन पूरि सब रहा॥

उस ईश्वर द्वारा संसार-सृजन से पूर्व इस ससार मे न नाम की कोई सत्ता थी और न स्थान की और न ही किसी प्रकार के शब्द की। न उस समय पाप था न पुण्य, एक-मात्र आत्मलीन मुहम्मद की ही उस समय सत्ता थी। वह अलख शक्ति एकाकी थी—न उसके कोई गुण थे, न उपाधि। तब न सूर्य थे, न चन्द्र, न दिन थे न राते। वस्तुतः वह परमज्योति स्वर, व्यजन, शब्द, आकार आदि सबके ही परे है, तब फिर इनकी (स्वर, व्यंजन आदि) सहायता के बिना कोई भी इस अकथ कथा को कह ही कैसे सकता है ?

हुता जो सुन्न-मसुन्न नाव ठाव न सुर सबद।
तहा पाप नहिं पुन्न मुहमद आपहु आप मंह॥
आप अलख पहिले हुत जहा। नाव न ठाँव न मूरति तहा॥
पूर पुरान पाप नहिं पुन्नू। गुपुत ते गुपुत सुन्न तें सुन्नू॥
अलख अकेल सबद नहिं भाती। सूरज चाद दिवस नहिं राती॥
आखर सुर नहिं बोल अकारा। अरूप कथा का कहौ विचारा॥

जायसी के 'पद्मावत' में प्रतिपादित धारणा के अनुसार समग्र दृश्यमान संसार मे एक-

मात्र यही शाश्वत सत्य है, उसके सिवाय और सब 'नही' ही है—

"सबै नास्ति वह अहथिर, ऐस साज जेहि केर।"

वह सर्वव्यापक निराकार होने पर भी साकार जैसे आचरण करता है। उसके जीव नही किन्तु फिर भी वह रहता है। उसके हाथ नही, पुनरपि वह चराचर जगत् का निर्माता है। वह बिना जिह्वा के बोलता है और बिना कानो के सुनता है। हृदय न रखते हुए वह सत्-असत् के विवेक मे पूर्ण समर्थ है। उसके नेत्र नही परन्तु फिर भी उससे छिपा हुआ कुछ नही। वह सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, सर्वान्तर्यामी, सर्वशक्तिशाली जगदीश्वर अन्ध-मूर्खों से तो कोसो दूर है परन्तु दृष्टि वालो के अत्यन्त ही निकट है :

जो उ नाहि पै जियै गुसाई। कर नाहि पै करै सबाई॥
जीभ नाहिं पै सब किछु बोला। तन नाही सब ठाहर डोला॥
स्रवन नाँहि पै सब किछु सुना। हिया नाँही पै सब किछु गुना॥
नयन नाँहि पै सब किछु देखा। कौन भाँति अस जाय विसेखा॥
दीटिवत कहे नीयरे, अन्ध मूरखहिं दूर॥

श्वेताश्वतरोपनिषद् के अधोलिखित मन्त्र से जायसी के उपर्युक्त कथन की तुलना कीजिए—

अपाणि पादो जवनो ग्रहीता
पश्चत्य चक्षुः स श्रृणोत्यकर्णः।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता
तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम्॥

इसी तथ्य को गोस्वामी तुलसीदास ने 'रामचरिमानस' के बालकण्ड मे इस प्रकार से वाणी दी है

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करम करइ विधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहइ घ्रान बिनु वास असेषा॥
असि सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी॥

सृष्टि की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे जायसी का मत है कि आदिकर्त्ता ने आदेश दिया और शून्य से स्थूल का उद्भव प्रारम्भ हो गया :

आदि किएउ आदेस सुन्नहिं ते अस्थूल भए।
आप करै सब भेस मुहम्मद चादर ओट जेउं॥

उसने संसार के समस्त पदार्थो की रचना इस प्रकार से पूर्णरूप मे की है कि उसमें कुछ भी सशोधन करने योग्य नही रहे। उसकी शक्ति अपार, अनन्त है। उसने एक पल-भर मे—पलक झपकाने से भी कम समय मे—सम्पूर्ण जगत् का निर्माण कर दिया—

निमिख न लाग कर ओहि सबद कीन्ह पल एक।
गगन अन्तरिख राखा बाज खंभ बिनु टेक॥

जायसी के अनुसार ईश्वर ही समस्त अच्छाइयो और बुराइयो का आदिस्रोत है, क्योकि उसने एक ओर गर्व के मूल द्रव्य की उत्पत्ति की है और दूसरी ओर कभी शान्त न होने वाली तृष्णा को जन्म दिया है। सबके लिए परम अभिलषणीय जीवन तथा सबके लिए अपरिहार्य दुर्दम्य मृत्यु का सर्जन भी उस ईश्वर ने किया है। उसने एक ओर विविध सुखोपभोगो की और दूसरी ओर नाना दु ख-द्वन्द्वो, सन्देहो और चिन्ताओ की सृष्टि की है। उसने ही सम्पत्ति और विपत्ति, समृद्धि और दरिद्रता, सामर्थ्य तथा अभावग्रस्तता बनाई है—

> कीन्हेसि दरब गरब जेहिं होई। कीन्हेसि लोभ अघाइ न कोई।
> कीन्हेसि जिअन सदा सब चाहा। कीन्हेसि मीचु न कोई राहा॥
> कीन्हेसि सुख औ कोउ अनदू। कीन्हेसि दुख चिंता औ दंदू॥
> कीन्हेसि कोइ भिखारी कोइ धनी। कीन्हेसि संपति विपति पुनि घनी॥

जायसी के मत मे ईश्वर के साधन असख्य, अनन्त और अपरिमित हैं। वह एकमात्र सारे ससार का स्वामी है, वह नित्य निरन्तर सभी को देता है। पुनरपि उसका अक्षय भण्डार कभी कम नही पडता। कुजर से कीरी तक सभी जीवधारियों की वह ईश्वर चिन्ता करता है और उन्हे भोजन प्रदान करता है। उसकी दृष्टि सब पर ही रहती है। वह मित्र अथवा शत्रु किसी को भी अपनी कृपा से वंचित नहीं रखता। युगो से वह समग्र विश्व को दोनो हाथो से दे रहा है, पुनरपि उसका भंडार चिरसम्पन्न है। सत्य यह है कि विश्व मे दानी लोगो के पास देय पदार्थ सब उसी ईश्वर के ही दिए हुए हैं—

> धनपति उहइ जेहिक ससारू। सबहिं देइ नित घट न भंडारू॥
> जावंत जगति हस्ति औ चाटा। सब कहं भुगुति रात-दिन बांटा॥
> ताकरि दिस्ट सबहिं उपराही। मित्र शत्रु कोइ बिसरइ नाहीं॥
> जुग जुग देत घटा नहिं उभै हाथ तस कीन्ह।
> अउर जो देहिं जगत महं सो सब ताकर दीन्ह॥

ईश्वर की अपरिमित शक्ति के सम्बन्ध मे जायसी का [illegible] है—

> जौ ओइँ चहा सो कीन्हेसि करइ जो चाहइ कीन्ह।
> बरजन-हार न कोई सबदु चहइँ जिअ दीन्ह॥

स्पष्ट है कि जायसी की मान्यता के अनुसार ईश्वर निरपेक्ष है और जगत् की सृष्टि के लिए वह किसी भी अन्य शक्ति अथवा पदार्थ पर निर्भर नही रहता। उसकी मौज ही सृष्टि के रूप में अभिव्यक्त होती है, उसकी इच्छा ही नियम हैं; वह सर्वशक्तिमान् अपनी संकल्प-शक्ति द्वारा अपने-आपमे से अथवा शून्य में से ही सब कुछ रच देता हैं। इस प्रकार जायसी ने इस्लाम की ईश्वर-सम्बन्धी धारणा को वेदान्ती धारणा के निकट लाने में सफल चेष्टा की है।

ईश्वर के प्रतीक के रूप में पद्मावती

'पद्मावत' महाकाव्य मे जायसी ने पद्मावती को ईश्वर के प्रतीक के रूप मे चित्रित किया है। यहा यह उल्लेखनीय है कि भारतीय मनीषा ईश्वर को पति के रूप मे और जीवात्मा को पत्नी के रूप मे स्वीकार करती है। स्त्री का पति की प्राप्ति के लिए साधनारत होना ही भारतीय आदर्श है—

"जनम कोटि लग रगर हमारी। बरौ सम्भु न तौ रहौ कुआरी।"

यह संकल्प पार्वती करती है, शकर ऐसा नही कहते। जायसी ने पद्मावती को ईश्वर के प्रतीक रूप मे ग्रहण करते हुए साध्य-साधक (ब्रह्म-जीव) के रूपक को उलट कर रख दिया है; साध्य को साधक और साधक को साध्य बना दिया है। इसी रूप मे रत्नसेन (प्रेमी) को पद्मावती (प्रेमिका) की खोज मे यत्नशील एव पूर्णकाम दिखाया गया है। इस प्रतीक के मूल में सूफी-मान्यता का प्रभाव स्पष्ट है।

जायसी ने पद्मावती का चित्रण विशुद्ध रूप से ईश्वर के प्रतीक के रूप मे किया है। उसके जन्म के सम्बन्ध मे कवि का कहना है कि दस मास पूरे होने पर पद्मावती के जन्म लेने का शुभ मुहूर्त आ गया और उसने अवतार धारण किया।

"भए दस मास पूरि भै घरी। पदुमावति कन्या औतरी।"

पद्मावती के रूप-सौंदर्य की प्रशंसा में कवि का कथन है कि वह इतनी उज्ज्वल थी कि मानो सूर्य की किरणो मे से उसे निकाला गया हो। उसके जन्म लेते ही रात्रि मे भी दिन जैसा प्रकाश हो गया और सारे कैलाश पर उजाला हो गया। वह इतने अधिक रूप की मूर्ति थी कि पूर्णिमा का चन्द्र भी उसके रूप के सामने क्षीण होकर घटने लगा।

जानहु सुरुज किरिन हुति काढी। सूरज करा घाटि वह बाढी॥
भा निसि माँह दिन क परगासू। सब उजियार भएउ कविलासू॥
अतें रूप मूरति परगटी। पुनिउं ससि सो खीन होई घटी॥

पद्मावती के रूप से मुग्ध होकर सुर-नर सभी उसके आगे अपना मस्तक झुकाते हैं। योगी, यती, सन्यासी, महात्मा आदि सभी लोग उसे पाने की आशा से तपसाधन करते हैं—

। सुर नर देखि माथ भुइ धरे॥
जग कोइ दिस्टि न आवै आछहिं नैन अकास।
जोगि जति सन्यासी तप साधहिं तेहि आस॥

पद्मावती के नखशिख-वर्णन-प्रसंग मे उसकी भौहो की प्रशंसा मे कवि का कथन है— पद्मावती की काली-काली भौंहे तने हुए धनुष की भाँति थी। वह जिस तरफ देख लेती है, वह बाण के समान प्रतीत होती हैं। यही धनुष कृष्ण और राम ने भी कंस और रावण को मारने के लिए धारण किया था। इसी धनुष के माध्यम से अर्जुन ने

द्रौपदी के स्वयंवर के अवसर पर मत्स्यवेध किया था और इसी के द्वारा परशुराम ने सहस्रबाहु को मारा था—

> भौंहे स्याम धनुक जनु ताना। · · ··· ··· ··· ॥
> उहै धनुक किरसुन पह अहा। उहै धनुक राघौ कर गहा॥
> उहै धनुक रावन सघारा। उहै धनुक कंसासुर मारा॥
> उहै धनुक वेधा हुत राहू। मारा ओही सहस्सर बाहू॥

पद्मावती के नेत्रों के सौन्दर्य की प्रशंसा मे जायसी का कथन है—पवन झकोरे आते है, तरगें उठती है, स्वर्ग से टकराती है और पुन पृथ्वी पर लौट आती हैं, उसके नयन-सागर के चंचल होते ही सम्पूर्ण सृष्टि कम्पायमान हो उठती है। ऐसा प्रतीत होता है कि मानो समूचा जगत् (बडे-बडे स्थिर रहने वाले पर्वत भी) पलभर मे उलट जाएंगे—

> पवन झकोरहिं देंहि हलोरा। सरग लाइ भुइ लाइ लहोरा॥
> जग डोले डोलत नैनाहा। उलटि अडार चाह पल माहा॥

ऐसा कौन है जो पद्मावती की बरौनियों के बाणों से न मारा गया हो ? सारे संसार को ही तो उन्होंने बेध रखा है! आकाश मे जो असंख्य चमकीले तारे है, वे सब उसके बाणो से आहत हो चुके हैं। रणागण मे युद्धोन्मुख वीरो और वनस्थ वृक्षावलियो तक को इन बरौनियो ने बेध रखा है। रोमों के रूप मे प्रत्येक मनुष्य को और पंखो के रूप मे प्रत्येक पक्षी को इन अचूक बाणो ने घायल किया है—

> उन बानन्ह अस को को न मारा। बेंधि रहा सगरौ संसारा॥
> गगन नखत जस जाहि न गने। हैं सब बान ओहि के हने॥
> रोवे रोवें मानुस तन ठाढ़े। सोतहि सोत बेधि तन काढ़े॥

पद्मावती के दान्तो की सुषमा के सम्बन्ध मे जायसी कहते हैं—पद्मावती के दान्तो की शोभा हीरे की शोभा से कही अधिक है। हीरे की शोभा तो इस पद्मावती के दान्तों की शोभा का ही प्रतिबिम्ब है। सूर्य, चन्द्र, नक्षत्रो आदि को पद्मावती के दान्तों की ज्योति से ही ज्योति प्राप्त हुई है। वस्तुतः जहा-जहां जब-जब सहजभाव से वह मुस्कराई, वहा-वहा चारो ओर ज्योति छिटक कर बिखर गई और सब ओर प्रतिभासित हो रही है—

> वह जो जोति हीरा उपराही। हीरा दीपहिं तो तेहि परछाही॥
> जेहि दिन दसन जोति निरमई। बहु तन्ह जोति जोति ओहि भई॥
> रवि ससि नखत दीन्ह ओहि जोति। रतन पदारथ मानिक मोती॥
> जहं जहं विहसि सुभावहि हंसी। तहं तहं छिटकी जोति परगसी॥

पद्मावती की विद्वत्ता, प्रतिभा तथा निपुणता आदि भी अद्वितीय है। चारों वेदो का अथाह, गूढ ज्ञान उसकी जिह्वा पर स्थित है। उसके प्रत्येक वचन में अनेक अर्थ छिपे रहते हैं, जिनके समझने में इन्द्र भी मोहित हो जाता है और ब्रह्मा भी हार कर बैठ

जाता है। अमरकोश, भास्वती, ज्योतिष, महाभारत, पिंगल, व्याकरण तथा वेद पुराण आदि के गूढ रहस्यो का जब वह प्रकाशन करती है तो श्रोतागण विस्मय-विमुग्ध रह जाते है—

चतुर वेद मति सब ओहि पाहां। रिग जजु साम अथर्वन माहा ।।
एक-एक बोल अरथ चौगुना। इन्द्र मोह बरह्मा सिर धुना ।।
अमर भारथ पिंगल औ गीता। अरथ बूझ पडित नंहि जीता ।।
भावसती व्याकरन सरसुती पिंगल पाठ पुरान।
वेद भेद सैं बात कह तस जनु लागहि बान ।।

देवगण पद्मावती के चरणो को हाथो-हाथ लिए रहते है। जहा भी धरती पर पद्मावती के पैर पडते हैं, देवता वहा अपना सिर रखने को तैयार है अर्थात् देवता लोग चाहते हैं कि पद्मावती उनके सिर पर पांव रखे उसके अत्यन्त कोमल चरण कठोर धरती के योग्य नहीं। न मालूम ऐसा कौन भाग्यशाली होगा, जो पद्मावती को प्राप्त कर सकेगा और उसके चरणो को अपने सिर पर धारण कर सकेगा। उसके पैरो का आभूषण चन्द्रमा तथा सूर्य की भान्ति उज्ज्वल लगता है। पायल बीच-बीच मे झन-झन करती जाती है। अनवर तथा बिछुए भी नक्षत्रो की भान्ति शोभायमान प्रतीत होते हैं। न मालूम, ऐसा कौन भाग्यशाली होगा जो उसके ऐसे सुन्दर पैरो की शरण ले सकेगा।

देवता हाथ-हाथ पगु लेही। पगु पर जहा सीस तहं देहीं।
माथैं भाग को दहु अस पावा। कवल चरन लै सीस चढावा ।।
चूरा चांद सुरुज उजिआरा। पायल बीच करहिं झनकारा ।।
अनवर बिछिया नखत तराईं। पहुंचि सकै को पावन्हि ताईं ।।

पद्मावत के २१वें खण्ड मे जायसी ने स्वयं भगवान शंकर की—जिनके विषय मे प्रसिद्ध है कि उन्होने मदन को अतनु कर दिया था और इसी आधार पर आज कामर्जित को नराकृति साक्षात् भर्ग- मानने की धारणा प्रचलित है—को पद्मावती के दिव्य रूप-सौंदर्य से विमहित चित्रित किया है। रत्नसेन द्वारा देवमूर्त्ति पर विपत्ति की घड़ी मे सहायता न करने का आरोप लगाने पर शकर भगवान् ने उत्तर दिया—अरे पगले, देवता तो तुझसे भी पहले वज्राहत हो चुका है। जब किसी के अपने सिर पर विपत्ति पडी हो तो भला वह किसी दूसरे की रक्षा कर सकता है? राजकुमारी पद्मावती अपनी सखियो सहित यहा आई थी। उसके अनावृत चन्द्रवदन को देखकर ऐसा प्रतीत होता था कि मानो ग्रह-तारा सेवित स्वयं चन्द्र उपस्थित हो उस अपार्थिव दीप्ति को निहार कर मैं मूर्च्छित हो गया। उसकी दन्तावली विद्युत् से समान देदीप्यमान थी और उसके नैन-चक्र, काल-कृपाण के समान घूम रहे थे। मैं उसके रूप के दीपक मे पतगे के समान गिर पडा। मेरी सारी चेतना ही उसके रूप-पाश मे बन्ध कर रह गई—

देव कहा सुनु बौरे राजा । देवहिं अगुमन मारा गाजा ।।
जौ पहिले अपुने सिर परई । सो का काहु कै धरहरि करई ।।
पदुमावति राजा कै बारी । आइ सखिन्ह सौ मंडप उघारी ।।
जैसे चाद गोहने सब तारा । परेउ भुलाइ देखि उजियारा ।।
चमकै दसन बीज की नाईं । नैन चक्र जमकात भवाई ।।
हौ, तेहि दीप पतग होइ पर । जिउ जम गहा सरग धरा ।। —वही २०३

जायसी का प्रस्तुत कथन भारतीय मान्यता के अनुसार आपत्ति-जनक हो सकता है परन्तु अलौकिक रूप-सुषमा के सर्वातिशायी मोहक प्रभाव का चित्रण उससे बढकर नही किया जा सकता। स्वय पुराणो मे भी देवो के किसी दमयन्ती जसी रूपसी के सौन्दर्य पर मुग्ध होने के वर्णन मिलते हैं। स्वयं कामजित को काम-हत बताकर जायसी ने पद्मावती के रूप-सौंदर्य की सीमातीतता का ही वर्णन किया है। आध्यात्मिक दृष्टि से तो शंकर का पूर्णब्रह्म के तेज से विमोहित होना सर्वथा स्वाभाविक ही है। तुलसी ने भी शकर को राम के दिव्य सौन्दर्य पर विस्मयविमुग्ध चित्रित किया ही है, अस्तु।

इस प्रकार जायसी ने पद्मावती को आदर्श सौन्दर्य की प्रतिमा और प्रतीक के रूप मे चित्रित किया है और इस चित्रण मे अपनी समस्त वृत्तियों को ईश्वर के उस पक्ष पर केन्द्रीभूत किया है, जिसे आदर्श सौन्दर्य कहा जा सकता है।

गुरु

सूफी साधना मे पीर का बहुत अधिक महत्त्व है। पीर ही साधक को शैतान से निजात (मुक्ति) दिलाकर, अथवा उसका मार्गप्रदर्शन करता हुआ तथा मार्ग की कठिनाइयो से शागिर्द (शिष्य-साधक) को बचाता हुआ चरम-लक्ष्य तक ले जाता है। जायसी भी इसी मान्यता के अनुयायी कवि है।

जायसी के अनुसार साधक आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शक की सहायता के बिना चरम लक्ष्य तक पहुचने का मार्ग नही पा सकता —इस सिद्धात को न मानने वाला सचमुच भ्रांति-ग्रस्त है। गुरु से संयोग होने पर, उनका पथ-प्रदर्शन प्राप्त कर ही योगी सिद्धि प्राप्त करने में सफल होता है—

बिनु गुरु पथ न पाइआ, भूलै सोइ जो मेंट ।
जोगी सिद्ध होइ तब, जब गोरख सौ भेंट ।।

जायसी के अनुसार पीर (मुरशिद) के साथ होने पर साधक को निश्चित रहना चाहिए क्योकि वह पीर के हाथ पूर्णतः सुरक्षित है। जब नाव (साधना) है और नाव का खिवैया (गुरु) भी साथ मे है तो दूसरे तीर (परमात्मा-प्राप्ति) तक पहुंचने में कितनी देर लग सकती है—

महमद तहं निचित पथ जेही सग मुरसिद पीर ।
जेही रे नाव करिआ औ सेवक वेग पाव सो तीर ।।

जायसी सद्‌गुरु की प्राप्ति को सरल नही मानते। सच्चे अर्थों मे केवल वही साधक का सही नेतृत्व कर सकता है जो स्वयं पहुचा हुआ हो और इस प्रकार राह से पूर्ण-रूपेण परिचित हो। जिस प्रकार पंख-हीन पक्षी उड नही सकता, उसी प्रकार ज्ञानहीन व्यक्ति गुरु नही बन सकता। ऐसा व्यक्ति यदि गुरु बन जाता है तो "अंधेनैव नीयमाना यथान्धा" अर्थात अन्धे द्वारा अन्धो के मार्ग-दर्शन की स्थिति ही रहती है। दोनों ही मार्गभ्रष्ट होकर जन्म को निरर्थक गंवाते है—

.... । अगुआ सोइ पथ जेइ देखा ।।
सो का उडै न जेहि तन पाखू। लै सो परासहिं बूडै साखू।।
जस अंधा अंधे कर संगी। पंथ न पाइ होइ सहलंगी।।

वस्तुत: सच्चा गुरु तो वही है जो प्रेम-स्फुलिंग से शिष्य के अन्त:करण मे निर्मल आलोक बिखरा दे। सच्चा शिष्य भी वह है जो उस स्फुलिंग को ग्रहण करके उससे अग्नि प्रज्वलित कर ले—

गुरु बिरह चिनगी पै मेला। जो सुलगाइ लेइ सो चेला ।।

जिस प्रकार भृंगी पतंगे को पकडकर एक ही बार मे उसे नि:सत्व—निष्प्राण कर देती है और पुनः उसमे नवजीवन का सचार करती है, उसी प्रकार गुरु शिष्य को सांसारिकता से विरत करके उसमे आध्यात्मिकता के नवजीवन का सचार करता है। इस प्रकार एक बार मर कर जीने वाला अमर और आनन्दमय हो जाता है।

सबद एक होइ कहा अकेला। गुरु जस भृंगी फनिग जस चेला ।।
भृंगि ओही पंखिहि पै लेई। एकहि बार छुत जिउ देई ।।
ताकह गुरु करै असि माया। नव अवतारु देई नै काया ।।
होइ अमर अस मरि कै जिया। भंवर कवल मिली कै मधु पिया ।।

इस प्रकार के लक्ष्य पर पहुचाने वाले गुरु के मिल जाने पर शिष्य को उसके आगे पूर्णत. आत्म-समर्पण कर देना चाहिए। जहा गुरु के चरण पड़े वहा शिष्य को अपना माथा टेक देना चाहिए—

जहा पाँव गुरु राखै चेला राखै माथ।"

प्रेम-पथ पर वास्तविक गुरु तो स्वय ईश्वर ही होता है। जब साधक उस गुरु को पहचान लेता है तो उसके हृदय से सारा अहभाव दूर हो जाता है। तब उसे यह अनुभव होता है कि वह सर्वशक्तिमान् है और इस चराचर जगत् की छोटी-से-छोटी घटना भी उसकी इच्छा की पूर्ति या अभिव्यक्ति-मात्र है, तब साधक उसके समक्ष पूर्ण समर्पण करके चिन्तामुक्त हो जाता है—

सो पदुमावति गुरु हौ चेला। जोग तत जेहि कारन खेला ।।
तजि ओहि बार न जानौ दूजा। जेहि दिन मिलै जातरा पूजा ।।

रत्नसेन साधक की भावना को व्यक्त करता हुआ कहता है—जब तक मैने गुरु का नहीं पहचाना था, मेरे और उनके बीच कोटि-कोटि व्यवधान थे और अब जब पहचान लिया है तो उसके अतिरिक्त अन्य किसी का कोई अस्तित्व ही नही रह गया।

भ्रम और गर्ववश मुझ मे अहंभाव था परन्तु अब सिद्धि-लाभ के उपरान्त असत्य का अन्त हो गया है। गुरु के प्रति मैंने अब इस प्रकार पूर्ण आत्म-समर्पण कर रखा है कि वह मेरे साथ जो भी व्यवहार करना चाहे, करे। मुझे सब स्वीकार है। वह चाहे तो मुझे मारें और चाहे तो जीवनदान दें। चाहे सूली पर चढा दें और चाहे हाथी के पैरो तले रुंदवा दे—पूर्ण समर्थ गुरु जो भी चाहे करें, वे ही सब कुछ जानते है। गुरु जी हाथी पर आरूढ होकर सब दृश्यो का अवलोकन करते हैं। इस ससार के लिए जो नास्ति है, गुरु उसे अस्ति के रूप मे देखते हैं—

जब लगि गुरु मै अहा न चीन्हा। कोटि अन्तरपट बिच हुत दीन्हा ॥
जौं चीन्हा तौ औरु न कोई। तन मन जिउ जीवन सब सोई ॥
हौं हौ कहत धोख अंतराही। जौ भा सिद्ध कहाँ परिछाही ॥
मारै गुरु कि गुरु जियावा। और को मार मरै सब आवा ॥
सूरि मेलु हस्ति कर पूरू। हो नहिं जानौ जानै गुरू ॥
गुरु हस्ति पर चढा सो पेखा। जगत जो नास्ति नास्ति सब देखा ॥

गुरु की कृपा से ही साधक को अध्यात्म पुरुष के दिव्य और विराट् सौन्दर्य की झाँकी देखने को मिलती है—

"गुरु करै जो किरिपा पावै चेला भेद।"

उस रूप की झलक पाकर साधक अनिर्वचनीय आनन्द से उन्मत्त हो जाता है। उस रूप के दर्शनमात्र से साधक की निराशा, कालुष्य की कालिमा और अज्ञान का अन्धकार नष्ट हो जाता है। ज्ञान-रूपी सूर्य की किरणें प्रस्फुटित हो जाती हैं, उसी क्षण उसके हृदय मे आस्तिकता स्थिर हो जाती है—

देखि मानसर रूप सोहावा। हिये हुलास पुरइन होइ छावा ॥
गा अंधिआर रैन-मसि छूटी। भा मिनसार किरन रवि फूटी ॥
अस्ति अस्ति सब साथी बोले। अंध जो अहै नैन विधि खोले ॥

जायसी ने रत्नसेन के मुख से इस अनुभूति का वर्णन इन शब्दो मे कराया है। तोते के मुख से सूर्य-सदृश पद्मावती का वर्णन सुनकर राजा हर्षोन्मत्त होकर कहने लगा—हे तोते! फिर से उसी बात को कहो। तुमने जिस सुन्दर राजकुमारी का कथन किया है, वह तो मानो मेरे हृदय मे स्थायी रूप से बस गई है, वह अब मेरे हृदय की स्थायी निधि है। सूर्य के समान वह एक स्थान पर बैठकर मेरे हृदय को प्रकाशित कर रही हैं। अब मेरा और उसका चन्द्र और उसके प्रतिबिम्ब की भाँति का सम्बन्ध हो गया है। अब मेरे हृदय मे प्रेम का अंकुर पूर्णरूप से विकसित हो चुका है। सहस्रो किरणो के समान मेरा मन उस पर मोहित हो चुका है। जहा-जहा मेरी दृष्टि पड़ती है, वही-वही वह कमल-रूप पद्मिनी मुझे विकसित हुई दिखाई पडती है—

सुनि रवि नाउं रतन भा राता। पंडित फेरि इहै कछु बाता ॥
तुइं सुरंग मूरति वह कही। चित मह लागि चित्र होइ रही ॥

जनु होइ सूरुज आइ मन बसौ । सब घट पूरि हिएं परगसौ ॥
अब हौ सूरुज चांद वह छाया । जल बिनु मीन रकत बिनु काया ॥
किरनि करा भा पेम अंकरु । जौं ससि सरग मिलौं होइ सूरु ॥
सहसहु करा रूप मन भूला । जह जहं दिस्टि कवल जनु फूला ॥

इस प्रकार जायसी ने अध्यात्म-साधना मे गुरु की अनिवार्यता को स्वीकार किया है । ग्रन्थ की समाप्ति पर अपने कथानक का उपसहार करते हुए कवि का कहना है—

'गुरु सुआ जेहि पथ दिखावा । बिन गुरु जगत् को निरगुन पावा ॥'

पथ की बाधाएँ

तोते के मुख से पद्मावती के रूप-सौदर्य को सुनकर रत्नसेन उसे पाने को उत्सुक हो उठा । तोते ने राजा से जब प्रेममार्ग की कठिनाइयों का वर्णन किया तो राजा एकदम उत्तर देता है—

जेइं नही सीस पेम पथ लावा । सो प्रिथिमी महं काहे को आवा ॥
अब मैं पेम पंथ सिर मेला । पाव न ठेलु राखू कै चेला ॥

तोते द्वारा पद्मावती के नख-शिख वर्णन को सुनकर राजा मूर्च्छित हो गया । इस स्थिति की यथार्थता के सम्बन्ध मे जायसी का कथन है—

पेम घाव दुख जान न कोई । जेहि लागै जानै पै सोइ ॥

राजा ज्यो ही होश में आया, उसे वैराग्य-सा हो गया । मानो, कोई पगला सोकर के जगा हो । रत्नसेन नवजात शिशु के समान रुदन करते हुए कहने लगा—

हौं तो अहा अमरपुर जहा । इहा मरनपुर आएउं कहा ॥

राजा ने दृढ निश्चय करके राज छोडा और योगी बन गया । उसे अब एक ही धुन सवार थी—

"सिद्ध होउं पद्मावती पाएं हिरदे जेहि कै वियोग ।"

रत्नसेन के इस निश्चय पर सर्वप्रथम मातृस्नेह आड़े आया । बडे अनुनय से जननी ने अपने बेटे से अनुरोध किया—

राज पाट दर परिगह सब तुम सो उजियार ।
बैठी भोग रस मानहु कै न चलहुं अंधियार ॥

रत्नसेन ने माँ की ममता पर काबू पाते हुए स्पष्ट उत्तर दिया—

देखु अंत अस हौइहि गुरु दीन्ह उपदेस ।
सिंघल दीप जाब मैं माता मोर अदेस ॥

अब पत्नी नागमती प्रेम और सौभाग्य की दुहाई देकर सामने आती है—

तुम्ह अस बिछुरे पीउ पिरीता । जहवा राम तहां सग सीता ॥

× × ×

भलेहिं पदुमिनी रूप अनूपा । हमतें कोइ न आगरि रूपा ॥
भव भलेहिं पुरुषन्ह कै डीठी । जिन्ह जाना तिन दीन्हि न पीठी ॥

इस पर रत्नसेन का स्पष्ट कथन है—

तुम्ह तिरिआ मतिहीन तुम्हारी । मूरुख सो जो मतै घर नारी ॥
राघौं जौं सीता संग लाई । रावन हरी कवन सिधि पाई ॥
यह संसार सपन कर लेखा । बिछुरि गए जानहु नहिं देखा ॥

इस प्रकार रत्नसेन माया के बन्धन को तोडकर सोलह हजार योगी बने कुवरों के साथ लक्ष्य-प्राप्ति की ओर निकल पडता है । परन्तु यह तो अभी प्रारम्भ है। साधना-पथ भी कोई सरल और सीधा-सादा पथ नही । इस मार्ग पर आरूढ होना एक प्रकार से तलवार की धार पर चलना है । राजा रत्नसेन अपने साथ योगी बने कुवरो को साधना-पथ की कठिनाइयों से अवगत करते हुए कहता है—हमारे आगे पार्वत्य-प्रदेश फैला हुआ है । उस पर्वत की चोटिया बडी ऊची-ऊची, टेढी-मेढी, ऊबड-खाबड तथा भयकर हैं । उनकी चढाई बडी ही विषम और जोखिम वाली है । बीच-बीच मे नदी, खोह और नाले है । अनेक स्थलो पर तो बटमार टोह मे बैठे रहते है—

एहि आगे परबत की पाटी । विषम पहार अगम सुठि घाटी ॥
बिच-बिच खोह नदी औ नारा । ठांव हि ठांव उठहि बटमारा ॥

गजपति साधनारत रत्नसेन को मार्ग की कठिनाइयो से सावधान करता हुआ कहता है—बडा ही कठिन मार्ग है, आप इसे कैसे पार करेंगे ? व्यवधानरूप सात असूझ और अपार समुद्र हैं, जिनके मगरमच्छ और घडियाल मनुष्य को जीवित नही छोडते । लहरें प्रचण्ड होती हैं तो सम्भाली नही जा सकती । सौभाग्य से ही कोई विरला व्यापारी इनके पार पहुच पाता है । हथेली पर प्राण रख कर ही उस सिंहल-द्वीप मे पहुचा जा सकता है—

सात समुद असूझ अपारा । मारहिं मगरमच्छ घरियारा ॥
उठै लहरि नहिं जाइ सभारी । भागहिं कोई निबहै बैपारी ॥
सिंहल दीप जाइ सो कोई । हाथ लिहे जिव आपन होंई ॥

हीरामन तोता सिंहलद्वीप पहुचने के मार्ग का निर्देश करते हुए एक स्थल विशेष की भयंकरता से रत्नसेन को सतर्क करता हुआ कहता है—यहां रास्ता समुद्र की मंझदार मे से होकर गुजरता है, यह समुद्र तलवार की धार से भी अधिक तीव्र गति वाला है । इस समुद्र का प्रसार तीस हजार कोस है और यह मार्ग संकीर्ण इतना है कि एक चीटी तक का चलना-गुजरना कठिन है । पानी की धारा जहा एक ओर तेजी मे असिधारा से भी अधिक पैनी है, वहॉ दूसरी ओर बाल से भी कही ज्यादा पतली है—

सिघल दीप जो नाहि निबाहू । एही ठावे साकर सब काहू ॥
यह किलकिला समुद गंभीरू । जेहि गुन होइ सो पावै तीरू ॥
एहीं समुंद पंथ मझधारा । खाडै कै असि धार निनारा ॥

तीस सहस्र कोस कै पाटा । अस साकरि चलि सकै न चाटा ।।
खाडै चाहि पैनि पैनाइ । बार चाहि पातरि पतराई ।।

इस प्रकार रत्नसेन के मार्ग की कठिनाइया आत्मसाक्षात्कार के पथ की ही कठिनाइया है और यह पथ असन्दिग्ध रूप से ही दुर्लंघ्य एव दुरूह होता है । गुरु की कृपा—सहायता के द्वारा ही साधक सभी प्रकार के प्रलोभनो से विरत और कठिनाइयों मे अडिग रहकर निरन्तर आगे बढता जाता है और अन्त मे प्राप्तव्य का लाभ कर लेता है । गुरु की महत्ता का प्रतिपादन करता हुआ तोता कहता है—

एहि ठाउं कह गुरु संग कीजै । गुरु सग होइ पार तौ लीजै ।।

नागमती भी गुरु की उपयोगिता को स्वीकार करती हुई कहती है—

"मोर नाव खेवक बिनु थाकी ।"

वस्तुत गुरु पथ की बाधाओं, कठिनाइयो, विघ्नो आदि का निवारण करके साधक के लिए साध्य को सुकर-सुगम बना देता है ।

साधना के विविध-रूप

यद्यपि साध्य मे सिद्धि के लिए प्रेम ही सर्वोत्तम साधन है तथापि उसकी सहायता के लिए अन्यान्य साधन भी अपेक्षित रहते हैं । इनके बिना प्रेम की स्थिरता, नित्यता तथा निष्कलुषता सम्भव नही रहती । जायसी ने भी इस प्रकार साधना के अन्यान्य रूपो की आवश्यकता का विवेचन अपने महाकाव्य 'पद्मावत' मे स्थान-स्थान पर किया है ।

जायसी का मत है कि ईश्वरप्राप्ति के लिए वैराग्य, तपस्या और योग परमावश्यक हैं । कोई भी व्यक्ति सासारिक सुख-भोग करते हुए ईश्वर-साक्षात्कार के मार्ग पर अग्रसर नही हो सकता । पद्मावती की प्राप्ति के लिए सिंहलद्वीप को जाने के लिए उद्यत रत्नसेन को हीरामन तोते का स्पष्ट कथन है—युद्ध का साज सजा कर तुम सिंहलद्वीप को नही पा सकते । उसका मार्ग तो एक ऐसा मार्ग है जिस पर केवल वही जा सकता है, जिसने संसार का परित्याग किया हो । जो योगी, यती, तपस्वी अथवा संन्यासी हो । यदि भोग द्वारा ही सच्चे आनन्द की प्राप्ति सम्भव होती तो कोई भोग छोड कर योग साधना मे तत्पर क्यो होता ? सिद्धि तो तप तथा आत्म-बलिदान द्वारा प्राप्त की जा सकती है—

कठिन आहि सिघल कर राजू । पाइअ नाहि राज के साजू ।।
ओहि पंथ जाइ जो होइ दासी । जोगी जती तपा सन्यासी ।।
भोग जोरि पाइत वह भोगू । तजि सो भोग कोई करत न जोगू ।।
तुम्ह राजा चाहहु सुख पावा । जोगहि भोगहि कत बनि आवा ।।
साधन्ह सिद्ध न पाइअ जौ सहि साध न तप्प ।
सोइ जानहिं बापुरे जो सिर करहिं कलप्प ।।

रत्नसेन ने अपने गुरु के आदेश का पालन किया। पत्नी द्वारा चित्तौडगढ़ पर शाश्वत शासन करने के निवेदन करने पर रत्नसेन का उत्तर है—यह सारा ससार स्वप्नवत् है। इसमे संयोग की परिणति ही वियोग है और वियोग की स्थिति मे संयोग कल्पनावत् ही लगता है। यदि भोग मे ही सुख होता तो राजा भर्तृहरि—जिसके तलवे सोलह सौ रूपसी रानियां अपने उरोजो से सहलाया करती थी—योगी न बन जाता। योगी को कंचन-कामिनी की कोई भी आवश्यकता नही रहती। वह तो रूखा-सूखा खाकर सन्तुष्ट रहता है—

यहु संसार सपन कर लेखा। बिछुरि गए जानहु नहिं देखा ॥
राजा भरथरि सुनि रे अयानी। जेहि घर सोरह सै रानी ॥
कुचन्ह लिहें तरवा सहराई। भा जोगी कोइ साथ न लाई ॥
जोगिन्ह काह भोग सो काजू। चहै न मेहरी चहै न राजू ॥
जूड कुरकुटा पै भखू चाहा। जोगिहि तात मात दहुं काहा ॥

जायसी के अनुसार मनुष्य का बावरा मन द्रव्य-भोग का लोलुप रहता है और जहा भी उसे ये पदार्थ उपलब्ध होते हैं, उधर यत्नशील रहता है, परन्तु सच्चा साधक हाथ आए हुए रत्न को भी जल मे फेंक देता है, क्योकि योगी के लिए रत्नो का कोई उपयोग नही। उसके लिए इनका कोई मूल्य नही। योगी जानता है कि अध्यात्म मार्ग के पथिक के लिए द्रव्य मार्ग मे शत्रु का काम करता है। सम्पत्तिवान् पथिक का चोर-डाकू पीछा करते है, इससे वह भयग्रस्त और त्रस्त रहता है। सच्चा पथिक तो धन का प्रलोभन छोड़कर ही चलता है—

मनुवा चहै दरब औ भोगू। पथ भुलाइ बिनासै जोगू ॥
जोगी मनहिं ओहिं रिस मारहिं। दरब हाथ कै समुद पबारहिं ॥
पथहि पथ दरब रिपु होइ। ठग बटवार चोर सग सोई ॥
पंथिक सो जो दरब सो रूसै। दरब समेटि बहुत अस मूसै ॥

जायसी के अनुसार सिद्धि-प्राप्ति-पर्यन्त साधक को योगाभ्यास मे निरत रहना चाहिए। भटकने से लक्ष्य-च्युति का भय रहता है। जिस प्रकार वसन्त ऋतु आने पर चारो ओर का वातावरण सुरभित तथा मादक बन जाता है, ठीक उसी प्रकार योगसाधना की सफलता के समय के आने पर सिद्धि स्वत. समुपस्थित हो जाती है और फिर साधक कृतकृत्य हो उठता है—यही सन्देश पद्मावती ने तोते के द्वारा रत्नसेन के पास भिजवाया है—

आवै रितु बसंत जब तब मधुकर तव बासु।
जोगी जोग जो इमि करहि सिद्धि समापति तासु ॥

पार्वती की परीक्षा मे रत्नसेन के सफल हो जाने पर, पार्वती रत्नसेन की विरहातुरता पर द्रवित होकर भगवान् शकर से उसकी सहायता करने का अनुरोध करती है।

देवाधिदेव भगवान् महेश्वर उसे योग के रहस्यो की जानकारी देते है जिससे उसे सहज ही अभीष्ट-प्राप्ति हो सके। भगवान् शंकर कहते हैं कि हे राजा! यह सिंघलगढ उसी प्रकार टेढा है कि जैसा तुम्हारा शरीर। पुरुष वस्तुतः उसी की छाया है। उसे जूझ कर प्राप्त नही किया जा सकता है। इसे तो वे ही लोग प्राप्त करते है जो अपने-आपको पहचानते हैं (आत्मज्ञान)। इस गढ मे नौ द्वार हैं (शरीर के नौ बहिर्मार्ग) और यहा पाच कोतवाल (पाच ज्ञानेन्द्रिया) पहरा देते हैं। गढ मे एक दसवां गुप्त द्वार (ब्रह्मरन्ध्र) भी है, इसकी चढाई बडी अगम है और राह टेढी-मेढी है। इस घाटी (ब्रह्मरन्ध्र) को वही पार कर सकता है जिसने इसका रहस्य जान लिया हो और जो चीटी की तरह चढे अर्थात् साहस न छोडे तथा सतत सतर्क रहे। दशम द्वार बडा संकीर्ण है और ताड वृक्ष के समान लम्बा है। जो दृष्टि (कुण्डलिनी) को ऊपर करता है, वही इसे देख सकता है। जो वहा जाएगा, उसे श्वास और प्राण सयत करना (प्राणायाम और ध्यानयोग अपनाना) पडेगा—

> गढ तस बाक जैसि तोरि काया। परखि देखु तें ओहि की छाया ॥
> पाइअ नाहिं जूझि हठि कीन्हे। जेइं पावा तेइं आपुहि चीन्हे ॥
> नौ पौरी तेंहि गढ मझिआरा। औ तह फिरहिं पाच कोटवारा ॥
> दसवं दुआर गुपुत एक नाकी। अगम चढाव बाट सुठि बाकी ॥
> भेदी कोई जाई ओही घाटी। जौ लै भेद चढै होइ चांटी ॥
>
> × × ×
>
> दसव दुआर तारु का लेखा। उलटि दिस्टि जो लाव सो देखा ॥
> जाइ सो जाइ सास मन बन्दी। जस धसि लीन्ह कान्ह कालिन्दी ॥

रत्नसेन ने महादेव के आदेश का अक्षरशः पालन किया। उसने पिंगला और सुषुम्णा नाडियो के भेद को समझा और उनकी टकटकी शून्य समाधि मे लग गई। वह अपार समुद्र मे घुलमिलकर एक हो जाने वाली एक बूद के समान हो गया। इस प्रकार से खो गया कि खोजने पर भी न मिला। पानी में रंग मिलने के समान वह अपने को खो बैठा और प्रियतम-रूप हो गया—

> गही पिंगला सुखमन नारी। सुन्नि समाधि लागि सो तारी ॥
> बुदहिं समुद जैस होइ मेरा। गा हेराइ तस मिलै न हेरा ॥
> रंगहिं पानि मिला जस होई। आपुहि खोइ रहा होइ सोई ॥

प्रेम

जायसी ने लक्ष्यसिद्धि मे सहायक योग, वैराग्य आदि अन्यान्य साधनो की अपेक्षा प्रेम को सर्वाधिक महत्त्व दिया है, क्योकि यह एक सच्चा और सही मार्ग है। इस से प्रियतम की प्राप्ति निश्चित और शीघ्र होती है। परन्तु जायसी के अनुसार प्रेम-पथ का अनुसरण करना बच्चों का खेल नही। आकाश तक तो दृष्टि के सहारे पहुंचा जा सकता है पर प्रेम अदृश्य लोक तथा दृश्य गगन लोक से ऊंचा है। प्रेम के

ध्रुवतारे का उदय आकाश के ध्रुवतारे के उदय से अधिक ऊचे स्थान पर होता है। अपना सिर काटकर उस पर खडा होनेवाला ही प्रेम के इस ध्रुवतारे का स्पर्श कर सकता है—

गगन दिस्टि सौ जाइ पहूंचा। पेम अदिस्ट गगन सो ऊंचा।
धुव तें उंच पेम धुव उवा। सिर दै पाउ देइ सो छुआ॥

जब तक मनुष्य के हृदय मे अधकार और स्वार्थ का साम्राज्य रहता है तब तक वह किसी प्रकार भी प्रेमपथ पर अग्रसर नही हो सकता। अपने अहंभाव को छोड देने अर्थात पूर्णत: आत्म-विसर्जन कर देने पर ही उसके लिए साध्य की प्राप्ति सम्भव होती है। विधि ने प्रेम-पर्वत को इतना दुर्लंघ्य बनाया है कि सिर की बाजी लगाने वाला ही उस पर चढ सकता हे—

जौ लहि आपु हेराई न कोई। तौ लहि हेरत पाव न सोई।
पेम पहार कठिन विधि गढा। सो पै चढै सीस सौं चढा॥

प्रेम शब्दों से आहत व्यक्ति के लिए भूख, निद्रा तथा छाया का कोई महत्त्व नही। प्रेमपात्र के दुःख को प्रेम-पीडित ही जान सकता है, उसे अन्य कोई नही समझ सकता। प्रेम मे मृत्यु से भी अधिक दु खदायी अवस्था हो जाती है, क्योंकि उसमे प्राण न तो जीते हैं और न मृत्यु ही आती है—

पेम घाव दुख जान न कोइ। जेहि लागै जानै पै सोई॥
× × ×
कठिन मरन तें पेम बेवस्था। नाजिऔं जिवन न दसइँ अवस्था॥

प्रेम-लुब्ध व्यक्ति दाह-सहन का अभ्यास कर लेता है। प्रेम-दग्ध जीव सचमुच धन्य है। जिसका हृदय प्रेम से ओत-प्रोत है, उसके लिए आग भी चन्दन के समान शीतल है। प्रेमविहीन व्यक्ति प्रेममार्ग की कठिनाइयो से त्रस्त होकर भाग खड़ा होता है। यह बात निश्चित है कि प्रेमाग्नि मे जलना व्यर्थ नही जाता। उसका दुःख अवश्य ही रग लाता है। प्रेमी के सिर पर पानी की धारा पडे अथवा अंगारो की वर्षा, प्रेम की बाढ को रोकने की सामर्थ्य किसी मे भी नही—

जेहि जिय पेम चंदन तेहि आगी। पेम विहून फिरहिं डरि भागी॥
पेम कि आगि जरै जौ कोई। ताकरै दुख न अविरथा होई॥
जो जानै सत आपुहि जारै। निसत हिए सत करै न पारै॥
..................पेमहि कहा सभार।
भावै पानी सिर परौ भावै परो अंगार॥

ससार में खड्ग की धार बडी भयंकर होती है किन्तु प्रेम मे विरह की लपटें उससे भी अधिक भयंकर होती है। यदि प्रेमपथ इतना दुस्साध्य न होता तो उसे सभी साध करने भर से ही पा लेते—

जग मंह् कठिन खरग कै धारा। सहिं तें अधिक विरह् कै झारा ॥
अगम पंथ जो ग्रैस न होई। साध किएं पावत सब कोई ॥

जायसी के अनुसार प्रेम-समुद्र बडा ही अथाह है। इसका न कही ओर-छोर है और न कही इसका तल दिखाई देता है। यदि कोई इस प्रेम के क्षीर-समुद्र मे गिर पडे तो अपने प्राण खो बैठता है परन्तु हस (विशुद्ध आत्म-स्वरूप) होकर इस गहन-समुद्र को सहज ही पार किया जा सकता है—

पेम समुद ग्रैस अवगाहा। जहा न बार पार नहिं थाहा ॥
जौ वह समुद काह एहि परे। जौ अवगाह हंस होइ तिरे ॥

इस प्रकार प्रेम-मार्ग मे तो मृत्यु भी प्रेमी को उसके चरम लक्ष्य तक पहुचा देती है। जायसी के अनुसार प्रेम-पथ पर अग्रसर होने वाला व्यक्ति सचमुच धन्य है। इस पथ को जो पार कर जाता है, फिर उसे इस छार में मिलने के लिए लौटना नही पडता। उसे उत्तम स्वर्ग मिलता है, जहा मृत्यु नही होती प्रत्युत चिरन्तन सुख-वास होता है—

....। धनि ओई पुरुष पेम पथ खेले ॥
तिन्ह् पावा उत्तम कविलासु। जहा न मीचु सदा सुख बासु ॥
पेम पथ जौ पहुचै पारा। बहुरि न आइ मिलै इहि छारा ॥

जायसी ने रत्नसेन को प्रेममार्ग के एक आदर्श पथिक के रूप मे चित्रित किया है। सिंहल के मार्ग मे उसके अन्य सारे साथी (कुवर) स्थान-स्थान पर सो जाते हैं परन्तु सच्चे प्रेमी रत्नसेन की आंखो मे नीन्द कहा? जिसके हृदय पर प्रेम का रग जम गया हो, उसे भूख, नीद और विश्राम से क्या काम? रत्नसेन के प्रेमविह्वल मन मे तो पद्मावती की प्राप्ति की कामना लहरा रही थी और उसकी दृष्टि से उसकी प्राप्ति-मार्ग (सिंहल) की ओर इस प्रकार स्थिर थी, जैसे वन मे चातक की और जल में सीप की उत्सुक दृष्टि मेघ की ओर लगी रहती है—

ठावहिं ठाव सोवहिं सब चेला। राजा जागै आपु अकेला ॥
जेहि कै हिएं पेम रंग जामा। का तेहि भूख नीद विसरामा ॥

× × ×

नैन लागु तेहि मारग पदुमावति जेहि दीप।
जैस सेवाती सेवहि बन चातक जल सीप ॥

रत्नसेन का उद्घोष है कि न उसे स्वर्ग के सिंहासन की कोई अभिलाषा है और न ही नरक से किसी प्रकार का प्रयोजन। वह तो एकमात्र पद्मावती के दर्शनो का उत्सुक है, जिसने उसे इस प्रेम-मार्ग पर अग्रसर किया है—

हौ कविलास काह लै करऊं। सोइ कविलास लागि ओहि मरऊं ॥
ओहि के बार जीवनहि बारौं। सिर उतारि नेवछावरि डारौ ॥
ताकरि चाह कहै जो आई। दुऔ जगत् तेहि देउं बडाई ॥

जायसी के अनुसार प्रेमपथ के पथिक को बडा दृढ-प्रतिज्ञ होना चाहिए। उसे पूर्णरूपेण आत्मविश्वास के साथ ही लक्ष्य की ओर अग्रसर होना चाहिए। रत्न-सेन इसी प्रकार का दृढ-प्रतिज्ञ और आत्मविश्वास-सम्पन्न साधक है। उसने गजपति से स्पष्ट शब्दों मे कहा है—यदि जीवित रहा तो पद्मावती को लेकर ही लौटूगा और यदि मरना पडा तो उसके द्वार पर ही मरूगा—

"जौं रे जिओ लै बहुरौं मरौं तौ ओहि के बार।"

गजपति द्वारा मार्ग की कठिनाइयो का वर्णन किए जाने पर रत्नसेन अडिग-भाव से उत्तर देता है— प्रेम के मार्ग मे सिर की बाजी लगाने वाले अर्थात जीवन-मृत का मृत्यु क्या बिगाड सकती है। मैंने अपने सारे सुखो का त्याग करके ही सिंहल जाने का निश्चय किया है। वस्तुत' जिसने प्रेम-समुद्र के दर्शन कर लिए है, उसके लिए सिंहल के मार्ग मे पडने वाले सारे विशाल और समुद्र बून्द मात्र हैं। रत्नसेन का विश्वास है कि सच्चा प्रेमी अपने लक्ष्य को प्राप्त करके ही रहता है —

जौ पहिले सिर दे पगु धरही। मुए केर मीचुही का करई॥

× × +

ओ जेइ समुद पेम कर देखा। तेइं यह समुद बुद बरु लेखा॥

+ × +

जेइं पै जिय बान्धा सतु बेरा। बरु जिय जाय फिरै नहि फेरा॥

प्रेम पथ के आदर्श पथिक होने के नाते रत्नसेन ने अपने-आपको पूरी तरह पद्मावती की इच्छा पर छोड दिया था और वह सर्वथा अपरहित हो गया था। वह कहता है कि यद्यपि राजा गन्धर्वसेन ने सभी योगियों पर आक्रमण करके उन्हे बंदी बना लिया है तथापि वियोगी भी एक के पश्चात एक दुःख सहन करने को उद्यत हैं। यदि मुझे कोई पकड ले तो भी मेरा हृदय नही धडकेगा; मुझे जीवन-मरण का कोई भय नही। मेरी ग्रीवा में तो पद्मावती ने नागपाश डाल रखी है। मेरे हृदय में न हर्ष है और न ही विषाद। जिसने प्राण दिए हैं, वह ले भी सकता है, किंतु जब तक श्वास हैं मैं उसका विस्मरण नही कर सकता —

राजै छेकि धरै सब जोगी। दुख ऊपर सुख सहै वियोगी॥
न जिय धरक धरत है कोई। न जियं मरन जिअन करु होई॥
नागफांस उन्ह मेली गीवां। हरख न विसमौ एकौ नीवा॥
जेइं जिउ दीन्ह सो लेउ निरासा। बिसरे नही जौ लहि तन स्वांसा॥

वियोग पक्ष

आचार्यो ने प्रेम के वियोग और संयोग दो पक्ष माने हैं और उनकी यह भी धारणा रही है कि वियोग के बिना सयोग पुष्ट नही होता। वियोग जितना तीव्र और उग्र होता है, संयोग उतना ही मधुर एवं मादक बन जाता है। वस्तुतः हृदय से स्वार्थ और अहंभाव की निवृत्ति के लिए विरह पीड़ा की अनुभूति परमावश्यक है।

प्रेमी के लिए यह परीक्षा की अवधि होती है। जो साधक विरह-व्यथाओ को सहन करते हुए अविकल रूप से अपने पथ पर बढता जाता है, वही अपना लक्ष्य प्राप्त करता है। सन्त जान ने विरहानुभूति को 'आत्मा की कालरात्रि' कहा है। डीन इजे का विचार है कि जो रहस्यवादी इस कालरात्रि से नही गुजरा उसका अविश्वास भी किया जा सकता है।[1] जायसी ने भी इसी तथ्य को स्वीकार करते हुए स्पष्ट उद्घोष किया है—

एहि रे पथ सो पहुंचै सहै जो दुक्ख वियोग।

निस्सन्देह विरह बडा दुःखदायी होता है, वह साक्षात् काल का प्रतिरूप होता है। विरह की व्यथा से तो काल की पीडा को सहन करना सुगम होता है। काल तो एक बार प्राणों का हरण करता है किन्तु विरह तो मार-मार कर पुनः मारता है। विरह आग पर और आग डालता है, विद्युत् प्रहार के समान घाव पर और घाव करता है, बाण पर बाण-सन्धान करता है, एक रोग पर अन्य रोग की उद्भावना कर निरन्तर रोग का सचार करता है, एक शोक पर अन्य विविध शोको की अवतारणा करता है। इस प्रकार विरह की ज्वाला का काल यमदूत के काल से भी विषम एवं भयंकर होता है—

विरहा कठिन काल के कला। विरह न सहिअ काल बरु भला॥
काल काढि जिउ लेइ सिधारा। विरह काल मारे र मारा॥
विरह आगि पर मेलै आगि। विरह घाउ पर घाउ जागी॥
विरह बान पर बान पसारा। विरह रोग पर रोग सवारा॥
विरह साल पर साल नवेला। विरह काल पर काल दुहेला॥

विरह के ऐसे गहन कष्ट सहन करने के उपरान्त हृदय समस्त पाप और स्वार्थो से पूर्ण मुक्त हो जाता है और अग्नि मे पडे कुन्दन के समान विशुद्ध होकर प्रियतम साक्षात्कार के लिए उपयुक्त पात्र बन कर प्रस्तुत हो जाता है। इस प्रकार वियोग-दुःख प्रेम पथ मे रेचक का कार्य करता है।

जायसी को समग्र सृष्टि विरहाग्नि मे धधकती दिखाई देती है। विरह का ढेर ऐसा प्रज्ज्वलित हुआ कि उससे निर्गत धूम से मेघ काले पड़ गए, राहु-केतु दग्ध हो गए, सूर्य जल उठा और चन्द्रमा जल कर आधा रह गया, समस्त नक्षत्र-तारक प्रज्ज्वलित हो उठे। लूक टूट-टूट कर पृथ्वी पर गिरने लगे। स्वयं पृथ्वी कई स्थानों पर जल गई। इसी की दाह से ही पलाश-वन धधक कर जल उठा। विरह-श्वास से ऐसी सर्वग्रासिनी भयंकर लपटें निकलीं कि पर्वत जल-जल कर अगारो मे परिवर्तित होने लगे—

१. History of Indian Philosophy By R. D. Ranade (Preface).

अस पर जरा विरह कर कठा। मेघ स्याम लै धुआं जो उठा ॥
दाधे राहु केतु गा दाधा। सूरज जरा चांद जरि आधा ॥
औ सब नखत तराई जरही। टूटहि लूक धरनि माँह परही ॥
जरी सो धरती ठावहि ठांवा। ढंक गरास जरे तेहि ठांवा ॥
विरह सास तस निकसै झारा। धिकि धिकि परबत होहि अंगारा ॥

विरह का व्यथा-पक्ष सामान्य विषय है जिस पर ससार के अनेकानेक सहृदय कवियो की लेखनी गतिशील हुई है, किन्तु जायसी का यह ध्रुव विश्वास है कि आत्मा-परमात्मा मिलन के लिए यह विरह आवश्यक तत्त्व है। इस विरह का परिणाम केवल व्यथा ही नही होता—इससे मनःशुद्धि और सम्मार्जन भी होता है। इस प्रकार इसका केवल निषेधात्मक पक्ष ही नही, विधायक पक्ष भी है। यदि यह व्यथा न होती, प्रेम की पीर न होती, विरह की जलन न होती तो आत्मा कभी भी इतनी विशुद्ध न होती कि परमात्मा-मिलन सम्भव होता।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि प्रेम-पथ में एक ही सर्वव्यापी सत्ता के प्रति सच्ची एवं दृढ़निष्ठा बहुत आवश्यक है। पथ मे साधक के सम्मुख अनेक प्रकार के प्रलोभन आते हैं, किन्तु चरम लक्ष्य तक पहुचने के लिए आवश्यक है कि वह दृढ-प्रतिज्ञ और अडिग रहकर उन सबका प्रतिकार करे। जब रत्नसेन पद्मावती के प्रेम में विह्वल होकर प्राण होमने को उद्यत था तो स्वयं पार्वती वेश बदल कर उसकी परीक्षा लेने के लिए आती है और कहती है—मैं कैलाश (स्वर्ग) की अप्सरा हूं। सौंदर्य मे मेरी होड़ कोई नही कर सकता। मैं तुम्हारे समक्ष हूं। मुझे छोड़कर यदि तुमने पद्मावती की याद मे प्राण दे दिए तो इससे तुम्हे कोई लाभ नही होगा। अब इस जलन-मरण, तप-योग आदि को तिलाञ्जलि देकर जीवन-पर्यन्त मेरे साथ सुखो-पभोग कर। किन्तु अनन्य और दृढ प्रेमी रत्नसेन ने दो-टूक उत्तर दिया—हे अप्सरे! भले ही तेरा रूप-लावण्य अद्वितीय हो; परन्तु मैं तो पद्मावती के अतिरिक्त अन्य किसी भी रूपवती नारी से बात तक करने को प्रस्तुत नही। जीवित रह कर तुम्हारे साथ सुख-उपभोग करने की अपेक्षा तो मैं उसकी स्मृति मे मरण को अधिक महत्त्वपूर्ण मानता हू—

भलेहि रंग तोहि आछरि राता। मोहि दोसरें सौ भाव न बाता ॥
मोहि ओहि संवरि मुह अस लाहा। नैन सो देखसि पूछसि काहा ॥

रत्नसेन के पद्मावती के प्रति निष्कपट, अनन्य और दृढ प्रेम का विश्वास हो जाने पर ही पार्वती ने शिव से उसकी प्रशंसा की, उसे सच्चा स्वर्ण बताया और उसकी सहा-यता के लिए अनुरोध किया—

निस्चै पेम पीर यह जागा। कसत कसौटी कंचन लागा ॥
× × ×
एहू कहं तसि मया करेहू। पुरवहु आस कि हत्या लेहू ॥

भगवान् शंकर ने भी उसकी साधना को देख कर उसे सिद्ध घोषित करते हुए कहा—

जो दुख सहै होइ सुख ओका। दुख बिनु सुख न जाइ सिवलोका॥
अब तू सिद्ध भया सिधि पाई। दरपन कया छूटि गै काई॥

सयोग पक्ष

आत्मा की घनघोर 'कालरात्रि' के पश्चात् ईश्वरीय विभूति की अनुभूति रूपी उषा का उदय होता है। इस प्रकार किलकिला समुद्र की भयकर यात्रा के पश्चात् रत्नसेन और उसके कुवर-साथी मानसर पहुचते है। मानसर के असीम सौन्दर्य को देखकर उनके उल्लास-परिपूर्ण हृदय कमल की पखुरियो की भाति खिल उठते है। अन्धकार विगलित हो जाता है और रात्रि की कालिमा धुल जाती है। उषा का अभिराम उदय होता है और रवि किरणे प्रफुल्लित हो उठती है—

देखि मानसर रूप सोहावा। हिए हुलास पुरनि होइ छावा॥
गा अंधिआर रैन मसि छूटी। भा मिनुसार किरनि रवि फूटी॥
कवल विगस तह विहसी देही। भंवर दसन होइ होइ रस लेही॥

प्रेम की चरमावस्था मे प्रेमी और प्रेम-पात्र के बीच मे "मै तुम का भेद नही रहता— अभिन्नता हो जाती है। एक शरीर होता है तो दूसरा प्राण। हीरामन तोता पद्मावती को बताता है—तुम शिष्य पर प्रसन्न हुईं और उसे दर्शन देने के लिए स्वयं मण्डप मे गईं। शिष्य ने गुरु को देखा और वह रूप उसके मन मे सदा के लिए चित्र की भाति अंकित हो गया। तुम उसके प्राण अपने साथ ले आईं। वह काया मात्र रह गया और तुम प्राण हो गईं। काया की जो शीत-धूप सहन करनी पडती उसकी अनुभूति जीव को होती है। फलत. तुम्हारा सारा आनन्द-वैभव उसे मिला है और उसकी व्यथा तुम्हारी बन गई है। तुम उसके शरीर मे समा गई हो और वह तुममे व्याप्त हो गया है—

अनु रानी तुम्ह गुरु वहु चेला। मोहि पूछहु कै सिद्ध नवेला॥
तुम्ह चेला कहं परसन भई। दरसन देइ मडप चलि गई॥
रूप गुरू कर चेलै डीठा। चित्त समाइ होइ चित्र पईठा॥
जीउ काढि लै तुम्ह उपसई। वह भा कया जीव तुम्ह भई॥
कया जो लाग धूप औ सीऊ। कया न जान जान पै जीऊ॥
भोग तुम्हार मिला ओहि जाई। जो ओहि बिथा सो तुम्ह कह आई॥

रत्नसेन का कथन भी प्रेमी के अस्तित्व मे प्रेमपात्र की पूर्ण व्याप्ति का प्रमाण है। गन्धर्वसेन द्वारा बन्दी किए जाने के उपरान्त फासी पर जाने को उद्यत रत्नसेन कहता है—"मैं उस सुन्दरी पद्मावती का स्मरण करता हूँ जिसके नाम पर मेरे प्राण न्योछावर हैं। मेरे शरीर मे रक्त की प्रत्येक बिन्दु पद्मावती के नाम से मुखर है। मेरे शरीर का प्रत्येक रोम उसी मे उलझा हुआ है, मेरे प्रत्येक श्वास मे वह समाई हुई है और मेरी

नस-नस से उसके नाम की छवि निकल रही है—

औ सवरौ पदुमावति रामा । यह जिउ निवछावरि जेहि नामा ।।
रकत के बूद कया जत अहही । पदुमावति पदुमावति कहही ।।
रहहु त बुद बुद मह ठाऊ । परहु तो सोई लै लै नाऊ ।।
हाड हाड मंह सबद सो होई । नस नस माह उठै धुनि सोई ।।

इस प्रकार के पूर्ण समर्पण और अपने व्यक्तित्व को प्रेमपात्र के व्यक्तित्व मे विलय कर देने के पश्चात् ही साधक उसकी अनुभूति का पात्र बनता है । इस अनुभूति के पश्चात् वियोग-भावना तिरोहित हो जाती है और साधक प्रेमपात्र के समक्ष रहते हुए स्वर्गीय आनन्द-सुख का भोग करता है और उसे सर्वत्र अपने प्रेमपात्र का अस्तित्व ही दीख पडता है । रत्नसेन ने पद्मावती से यह तथ्य इस प्रकार से कहा—प्रकट अथवा अप्रकट कही भी कोई अन्य नही है । जहा भी देखता हूं, वहा तुम ही तुम हो । जायसी ने पद्मावती के सखियो से कहे शब्दो मे पूर्ण मिलन की अवस्था का वर्णन इस प्रकार से किया है—

कै सिंगार तापहं कहं जाऊ । ओहि कह देखै ठावहि ठाऊं ।।
जौ जिउ माह तौ उहै पियारा । तन मह सोइ न होइ निनारा ।।
नैनन्ह माहं तौ उहै समाना । देखउ जहा न देखउ आना ।।
आपुन रस आपुहि पै लेई । अधर सहे लागे रस देई ।।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि मलिक मुहम्मद जायसी प्रधानरूप से एक आध्यात्मिक कवि है । 'पद्मावत' मे कथावर्णन ही उनके कविकर्म का उद्देश्य नही । कवि का साध्य लौकिक कथानक के माध्यम से आध्यात्मिक सत्य की विकृति है । आध्यात्मिक रूपक के निर्वहण मे जायसी की असफलता का कारण वस्तुत. आध्यात्मिक अनुभूति की अभिव्यक्ति का सीमा-बन्धन से मुक्त होना है । जायसी के अनुसार—जहां भी सौदर्य की सत्ता है, वहा ईश्वर का असीम सौन्दर्य ही प्रतिबिम्बित हो रहा है, जहा भी प्रेम है, वह आत्मा के ईश्वरोन्मुख प्रेम का ही प्रतीक है—चाहे, वह प्रेम रत्नसेन का पद्मावती के प्रति हो अथवा नागमती का रत्नसेन के प्रति । वियोग-व्यथा के वर्णन मे भी इसी आध्यात्मिकता के स्पष्ट दर्शन होते है । जायसी की समूची सृष्टि वियोग के रग मे रंगी दीख पडती है । जायसी मे मृत्यु और उसके पश्चात् के जीवन की चेतना इतनी तीव्र है कि जहा-कही भी स्थानान्तर-गमन का वर्णन है, उनकी कल्पना मे आत्मा के महाप्रयाण की स्मृति सजग हो उठती है ।

इस प्रकार जायसी अपने समूचे ग्रन्थ मे दिव्य सौन्दर्य और पूर्णता को हृदयंगम करने का प्रयास करते दिखाई देते है । उनके अनुसार प्रकृति के विविध पक्षो, जगत् की विभिन्न वस्तुओ और परिस्थितियो मे यही दिव्य सौन्दर्य प्रतिबिम्बित होता है । जायसी की अन्तरात्मा का ईश्वरोन्मुख प्रेम निरन्तर कई रूपो मे प्रवाहित होता है—प्रेमपात्र की प्रबल चाह और खोज के रूप मे, वियोग-चेतना जन्य उद्दाम

और ज्वलन्त प्रेम के रूप मे—जो आत्मा को स्वार्थ और अहंभावना से मुक्त कर देता है और उससे भी तीव्रतर किन्तु शान्तिमय मिलन—चेतना-प्रसूत-प्रेम के रूप मे—जो अन्ततः प्रेमपात्र से स्वतन्त्र और पृथक् अस्तित्व की भ्राति को नष्ट कर देता है।

जायसी के साहित्य मे भारतीय अद्वैत के साथ-साथ सूफियो द्वारा वर्णित मिलन के विविध पक्षो के रहस्यात्मक वर्णन भी मिल जाते हैं।

तादात्म्य की **प्रथम अवस्था फना** है। कुछ विद्वानो ने तादात्म्य के दो स्तर माने हैं—फना और बका। निकलसन ने व्यक्तित्व विलय को फना और ब्रह्मस्थता को बका माना है। उनके अनुसार—सिद्ध पुरुष इन दोनो अवस्थाओ से गुज़रता है। जायसी के काव्य मे इन दोनों स्थितियो का बडा सुन्दर वर्णन पद्मावत के 'गन्धर्वसेन-मन्त्री खण्ड' मे मिलता है, जहां रत्नसेन कहता है कि—

जब लगि गुरु मै अहा न चीन्हा। कोटि अतरपट विच दुत दीन्हा ॥
जौ चीन्हा तौ औरु न कोई। तन मन जिउ जीवन सब सोई ॥

तादात्म्य की **द्वितीय अवस्था फक्द** है। इसमे साधक अपने अहं का विसर्जन कर साध्य मे पूर्णतः समा जाता है। 'रत्नसेन सूली खण्ड' मे रत्नसेन को सूली चढाते समय सैनिक देखते है वह तो निश्चिन्त भाव से पद्मावती के नाम की माला जप रहा है। यह इसकी अवस्था का सुन्दर उदाहरण है। **तादात्म्य की तृतीय अवस्था सुक्र** अर्थात् आनन्द की है। 'वसन्त खण्ड' मे इसका वर्णन करते हुए जायसी का कथन है :—

जोगी दिस्टि दिस्टि सो लीन्हा। नैन रूप नैनन्ह जिउ दीन्हा ॥
जो-मधु चहत परा तेहि पाले। सुधि न रही ओहि एक पियालें ॥

इस प्रकार ढूढने पर सूफी हाल पक्ष के सभी अंगों के उदाहरण भी जायसी के काव्य मे मिल जाते है।

रहस्यवाद के रूप

जायसी के काव्य मे रहस्यवाद के सभी तत्त्वो की सुन्दरतम और सफलतम अवतारणा की समीक्षा के उपरान्त उनके काव्य मे रहस्यवाद के विविध रूपो के दर्शन कर लेना भी सर्वथा उपयुक्त होगा।

आचार्य शुक्ल ने रहस्यवाद की प्रमुख रूप से दो कोटिया मानी है—साधनात्मक और भावनात्मक। उन्होने कबीर को प्रथम कोटि का और जायसी को दूसरी कोटि का कवि माना है। शुक्लजी की धारणा से असहमति प्रकट हुए डा० गोबिन्द त्रिगुणायत का कथन है—"मेरी समझ मे विभाजन का आधार रहस्यानुभूति की साधक प्रक्रियाए होनी चाहिए। रहस्यानुभूति के साधन प्रेम, विरह, सौन्दर्य, योग, ज्ञान, प्रकृति और अभिव्यजना-सौष्ठव होते है। इन साधनो के आधार पर रहस्यवाद के—प्रेममूलक, प्रकृतिमूलक, ज्ञानमूलक या आध्यात्मिक, योग मूलक और अभिव्यक्ति-मूलक भेद होते है।"

जायसी के काव्य मे रहस्यवाद के सभी रूपो का उत्कृष्ट वर्णन हुआ है। इनका सक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

(१) प्रेममूलक रहस्यवाद

जायसी ने सूफी भावना के अनुकूल ईश्वर की कल्पना प्रेम के रूप मे की है। 'पद्मावत' मे लौकिक सौन्दर्य-वर्णन द्वारा अलौकिक सौन्दर्य की व्यजना करके जायसी ने इसी आध्यात्मिक प्रेम की पुष्टि की है। रत्नसेन की मुग्धावस्था के चित्रण मे ब्रह्म-साक्षात्कार की स्थिति का सूफीभावना के अनुकूल चित्रण हुआ है। कतिपय पक्तिया द्रष्टव्य हैं—

सुनि पदुमावति कै असि मया। भा बसत उपनी नै कया॥
सुवा कै बोल पवन होइ लागा। उठा सोइ हनिवंत अस जागा॥
चाँद मिलन कहं दीन्हेउ आसा। सहसौ कहा सूर परगासा॥
उठा फूलि हिरदै न समाना। कंथा टूक टूक बेहराना॥

भावात्मक रहस्यवाद की तीनो अवस्थाओ—जिज्ञासा, ज्ञान (प्रयत्न) तथा मिलन—का अत्यन्त सुन्दर वर्णन जायसी ने अपने काव्य 'पद्मावत' मे किया है। रहस्यवाद के तत्त्वो के विवेचन के अन्तर्गत हम इनका विस्तृत विवरण प्रस्तुत कर चुके है, पिष्ट-पेषण से बचते हुए हम कृपालु पाठको से 'पथ की बाधाए' प्रेम (वियोग तथा सयोग) तत्त्वो को देखने का अनुरोध करते हैं।

(२) प्रकृतिमूलक रहस्यवाद

जब रहस्यवादी साधक अपनी रहस्यानुभूतियो को प्रकृति के माध्यम से अभिव्यक्ति देता है तब उसे 'प्रकृतिमूलक रहस्यवाद' की संज्ञा मिलती है। प्रकृति के माध्यम से रहस्यभावना की अभिव्यक्ति के सात प्रमुख रूप-प्रकार है —

(क) प्रतिबिम्बवाद के माध्यम से प्रकृति के विराट् रूप की रहस्यात्मक अभिव्यक्ति—प्रतिबिम्बवाद दोनो भारतीय अद्वैत और सूफी—दर्शनो मे प्रतिष्ठित है परन्तु दोनो मे थोडा अन्तर है। भारतीय वेदान्त के अनुसार एक ही परमात्मा अनेक रूपो मे उसी प्रकार प्रतिभासित होता है जिस प्रकार लहर-लहर मे चन्द्र भिन्न-भिन्न प्रतिभासित होता है। इस प्रकार वेदान्त भिन्नता का कारण दर्पण की भिन्नता को मानता है और इसे ज्ञान का विषय स्वीकार करता है। सूफी मान्यता के अनुसार जगत् एक दर्पण है, जिसमे ईश्वर प्रतिबिम्बित रहता है। भ्रम के मेघ-पटल के अनावृत्त होते ही साधक को परमात्मा की झाकी मिल जाती है। इस प्रकार सूफी प्रतिबिम्बवाद भावमूलक है। जायसी ने 'मानसरोदक खण्ड' मे इसी प्रतिबिम्बवाद के आश्रय से प्रकृति के विराट् रूप का चित्रण रहस्यात्मक शैली मे किया है :—

सरवर रूप विमोहा हिएँ हिलोर करेइ।
पाय छुअइ मकु पावों तेहि मिसु लहरै देइ॥

(ख) **साध्य के विराट् रूप से प्रभावित प्रकृति का चित्रण**—पद्मावती के अनुपम सौन्दर्य का विश्वव्यापी प्रभाव जायसी के शब्दो मे दर्शनीय है .—

उन बानन्ह अस को को न मारा । बेंधि रहा सगरौ ससारा ।।
गँगन नखत जस जाहि न गने । है सब बान ओहि के हने ।।

(ग) **प्रकृति के माध्यम से परोक्षसत्ता का सकेत**—जायसी ने समासोक्ति के द्वारा प्रस्तुत वर्णनो के प्रसंग मे अप्रस्तुत रहस्यात्मक सत्यो की ओर स्थान-स्थान पर सकेत किया है। 'सिंहलद्वीप वर्णन खण्ड' मे द्वीप के अमराइयो के वर्णन-प्रसंग परोक्षसत्ता का साकेतिक चित्रण दर्शनीय है :—

पंथिक जौ पहुचै सहि घामू । दुख बिसरै सुख होइ बिसरामू ।।
जिन्ह यह पाई छाँह अनूपा । बहुरि न आइ सही यह धूपा ।।

(घ) **परोक्षसत्ता की साधिका के रूप मे प्रकृति-चित्रण**—रहस्यवादी कवि जायसी ने प्रकृति का परोक्षसत्ता की साधिका के रूप मे स्थान-स्थान पर चित्रण किया है। इस प्रकार का एक प्रसग 'नख सिख खड' मे पुष्पो के सुरभि वितरण के पीछे पद्मावती रूपी ब्रह्म के सामीप्य पाने की इच्छा की कल्पना है—

पुहुप सुगध करहिं सब आसा । मकु हिरगाइ लेइ हम बासा ।।

(ङ) **प्रकृति के माध्यम से गूढ आध्यात्मिक सकेतो की व्यंजना**—जायसी मे दार्शनिक सत्यो एव आध्यात्मिक सिद्धान्तो की अभिव्यक्ति के लिए प्रकृति को माध्यम रूप मे ग्रहण किया है। यह दर्शन का सर्वमान्य सिद्धान्त है कि जीव को अज्ञानजन्य भ्रान्ति के कारण अपने समीपस्थ ब्रह्म का परिचय नही मिलता और अज्ञान-पटल के अनावृत होते ही दोनो मे अभेद हो जाता है—इस सत्य की विवृति प्रकृति के माध्यम से दर्शनीय है—

देखि एक कौतुक हौ रहा । अहा अतरपट पै नहिं अहा ।
सर वर एक देख मैं सोई । अहा पानि पै पा नी होई ।।

(च) **प्रकृति के रहस्यपूर्ण वर्णन**—साधारण कवियो के प्रकृति वर्णन जहा यथातथ्य और शुद्ध भौतिक होते हैं, वहा रहस्यवादी कवियो के वर्णन काल्पनिक, दिव्य और रहस्यात्मक होते हैं। उदाहरणार्थ जायसी के सात समुद्रों का वर्णन बडे ही रहस्यपूर्ण हैं। इन समुद्रो के नाम कवि-कल्पित होने के अतिरिक्त प्रतीकात्मक भी है।

(छ) **प्रकृति पर प्रणय भावना का आरोप**—जायसी ने रूपक का आश्रय लेकर आध्यात्मिक प्रणयभावना का प्रकृति पर आरोप किया है। इस प्रकार का एक वर्णन दर्शनीय है—

प्रीति बेलि जनि उरुझै कोई । अरुझै मुह न छूटै सोई ।।
प्रीति बेलि ऐसै तनु डाढा । पलुहत सुख बाढत दु ख बाढा ।।

(३) आध्यात्मिक रहस्यवाद

अंग्रेज विद्वान् स्पर्जन का 'मिस्टिसिज्म इन इग्लिश पोएट्री' मे आध्यात्मिक रहस्यवाद की व्याख्या के सम्बन्ध मे कथन है —"जब रहस्यवादी अपनी धारणाओ को आध्यात्म प्रधान शैली मे इस प्रकार व्यक्त करता है, कि वह भाव और बुद्धि दोनो को आनन्दित करती है, किन्तु उसमे प्रधानता चिन्तन की रहती है, तब उसी को ही 'स्पीरिच्युफल मिस्टिसिज्म' अर्थात् आध्यात्मिक रहस्यवाद का नाम दिया जाता है।"

डा० गोविन्द त्रिगुणायत के शब्दो मे—"रहस्य भावनाए जब गूढ आध्यात्मिक और दार्शनिक सिद्धान्तो की व्यजना को ही प्रधानता देने लगती है तब उसको आध्यात्मिक रहस्यवाद की संज्ञा दी जाती है।" इस रहस्यवाद की अभिव्यक्ति अन्योक्ति, समासोक्ति, वक्रतामूलक, रूपक तथा प्रतीक आदि विविध शैलियो मे की जाती है।

जायसी ने ग्रन्थ के अन्त मे 'उपसहार' शीर्षक के अन्तर्गत अपने काव्य को 'अन्योक्ति' का रूप दिया है। उनके अनुसार—

मैं एहि अरथ पडितन्ह बूझा। कहा कि हम्ह किछु और न सूझा ॥
चौदह भुवन जो तर उपराही। ते सब मानुष के घट माही ॥
—पद्मावत, उपसहार

'मानसरोवर खण्ड' मे कवि ने रूपक द्वारा आध्यात्मिक तथ्य को वाणी दी है। यू रत्नसेन और पद्मावती आदि भी प्रतीक पात्रो के रूप मे ही अवतरित हुए है।

(४) योगमूलक रहस्यवाद

जायसी ने हठयोग की शुष्क प्रक्रियाओ पर दाम्पत्य प्रतीकों का आरोप करके उन्हे मधुर और सरस बना दिया है। हठयोग की परिभाषा सिद्ध सिद्धान्त पद्धति के अनुसार इस प्रकार है—"ह वर्ण सूर्य का द्योतक है और ठ वर्ण चन्द्र तत्त्व का द्योतक हैं।" इस प्रकार हठ शब्द चन्द्र-सूर्य साधना का सकेतक है। योग मे चन्द्र और सूर्य शब्दो का प्रयोग कभी तो इडा और पिंगला के लिए और कभी मूलाधार तथा सहस्रारस्थ तत्त्वो के लिए होता है। 'सिद्ध सिद्धान्त पद्धति' के अनुसार—"पांचवा चक्र कष्ट चक्र है, उसके बाईं ओर इडा नाडी है, जिसे चन्द्रनाडी भी कहते हैं।" 'शिवसंहिता' के अनुसार—"चन्द्र से जो अमृत स्रवित होता है, वह दिव्य रूप होता है। वह सब मूलाधारस्थ सूर्य के द्वारा भक्षण कर लिया जाता है। गुरु के उपदेश से सूर्य को ऊर्ध्वमुखी और चन्द्र को अधोमुखी करके उनके मिलन कराने से विपरीतकरणी मुद्रा सिद्ध होती है।"

---

१ जायसी का पद्मवत काव्य और दर्शन, पृ० ३०५

जायसी ने 'पद्मावत' मे इसी हठयोग—सूर्य-चन्द्र-साधना—की अभिव्यक्ति की है। उन्होने काव्य मे अनेक स्थलो पर रत्नसेन को सूर्य और पद्मावती को चन्द्र शब्द से सम्बोधित किया है। दो एक स्थल दर्शनीय है। रतनसेन पद्मावती विवाह खड मे कवि की प्रस्तुत उक्तिया इसी तथ्य की अभिव्यञ्जिका हैं—

(क) चाद सुरज मनि माथे भागू। औ गावहि सब नखत सोहागू ॥

(ख) देखा चाद सुरज जस साजा। अस्टौ भाउ मदन तन गाजा ॥

(ग) चाद के हाथ दीन्हि जैमाला। चाद अनि सुरुज गियें घाला ॥

'बनिजारा खड' मे तो कवि की स्पष्टोक्ति है—

सुरुज चाँद कै कथ्या कहा। पेमक गहन लाइ चित्त कहा ॥—वधी, ८२

जायसी ने योग साधना के अन्तर्गत 'सहस्रार' और ब्रह्मरन्ध्र का भी रोचक वर्णन किया है। 'सातसमुद्र खड' में सहस्रार का रहस्यात्मक वर्णन दर्शनीय है—

सतए समुद मानसर आए। सत जो कीन्ह साहस सिधि पाए ॥
देखि मानसर रूप सुहावा। हिय हुलास पुरइनि होइ छावा ॥

इसी प्रकार 'सिहल द्वीप खण्ड' मे ब्रह्मरन्ध्र का वर्णन भी रहस्यात्मक ढग से हुआ है—

का परबत चढि देखै राजा। ऊंच मडप सोनै स्ब साजा ॥
अंब्रित फर सब लाग अपूरी। औ तहं लागि सजीवनि मूरी ॥

इस प्रकार के अनेकानेक यौगिक विषयो के भावपूर्ण और रचनात्मक वर्णन कवि ने पद्मावत मे स्थान-स्थान पर प्रस्तुत किए है। जायसी की विशेषता यह है कि उन्होने योगमार्ग तथा मधुर प्रेम-मार्ग का सामजस्य करके शुष्क सिद्धातो की मनोरम अभिव्यक्ति की है।

(५) अभिव्यक्तिमूलक रहस्यवाद

जब कवि साधारण से विचार अथवा भाव को प्रकट करने के लिए जटिल रूपको—प्रतीको का आश्रय लेता है कि पाठक का मन कथ्य को समझना भूलकर अभिव्यक्ति-जनित चमत्कार मे फ्रंस जाता है, तब अभिव्यक्तिमूलक रहस्यवाद की सृष्टि होता है। कहने की आवश्यकता नही कि यह रहस्यवाद का एक कृत्रिम रूप है। यद्यपि सच्चे कवि इस कलाबाजी—कथ्य की चमत्कृतिपूर्ण अभिव्यक्ति—के चक्र मे नही फसते, पुनरपि उनका इससे सर्वथा एवं पूर्णतः मुक्त होना सम्भव नही रहता।

जायसी के काव्य में भी अभिव्यक्तिमूलक रहस्यवाद के अपेक्षाकृत स्वल्प प्रसंग उपलब्ध हैं। क्लिष्ट पारिभाषिक शब्दो के प्रयोग से अभिव्यक्ति में रहस्यात्मकता निम्न अवतरण मे दर्शनीय है—

धातु कमाइ सिखे तै जोगी । अब कस जस निरधातु वियोगी ॥
कहां सो खोए बीरौ लोना । जेहि तें होई रूप औ सोना ॥
कस हरतार पार नहिं पावा । गंधक कहाँ कुरकुटा खावा ॥
कहाँ छपाए चाँद हमारा । जेहि बिनु जगत दैनि अधिआरा ॥

इस वर्णन मे कवि ने जिन क्लिष्ट व्यग्यार्थो की योजना की है, वे इतने जटिल और अस्पष्ट है कि बहुत माथापच्ची करने पर भी कदाचित् पूर्ण रूप से समझ मे आ सकें ।

इस प्रकार जायसी के काव्य मे सभी प्रकार के रहस्यवादो का अपना चरम सौन्दर्य मिलता है । वस्तुतः जायसी एक प्रतिभाशाली कवि थे और उन्होने विलक्षण प्रतिभा से रहस्यवाद की बडी ही उत्तम अभिव्यक्ति की है । एक ओर जहा उन्होने रहस्यवाद को व्यापक रूप मे अपनाया है, वहाँ उसके गुणोत्कर्ष की भी रक्षा की है । डा० गोविन्द त्रिगुणायत के शब्दो मे—"हिन्दी साहित्य ही क्या विश्व साहित्य मे ही उनके जोड का रहस्यवादी कवि कठिनता से मिलेगा ।" वस्तुतः पद्मावत मे रहस्यवाद की जितनी विस्तृत और व्यापक—भावात्मक, साधनात्मक, प्रकृतिमूलक, आध्यात्मिक तथा अभिव्यक्तिमूलक—अभिव्यक्ति हुई है, वैसी किसी एक काव्य मे अन्यत्र कही नही हुई ।

यहा यह उल्लेखनीय है कि जायसी मूलतः सूफी कवि थे । उनका प्रमुख उद्देश्य सूफी साधना के अनुसार आध्यात्मिक प्रेम और विरह को वाणी देना था । इस प्रेम और विरह की आध्यात्मिकता के वर्णन मे रहस्यवाद की अभिव्यक्ति स्वत. हो गई है । सूफियो के अनुसार प्रेम तीन लोक और चौदह खण्डों मे व्याप्त है और उस प्रेम का उद्भव सौन्दर्य से होता है तथा उसकी परिपुष्टि विरह से होती है । विरह की तीव्रता ही प्रेम की गहराई का मानदण्ड है । इस प्रेम के दिव्य होने के कारण उसके वर्णन मे अध्यात्म-भावना आ जाती है और अध्यात्मभावना के समावेश होते ही वर्णन विशेष को रहस्यवाद की सज्ञा मिल जाती है । इस प्रकार जायसी को रहस्यवाद सूफी मत के सर्ववाद तथा वेदान्त के अद्वैतवाद पर आधृत होने के साथ-साथ प्रेमादि से पुलकित है । प्रेम-भावना से पुष्ट होने के कारण यह वर्णन सरस मधुर और रोचक बन पडा है ।

जायसी का प्रकृति-चित्रण

सृष्टि के आदिम युग से ही मानव हृदय प्रकृति की लीलाओ को देखकर कभी विस्मित होता रहा है तो कभी इसके क्षण-क्षण परिवर्तनशील रूप को निहारकर मुग्ध होता रहा है। चिरयौवना प्रकृति ने कभी मानव को हँसाया है तो कभी रुलाया है। प्रिय से मिलन के मादक क्षणो मे प्रकृति मानव को मन-भावन लगी है तो उससे वियुक्त होते ही वही प्रकृति मन को क्षुब्ध करने वाली बन जाती है।

वैदिक युग से लेकर आज तक का सम्पूर्ण साहित्य इस तथ्य का साक्षी है कि प्रकृति नटी ने सृष्टि के अन्य तत्वो की अपेक्षा मानव-मन को सर्वाधिक प्रभावित किया है। प्रकृति की क्रीडास्थली भारत की तो बात ही निराली है, यहा तो प्रकृति ने मानव की सहचरी बनकर भारतीय मनीषा को कल्पना की उडाने भरने का पूर्ण अवकाश प्रदान किया है। इसके साहचार्य से मानव हृदय को जहा सौन्दर्यानुभूति मिली वहाँ मस्तिष्क को चिन्तन का विस्तार भी मिला। ऋग्वेद के उषा सूक्त की मनोहारी कल्पनाएं, तपोवनो एवं सदानीरा नदियो के तट पर वनों शैल मालाओ, गहन कान्तारो के विस्मयकारी वर्णन, रामायण-महाभारत मे चित्रित प्रकृति के विभिन्न रूप, सस्कृत कवियो के उन्मुक्त प्रकृति चित्रण भारतीय साहित्य की अमर थाती है।

साहित्यिक कृतियो के समानान्तर जनजीवन की कण्ठपरंपरा से निसृत विरह गानो, लोक-कथाओ के माध्यम से जनकवियो द्वारा किया गया प्रकृति-वर्णन भारतीय जन-जीवन के प्रकृति-प्रेम का अद्‌भुत साक्ष्य प्रस्तुत करता है। सक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि भारतीय मनीषा ने प्रकृति से जो प्रेरणा ली है वह इस देश के साहित्य और जनजीवन की अमर धरोहर है। मलिक मुहम्मद जायसी ने पूर्ववर्ती भारतीय कवियो की परम्परा का अनुसरण करते हुए 'पद्मावत' मे जहाँ प्रकृति का परम्परागत वर्णन किया है वहा जनकठ से निसृत लोक-गीतो, मिलन और वियोग के मादक वातावरण से अनुस्यूत विरहगीतो की शैली पर प्रकृति-चित्रण कर पद्मावत के काव्य-सौन्दर्य का संवर्द्धन किया है। साहित्य और लोक परम्परा पर आधारित प्रकृति-चित्रण के कारण पद्मावत के काव्य सौन्दर्य मे एक विशेष निखार आया है, जो जायसी की व्यापक और पैनी दृष्टि का परिचायक है। इस सदर्भ मे पद्मावत मे जायसी का प्रकृति-चित्रण एक विशिष्ट महत्त्व रखता है।

जायसी ने पद्मावत मे प्रकृति के विविध रूपो का चित्रण किया है। प्रकृति के इन विविध और विभिन्न रूपो को इस प्रकार विभक्त किया जा सकता है—

१ उपमानो के रूप मे चित्रित प्रकृति ।

२ आध्यात्मिक रूपो के माध्यम से चित्रित प्रकृति ।

३. घटनाओ तथा नैतिक उपदेशो के रूप मे चित्रित प्रकृति दृश्य ।

४ मानवीय हर्ष विषाद की उद्दीपन रूप मे अभिव्यक्ति ।

५. प्रकृति चित्रण—उपमानो के रूप मे ।

पद्मावत के कवि ने भावाभिव्यजना को चरमोत्कर्ष तक पहुचाने के लिए प्रकृति की भावभूमि पर अपनी तूलिका से सौन्दर्य के प्रगाढ एव मार्मिक चित्र प्रस्तुत किये है । शरच्चन्द्रिका मे देदीप्यमान चन्द्रमा मे प्रिय को रमणी का मुखमण्डल दिखाई देने लखता है तो कभी सावन की कजरारी घटाये उसे किसी रूपसि के केशगुच्छो के रूप मे लहराती दिखाई देती है । कभी रूपसी के अधरो की ललाई मे बिम्बाफल की छवि अकित की जाती है तो कभी उरोजो की ऊँचाई मे और वर्तुलता मे भी फलो की स्मृति कराई जाती है । कही नाभि की गहराई मे सरोवर की गहराई का आभास दिया जाता है तो कभी उदर की रोमावली सर्पिणी बन प्रेमी को डसने को प्रस्तुत हो जाती है । जघनोरु कदली मूल से प्रतियोगिता करने लगते हैं तो कोमल बाहुयुग्म स्निग्धता मे कमलश्री से प्रतिस्पर्धा करता दिखाई देता है । तात्पर्य कहने का यह है कि अपनी काव्य-सृष्टि का प्रजापति कवि अपनी रुचि के प्राकृतिक उपमानो के प्रयोग से शास्त्र और लोक-जीवन को परखने वाली अपनी व्यापक दृष्टि का परिचय देता हुआ अपने काव्य-सौन्दर्य की वृद्धि करने मे भी सतत प्रयत्नशील रहता है ।

जायसी ने पद्मावत मे शास्त्र-प्रचलित उपमानो का ग्रहण तो किया ही है पर उसकी प्रकृति जन-जीवन मे प्रचलित प्राकृतिक उपमानो मे आकठ रमण करती रही है । यहा उसके कतिपय उदाहरण प्रस्तुत करना अप्रासगिक न होगा—"रत्नसेन पद्मावती के रूप सौन्दर्य की चर्चा से अभिभूत होकर सिहल की ओर चल पडा । इधर नागमती उसके विरह से बेहाल है । कवि के अनुसार उसके हिय की दशा वैसी बन गयी है जैसे कि तालाब के जल के सूखने के बाद नीचे की मिट्टी की होती है । प्रायः पानी सूखने के बाद सरोवर की नीचे की मिट्टी की परतो मे दरारे पड जाती है, वे दरारे वर्षा के पानी से ही भरा करती हैं । आज नागमती का हिया भी सूखे सरोवर की मिट्टी की तरह टूक-टूक हो गया है । प्रिय की कृपादृष्टि पडने पर ही उसका भग्न हृदय जुड जायेगा ।"[1]

रत्नसेन की कृपादृष्टि की बाट जोह रहा है, ऐसा चित्र प्रस्तुत कर कवि ने नागमती के हृदय में विद्यमान पीडा की गहराई को छूने का एक सफल प्रयास किया है जो सहृदय को झकझोरने की एक विशिष्ट क्षमता रखता है ।

जायसी ने निम्न पंक्तियो मे जिस चित्र की अभिव्यंजना की है वह भी दृष्टव्य है—

तोर जोवन जस समुद हिलोरा ।
देखि देखि जिय बूढे मोरा ।।

यहां उठती जवानी के लिए हिलोरे लेते सागर के उपमान का निदर्शन कर कवि ने सहृदय पाठक को बाध्य कर दिया है कि चर्मचक्षु बन्द कर मनश्चक्षुओं से ही नायिका के उभरते यौवन का एक मूर्त चित्र देख सके ।

लोक-जीवन के इस प्रकार के उपमानों के अतिरिक्त कवि ने नायिका के नख-शिख वर्णन मे एवं जीवन के हर्षविषाद के संदर्भ मे भी प्राकृतिक उपमानों का सहारा लिया है । रूपसी पद्मिनी के ललाट के समक्ष सहस्रकिरण सविता भी तिरस्कृत हो गया—

सहस किरिन जो सुरुज दियाई ।
देखि लिलार सोउ छिपि जाई ।।

तेज एवं आभा के लिए सविता का प्रभाव सर्वविदित है पर नायिका के ललाट की आभा तो उससे भी अधिक है । तभी तो सविता को छिपना पडा । इस प्रकार के अनेकविध उपमानो को कवि ने अपनी तूलिका से संवारने का सफल प्रयास किया है ।

मानव के हर्ष-विषाद को लेकर भी कवि ने जो प्रकृति चित्रण किया है वह अत्यन्त ही सजीव और सटीक है । पद्मावती को सरोवर पर जलक्रीडा करती हुई देखकर सरोवर उल्लास में हिलोरें लेता हुआ उसे अपने अंक मे लेने को आतुर हो उठता है[1] तो प्रकृति के अन्य उपमान—सूर्य, चन्द्र पद्मावती के सती होते समय धधकती चिता में समाते ही मानवी-विषाद के प्रतीक बन जाते हैं—

आजु सूर दिन अथवा आजु रैनि ससि बूड ।
आजु नाचि जिउ दीजिये, आजु आगि हम जूड ।।[2]

यहा इस विषाद की बेला मे दिन और रात मानवी-सुख-दुख के लिए आये है तो सूर्य और चांद को हर्ष-विषाद के लिए प्रस्तुत कर लेखक ने इन भावों की मार्मिक अभिव्यंजना की है ।

---

१ कहा मानसर चाह सो पाई । पारस रूप इहा लगि आई ।।
भा निरमल तिन्ह पायन्ह परसे । पावा रूप रूप के दरसे ।।
जायसी ग्रंथावली, पृ० २५

२. जायसी ग्रंथावली, पृ० २९९

वातावरण के निर्माण के लिए प्रकृति-चित्रण

प्रकृति चित्रण की इस पद्धति के लिए जायसी ने प्रकृति के आलम्बन रूप का आश्रय लिया है। इसमे प्रकृति-चित्रण साधन न होकर स्वय साध्य बन जाता है। सिहलद्वीप वर्णन इसका प्रमाण है। रत्नसेन जब सिंहलद्वीप के पास पहुचता है तो वहाँ के रोमाटिक वातावरण की सृष्टि के लिए कवि ने जो प्रकृति की छवि अकित की है वह इसी शैली के अन्तर्गत आती है। साधन आम्रकानन, रोमाचित करने वाली मन्द-मन्द मलय-समीर, हरिताभ गगन, शान्तिदायिनी शीतल छाया, ग्रीष्म मे भी शीतकाल सदृश ठडक आदि के चित्र प्रस्तुत कर कवि ने एक रोमानी वातावरण की सृष्टि कर जहा एक ओर सिहलद्वीप के प्रकृति वैभव का निदर्शन किया है वहा रत्नसेन और पद्मिनी की भेट से पूर्व ही एक प्रणय की भाव-भूमिका भी प्रस्तुत कर दी है—

> "घन अमराउ लाग चहुपासा। उठा भूमि हुत लागि अकासा ॥
> मलयसमीर सोहावन छाहां। जेठ जाड लागे तेहि माहा ॥
> ओही छाह रैनि होइ आवै। हरियर सबै अकास दिखावै ॥
> फरे आव अति सघन सोहाए। औ जस फरे अधिक सिरनाए ॥
> खिरनी पाकि खाड अस मीठी। जामुन पाकि भवर अस डीठी ॥
> पुनि महुआ चुअ अधिक मिठासू। मधु जस मीठ पुहुप जसवासू ॥[1]

सिंहलद्वीप के इस प्रकृति वैभव की छवि प्रस्तुत कर कवि ने इन वृक्षो पर बैठे पक्षियो की भी एक विस्तृत सूची प्रस्तुत की है। ये पक्षी अपनी-अपनी बोली में उसी परमसत्ता का स्मरण कर रहे है—

> भोर होत बोलैं चुहचुही। बोले पांडुक 'एकै तुही'।
> 'पीव', 'पीव' कर लाग पपीहा। 'तुही', 'तुही' कर गडुरी जीहा।
> 'कुहू', 'कुहू' करि कोइल राखा। औ भिंगराज बोल बहु भाषा।
> 'दही', 'दही' करि महरि पुकारा। हारिल बिनवै आपन हारा।
> जावत पछी जगत के भरि बैठे अमराउँ।
> आपनि आपनि भाषा लेहिं दई कर नाउँ ॥[2]

उपर्युक्त कविता से स्पष्ट है कि वृक्षो पर बैठे सभी पक्षी अपनी भाषा में परमसत्ता की ओर उन्मुख होकर अपने हृदय की पीर को ही निवेदित कर रहे हैं।

वृक्षो तथा पक्षियों की विस्तृत सूची का उल्लेख कर कवि सिंहल के सरोवरों मे विकसित पुष्पो की शोभा की ओर भी आता है—

छिछली तलैयो मे उगे हुए श्वेत कुमुदो को देख कवि उत्प्रेक्षा करता है कि ये कुमुद क्या हैं ? मानो गगन मे तारे झिलमिला रहे हैं। इन तलैयो मे चमकती हुई चपला मछलिया ऐसी लग रही है मानो ये मेघो के भीतर दमकने वाली दामिनी

---

१. जायसी ग्रन्थावली, पृष्ठ ११

२. वही।

–है जो इन छिछली तलैयो मे से पानी लेने के लिए गगन से धरती पर उतरे हैं—

ताल तलाब बरनि नहिं जाही। सूझै वार पार कछु नाही॥
फूले कुमुद सेत उजियारे। मानहु उए गगन मह तारे॥
चमकहिं मच्छ बीजु कै बानी। उतरहिं मेघ चढहिं लेइ पानी॥[1]

प्रस्तुत पक्तियो मे कवि ने ग्राम्य-श्री का जीवन्त चित्र प्रस्तुत किया है जो उसको व्यापक लोकदृष्टि का परिचायक है।

सिंहलद्वीप के वृक्षो, पक्षियो और सरोवरो के वर्णन के लिए कवि ने जो व्यापक सूची प्रस्तुत की है उसमे कही-कही अस्वाभाविकता भी आ गयी है तो भी इसे नितान्त अनावश्यक और अप्राकृतिक नही कहा जा सकता। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने जायसी की इस परिगण शैली को विशेष महत्त्व नही दिया और इसे बहेलिये के कार्य सदृश माना है।[2] जायसी ने सूची या नामावली का परिगणन ही नही किया अपितु इसके उपरोक्त वर्णनो और प्राकृतिक उपादानो के चित्रण मे जो काव्यात्मक सौन्दर्य निहित है उसे बहेलिये की सूची मे कैसे उपमित किया जा सकता है। कवि के कथ्य को यदि मर्मग्राही दृष्टि से देखे तो उसकी व्यापक लोक-सग्रही प्रवृत्ति की सराहना ही करनी होगी। ऐसे स्थलो मे कवि ने श्लेष, उत्प्रेक्षा, उपमा, परिकर आदि अलकारो के माध्यम से जिस रसमयी काव्य सृष्टि के वातावरण का निर्माण किया हे उसे सूची मात्र कह कर उपेक्षित करना कवि की लोक-जीवन-ग्राहिणी दृष्टि की उपेक्षा करना होगा। आचार्यों ने श्रेष्ठ कवि मे जहा अन्य सहज गुणो की अपेक्षा की है वहा उसे 'लोक संग्रही', 'व्यवहारज्ञ', 'जनजीवन एव प्रकृति का चितेरा' भी कहा है। अतः इस प्रकार के स्थल जायसी की प्रतिमा और लोकानुभव को उघाडने वाले ही मानने होंगे न कि ऐसे स्थलो के कारण कवि के महत्त्व को नकारना होगा।

संक्षेप मे यह कहना होगा कि पद्मावत का कवि वातावरण के निर्माण के लिए प्रकृति के आलबनगत बिम्बो की छवि-अंकन मे पूर्णत. सफल रहा है केवल कतिपय स्थल ही ऐसे है जहा परिगणन के आधिक्य के कारण पाठक कवि से तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित करने मे असमर्थ रहता है। वे स्थल भी वही है जहा उन फलो की चर्चा है जो वहा उत्पन्न ही नही होते तथा चित्तौड मे विरहणी नागमती के अश्रु-प्रवाह के साथ 'जल आप्लावन' के दृश्य का चित्र प्रस्तुत किया है।[3]

---

१ जायसी ग्रन्थावली पृ० १३

२. चिन्तामणि भाग २ सस्करण १९४५

३. जगजल बूड़ि जहा लगि ताकी। मोरि नाव खेवक बिनु थाकी॥
सावन बरस मेह अति पानी। भरनि पडी है विरह झुरानी॥
धनि सूखे भरे भादौं माहा। अबहु न आयन्हि सीचेन्हि नाहा॥
जलथल भरे अपूर सब धरती गगन मिलि एक।
धनि जोबन अवगाह महँ दे बूड़त पिउ टेक॥
जायसी ग्रन्थावली पृ० १५२-१५३

प्रकृति मे आध्यात्मिकता के दर्शन

जायसी ने प्रकृतिमूलक तत्त्वो के चित्रण मे आध्यात्मिकता की अभिव्यक्ति भी की है। सृष्टि एव प्रकृति के स्रष्टा 'करतार' का स्मरण करते हुए ही उसने पद्मावत का श्री गणेश किया है—

> सुमिरौ आदि एक करतारु। जेहि जिउ दीन्ह कीन्ह संसारु ॥
> 'कीन्हेसि अगिनि पवन जल खेहा।' 'कीन्हेसि वन खण्ड और जरि मूरि'
> आदि आदि।

यहा ईश स्तुति के साथ ही सृष्टि के मूलभूत तत्त्वो—अग्नि, पवन, जल, मिट्टी आदि के साथ-साथ दैविक शक्तियो—सूर्य, चाद, नखत, विद्युत्, मेघ आदि का उल्लेख किया गया है। इसके साथ ही उस नक्षत्रो, सितारो और धरती की शोभा-वर्द्धक मानवो का वर्णन करते हुए ईश्वर की अपार शक्ति के संदर्भ मे कहा कि उसने बिना स्तम्भ के सहारे के इस विशाल अंतरिक्ष की रचना की है। जायसी का उक्त कथन मध्यकालीन एकेश्वरवादियो की रहस्यवादी कविताओ मे वर्णित 'जिज्ञासा' की कोटि मे आता है जहा साधक ईश्वर के प्राकृतिक उपादानो का वर्णन कर उनकी अविरत कार्यशीलता को देख कर उनके रहस्य जानने को लालायित हो उठता है।

जायसी के उपरोक्त प्रकृति वर्णन मे जो एकेश्वरवाद की झलक दिखाई देती है वह मूलत प्रेमाख्यान परम्परा के कवियो की वह अभिव्यक्ति है जो प्राय सभी प्रेममार्गियो ने एकेश्वरवाद के सदर्भ मे यदा-कदा प्रकट की है।

जायसी प्रभृति प्रेममार्गी कवियो ने एक प्रकार की विशिष्ट शैली का अनुसरण करते हुए प्रकृति-वर्णन के व्याज से जीवन के आध्यात्मिक सत्यो एव प्रेम की अभिव्यजना को अपनी कृतियो मे विशेष महत्ता प्रदान की है। कभी कभी तो इन का वर्णन इतना सश्लिष्ट हो जाता है कि आध्यात्त्मिक सत्य और प्रेमाभिव्यजना मे विभाजक-रेखा खीचना भी संभव नही हो पाता अर्थात् प्रेम के भाव की अभिव्यक्ति मे आध्यात्मिक अर्थ इस प्रकार अनुस्यूत रहता है कि उमे पृथक रूप मे प्रदर्शित करना सभव नही लगता। ऐसे स्थलो पर आध्यात्मिकता का उल्लेख कवि का मूल लक्ष्य बन जाता है। पर प्रकृति चित्रण भी इस पराकाष्ठा का होता है कि उसके वैभव पर मुग्ध हुए बिना भी नही रहा जाता। इस का प्रत्यक्ष प्रमाण जायसी का सिंहलद्वीप वर्णन। सिंहलद्वीप की प्रकृति के विविध रूपो के वर्णन मे कवि इतना खो गया मानो वह उस प्राकृतिक सौन्दर्य से बाहर आना ही नही चाहता वरन् प्रकृति के जिस रोमानी रूप का उल्लेख करता है पाठक भी उसके साथ तादात्म्य सम्बन्ध बनाने को बाध्य हो जाता है, वस्तुत. कवि की सफलता का यही रहस्य है। कवि की इस स्थिति के लिए ही तो अग्नि पुराणकार को कहना पडा कि इस अपार ससार मे कवि भी प्रजापति ही है वह अपनी काव्य-सृष्टि को अपनी रुचि और प्रकृति के अनुरूप बनाता है। वह अपने काव्यसंसार को अपनी कामना के अनुकूल स्वरूप प्रदान करता है। यदि कवि रसिक हुआ तो उसकी काव्य-सृष्टि रसमयी बन जाती है और यदि कर्ता

(कवि) वीतराग हुआ तो उसकी रचना पाठक को भी रस विभोर नही बना पाती ।[१] अस्तु ! जायसी ने सिंहलद्वीप के प्रकृतिवैभव में जहा प्रकृति की क्षण-क्षण परिवर्तनशीला प्रकृति का चित्रण किया है वहा, अन्त मे ऐसे आध्यात्मिक सकेत भी दिये हैं जिन मे लगता है कि यही सिंहलद्वीप ही मानो परमधाम है और यही व्यक्ति का भटका हुआ मन सच्ची शान्ति प्राप्त कर सकता है अन्यत्र नही । लौकिकता के वातावरण मे अत्यन्त मनोरम अलौकिक स्वरूप का सम्यक् निदर्शन कवि ने ऐसे स्थलो के वर्णन मे ही प्रस्तुत किया है जो कि पद्मावत काव्य की एक अमर धरोहर है जो साधकों और प्रेमियो को युगो तक प्रेरणा देती रहेगी ।

कवि के अनुसार सिंहलद्वीप के समीप पहुचने पर लगता है कि मानो स्वर्ग समीप आ गया है । इस द्वीप के चारो ओर आम्रकुजो का सघन-आच्छादन है । यह आच्छादन स्वर्ग से धरती तक जुड़ा हुआ है ।'' धूप आदि विघ्नों को लांघकर जो साधक वहा पहुचता है, उस का चित्त दुख को भुला कर सच्ची शान्ति का अनुभव करता है ।[२]

कवि ने यहा प्रकृति की असीम व्यापकता, सघनता, चिरतनता और स्वर्गीयरमणीयता की कल्पना का मनोहारी चित्रण प्रस्तुत किया है, केवल इतना ही नही सरोवर के समीप जाते ही साधक की भूख-प्यास भी शान्त हो जाती है और कवि कहता है कि जो जितना अच्छा गोताखोर होगा वही इस सरोवर की सीप को पाने मे समर्थ होगा—

देखि रूप सरोवर कँ गइ पियास और भूख ।
जो मरजिया होई तहँ, सो पावै वह सीप ।।

पद्मावत मे इस प्रकार के अन्य भी अनेक स्थल है जहा कवि प्रकृति और मानवी प्रेम के प्रतिबिम्बो द्वारा आध्यात्मिक प्रेम की पृष्ठभूमि का चित्रण करता है । 'राजा सुआ सवाद' खण्ड मे इस शैली को लिया गया ।

नीति तथा उपदेश

उपमान, आलम्बन, आध्यात्मिक सकेत आदि के माध्यम से पद्मावत मे प्रकृति के चितेरे जायसी ने नीति सिखाने एव उपदेश देने के लिए भी प्रकृति-चित्रण का सहारा लिया है पर स्थल एक तो बहुत अधिक नही है और दूसरे उनमे नीति और

---

१. अपारे काव्ये संसारे कविरेव प्रजापति ।
यथास्मै रोचते विश्व तथेदं परिवर्तते ।।
स चेत् वीतराग:
(अग्निपुराण काव्यशास्त्रीय भाग)

२. घन अमराउ लाग चहुंपासा । उठा भूमिहुत लागि अकासा ।
मलय समीर सोहावन छांहा । जेठ जाड लागे तेहि मांहा ।।

उपदेश के आधिक्य के कारण नीरसता भी आ गयी है । आचार्यों के मत मे ऐसे स्थलो के कारण जहा काव्य के प्रबन्ध मे शिथिलता आती है वह सौन्दर्य का वर्धन भी नही हो पाता । इसलिए श्रेष्ठ कवि ऐसे स्थलो को काव्य मे विशेष स्थान नही देते । यहा केवल एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है जहा कवि प्रकृति के दृष्टान्त द्वारा प्रेमी के मन मे अवस्थित प्रेम की स्थिति का चित्रण कर रहा है—

मुहमद बाजी प्रेम कै ज्यो भावै त्यो खेत ।
तिल फूलहिं के सग ज्यो होय फुलायल तेल ।।

उपरोक्त माध्यमो से किए गए प्रकृति-चित्रण के अतिरिक्त जायसी ने पद्मावत मे खार, क्षीर, दधि, उदधि, सुरा, किलकिला और मानसर नामक सात समुद्रो का वर्णन भी किया है, पर इस वर्णन मे स्वाभाविकता की अपेक्षा कल्पना के चित्र अधिक मिलते हैं ।

मानवीय हर्ष-विषाद

इसी प्रकार मानवी हर्ष और विषाद की अभिव्यजना के लिए भी कवि ने कतिपय चित्र प्रस्तुत किए हैं । संवेदनशील प्रकृति के इन चित्रो मे से दो एक का उल्लेख यहा समीचीन लगता है ।

"सरवर रूप विमोहा हिएं हिलोर करेई ।
पाय छुवै मकु पावौं तेहि मिस लहरें देई ।।

यहा सरोवर के भीतर उठने वाली लहरो मे मानव-मन मे होने वाले उल्लास की अभिव्यक्ति दर्शायी गई है । यहा केवल सरोवर के मन के उल्लास का चित्रण नही किया गया अपितु दिखाया गया कि सौन्दर्य से प्रभावित मानव जैसे उस 'सुन्दर' को पाने की लालसा करता है वैसे ही सरोवर ने भी हिलोरो के माध्यम से पद्मा के चरण-स्पर्श को अपना अहोभाग्य मानते हुए अपने मन के उल्लास को लहरो के माध्यम से अभिव्यक्त किया कि इससे उस सुन्दर के चरण-स्पर्श का सौभाग्य तो प्राप्त हो ही जायेगा ।

इस अर्धाली मे जहा कवि ने प्रकृति मे मानव-मन के समान हर्ष को अभिव्यक्त किया है वहां निम्नलिखित पंक्तियो मे कवि ने प्रकृति मे विषाद का चित्रण भी सफलतापूर्वक किया है ।

सरोवर तट पर आई अपूर्व एव अनिन्द्य सुन्दरी पद्मावती ने जब स्नानार्थ अपनी केशराशि को खोला तो मानो समस्त ससार मे अंधकार फैल गया । इस अंधकार का प्रभाव समस्त सृष्टि पर तो पडा ही पर इससे सर्वाधिक विषाद हुआ चकवी को । सरोवर के जल का अवगाहन करती हुई चन्द्रमुखी पद्मावती की छिटकी केश राशि ने जो अन्धकार उत्पन्न किया उसे देख चकवी को लगा कि अब वह प्रिय से विमुक्त होने वाली है । रात भर उसे प्रिय से विमुक्त होकर रहना पडेगा । इस दृश्य को कवि ने इस प्रकार चित्रित किया है—

चकई बिछुरि निशि लखि कहां मिलौ हो नाह।
एक चाद निसि सरग मँह दिन दूसर जल माँह।।[१]

उद्दीपन के रूप में प्रकृति-चित्रण

प्रकृति के विभिन्न उपादानो के माध्यम से मानवीय हर्ष-विषाद की अभिव्यक्ति के कतिपय चित्र यद्यपि पहले दर्शाये गए है तो भी यह षड्ऋतु-वर्णन एवं 'बारहमासा' के वर्णन के माध्यम से कवि ने प्रकृति के जिन उद्दीपन रूपो का चित्र प्रस्तुत किया है उनकी संक्षिप्त चर्चा करना यहां पर अभीष्ट है। कवि ने भारतीय कवि-परम्परा का अनुसरण करते हुए पद्मावत मे जहां षड्ऋतु-वर्णन के माध्यम से पद्मावती के सयोग श्रृंगार के उद्दीपन रूप को प्रस्तुत किया है वहाँ विप्रलम्भान्तर्गत नागमती के विरह को बारहमासा के माध्यम से अभिव्यक्ति दी है। प्रथम मे संयोग के अन्तर्गत परिलक्षित उल्लास और आनन्द का चित्रण है तो दूसरे मे वियोग के अन्तर्गत विषाद को मुखरित किया गया है। सयोग मे प्रकृति उल्लास और आनन्द के वर्धन मे सहायक है तो वियोग मे वही प्रकृति वियोगिनी के प्रति संवेदनात्मक रूप से दर्शायी गयी है। यहाँ प्रत्येक मास मे रूप बदलने वाली प्रकृति नागमती के वियोग को और भी उद्दीपन करती है अर्थात् विरहिणी के विरह को घनत्व प्रदान करती है। इन दोनो प्रसगो को भलीभाँति पढने के पश्चात् पाठक इस निर्णय पर पहुचता है कि षड्ऋतु-वर्णन मे तो कवि ने परम्परा का निर्वाह ही किया है पर बारहमासा मे उसने वियोगिनी नागमती की मनोदशा के चित्रण मे अधिक सफलता पायी है। नागमती के विरह-वर्णन मे जो घनत्व है, भावो की सम्प्रेषणीयता है, मन की कातरता और भावाभिव्यजना है वह षड्ऋतु-वर्णन मे नही आ पायी। तात्पर्य कहने का यह है कि दोनो प्रसगो मे वर्णित प्रकृति के उद्दीपन चित्रो मे 'बारहमासा' के चित्रण अधिक मार्मिक बन पडे है। इनमे कवि ने शास्त्र की अपेक्षा लोकजीवन का अधिक आश्रय लिया है। युगो से सीधे और सरल लोकजीवन मे प्रचलित गीतो की परम्परा मे वर्णित सहज भावो की अभिव्यंजना से यह स्थल भावप्रवणता की दृष्टि से अधिक मर्मस्पर्शी बन पडा है।

सक्षेप में जायसी-चित्रित प्रकृति के उद्दीपन के चित्र इस प्रकार है—

षड्ऋतु के माध्यम से

पद्मावत के षड्ऋतु-वर्णन खण्ड के अन्तर्गत सयोगिनी पद्मावती जो कि नवपरिणीता है, प्रिय रत्नसेन का सामीप्य प्राप्त कर वह हर्षातिरेक मे सराबोर है।

---

१. कवि-परम्परा मे यह प्रसिद्ध है कि चक्रवाक्युग्म दिनभर साथ-साथ रहकर रात्रि में एक-दूसरे से विमुक्त हो जाते है। जायसी ने भारतीय कवि-परम्परा का अनुसरण करते हुए उक्त तथ्य की ओर सकेत किया है।

कोमलागी पद्मावती के लिए नवलवसन्त मादक और सुखदायी बनकर आया है।[1] प्रकृति के विभिन्न उपादानो ने अपनी मादक क्रीडाओ और नैसर्गिक लीलाओ से उसके मनोभावों को और भी उद्दीप्त कर दिया है। भवर कलियो के सग केलि कर रहे है।[2] पद्मावती ने आज स्वर्गिक कुसुमों की माला गले मे धारण की है।[3] फाग के आगमन से होली के गीतो की उछलकूद भी प्रारभ हो गयी है।[4] होली की आग मे विरह तो मानो भस्म ही हो गया है[5] आदि आदि।

वसन्त के समान ग्रीष्म ऋतु ने भी संयोगिनी पद्मावती के सुखो मे वृद्धि की। 'पिया' पास है तभी तो उसे घाम नही सता पाती, रगीन वस्त्रो को पहन कर और कस्तूरी का लेप शरीर पर करके वह अपने को शीतल बना सकती है। कस्तूरी की गन्ध से वह प्रिय को अपनी ओर आकर्षित करती है तो कर्पूरमिश्रित पान का चर्वण कर वह अपने रजित अधरो द्वारा प्रिय को चुम्बन का निमत्रण देने की स्थिति मे आ गयी है।

पद्मावती के सुखो मे अभिवृद्धि करने हेतु इस ग्रीष्म मे अनार और अगूरो मे रस आ गया है। रसाल के फल भी पकने लगे हैं। इन पके फलो को चखने के लिए 'सुआ' भी लालायित हो उठा है।[6]

रूप-यौवनसम्पन्ना पद्मावती के सयोग शृगार को उद्दीप्ति प्रदान करने के लिए कवि ने प्राकृतिक उपादानो को प्रस्तुत कर उसके सयोगजन्य सुखो मे अभिवृद्धि करने का सफल प्रयास किया है।

---

१. प्रथम वसत नवल रितु आई।
सुरितु चैत वैसाख सोहाई ॥ —जायसी ग्रथावली सटीक, पृ० ३४७

२ भँवर पुहुप सग करहिं धमारी। —वही

३. कुसुम हार औ परिमल वासू।
मलयागिरि छिरिका कबिलासू ॥ —वही

४. होइ फागु भलि चाचरि जोरी। —वही

५ विरह जराइ दीन्ह जसि होरी। —वही

६. रितु ग्रीखम कै तपनि न जहाँ। जेठ असाढ कंत घर जहाँ।
पहिरे वह सुरँग धनि झीना। परिमल भेद रहै तन भीना।
पदुमावती तन सियर सुवासा। नैहर राज कत कर पासा।
अधर तबोर कपूर भिवँ सेना। चंदन चरिच खाव नित बेना।
ओबरि जूडि तहाँ सोवनारा। अगर पोति सुख नेति औधारा।
. . . . ।
. . . . ।
दारिवें दाख लेहिं रस बेरसहि आंव सहार।
हरियर तन सुवटा कर जो अस चाखनहार।
जायसी ग्रन्थावली सटीक, पृष्ठ ३४८

वसन्त और ग्रीष्म के समान वर्षा ऋतु मे सावन का गगन सुहावना लगता है तो शस्य-श्यामला भूमि भी कम सुहावनी नही है ।[१] कोकिला की कूक हृदय मे हूक उत्पन्न करती है तो गगन विहारी बक-पक्तिया भी आकाश मे उडती हुई मनोभावो को उद्दीप्त करती है ।[२] बरसते हुए पानी की बूदें स्वर्ण-बिन्दु सदृश दृष्टिगोचर होती है[3] तो वर्षा मे पद्मावती पिय सग झूला झूलने का आयोजन करना भी नही भूलती ।[४]

वर्षा के समान शरच्चन्द्रिका[५], खजन पक्षी[६] भी उस सयोगिनी को कम सुख नही देते । हेमन्त और शिशिर का पाला सयोगियो के लिए तो वरदान ही है ।[७] इन ऋतुओ मे प्रिय का सग तो सोने मे सुहागे का काम कर रहा है ।[८]

ऊपर निर्दिष्ट षड्ऋतु-वर्णन मे कवि ने प्रकृति के जिन उद्दीपनो को प्रस्तुत किया है वे सभी पद्मावती के हर्ष एवं उल्लास की अभिवृद्धि मे सहायक सिद्ध हुए है । इस दृष्टि से संयोगिनी पद्मावती के लिए ये सभी प्राकृतिक उद्दीपन सुखदायी बन पाये हैं । मानवीय हर्ष और उल्लास को अभिव्यक्ति देने एव हर्षातिरेक को चरम सुख तक पहुंचाने मे ही कवि ने इन उद्दीपनों का प्रयोग किया है । कवि का उपरोक्त चित्रण परिस्थिति विशेष मे नायिका के हर्षोल्लास को चरमसीमा तक पहुचाने मे समर्थ तो हुआ है पर इसे परम्परागत वर्णन से अधिक महत्त्व नही दिया जा सकता । क्योकि प्रेम और वेदना के कवि जायसी ने वियोग-पीडा और अन्तर्व्यथा के चित्रण मे जो सफलता प्राप्त की है उसकी तुलना मे उनके संयोग-वर्णन के चित्र अधिक मार्मिक नही बन पड़े ।

बारहमासा

भारतीय साहित्य की सुदीर्घ परम्परा मे कविगण षड्ऋतु-वर्णन द्वारा वियोगिनी और वियोगी की मनोदिशा के चित्रण तो करते रहे है पर प्रख्यात साहित्यिक

---

१. रितु पावस बिरसे पिउ पावा । सावन भादौ अधिक सोहावा ।
जायसी ग्रन्थावली सटीक, पृ० ३४६

२. कोकिल बैन पाति बग छूटी । —वही

३ चमके बिज्जु बरिस जग सोना । —वही

४ औ पिय सगम रचा हिंडोला । —वही

५. सोने फूल पिरिथिमी फूली । —पृ० ३५०

६. चखु अजन दै खंजन देखावा । —वही

७ रितु हेवंत सग पिउ न पाला ।
माघ फागुन सुख सीउ सियाला ॥
धनि औ पिउ महँ सीउ सोहागा ।
दुहुँ अग एकै मिलि लागा ॥ —पृ० ३५०

८. आइ सिसिर ऋतु तहाँ न सीऊ ।
जहाँ माघ फागुन घर पीऊ ॥ —पृ० ३५१

कृतियों मे 'बारहमासा' का उल्लेख नही मिलता। इसके विपरीत लोककाव्य की परम्परा मे जनकवियो ने षड्ऋतु-वर्णन के अतिरिक्त 'बारहमासा' को पर्याप्त महत्त्व दिया है। 'बारहमासा' मे वर्णित प्रभाव को स्वीकार करते हुए रीतिकाल के अनेकानेक कवियो ने अपनी श्रृंगारिक कृतियो मे इसका समावेश कर परम्परा को अपभ्रंश कवियो के समान गरिमा प्रदान की। लोक-परम्परा और जनकविता के प्रति आदरभाव रखने वाले कवि जायसी ने भी विप्रलभ के सदर्भ मे 'नागमती वियोग खण्ड' मे वियोगिनी नागमती की मनोदशा को दर्शाने के लिए इस लोकविधा को साहित्य-विधा के अंतर्गत समादृत किया, फलत· कवि के ऋतु-वर्णन की अपेक्षा कवि का यह प्रसंग अत्यन्त ही मार्मिक और हृदयस्पर्शी बन गया। हीरामन से पद्मावती के रूप-वैभव की चर्चा सुनते ही राजा रत्नसेन सिंहलद्वीप की ओर चल पडा। राजा रत्नसेन के वियोग मे तप्त नागमती के विप्रलम्भ श्रृंगार के सदर्भ मे जायसी ने जो चित्र प्रस्तुत किया है वह इस प्रकार है—

नागमती चित उर पथ हेरा।
पिउ जो गए फिरि कीन्ह न फेरा॥
नागरि नारि काहु बस परा।
तेहि विमोहि मो सौ चितु हरा॥

राजा रत्नसेन को गये बहुत दिन हो गए। इससे नागमती को चिन्ता लगी। वह मार्ग मे बैठी प्रिय के आने की प्रतीक्षा कर रही है। बहुत दिनो तक पति के वापिस न आने कारण वह चिन्ताकुल होकर सोचती है कि उसके प्रिय को किसी चतुर नारी ने अपने वश मे कर लिया है, तभी तो उसे नागमती का ध्यान नही रहा। हीरामन सुआ काल बनकर उसके प्रिय को उससे छीन कर ले गया है। प्रिय को मानो कोई छल कर ही ले गया है। इसी छल के सदर्भ मे पौराणिक आख्यान की ओर संकेत करते हुए कवि ने कहा कि मानो बावन ने बलि के साथ छल किया है—

'भएउ नरायन बावन करा। राज करत बलिराजा छरा।'

कवि ने इस छल पर बावन के प्रसग के साथ-साथ राजा गोपीचन्द और योगी जालंधरनाथ तथा कृष्ण और अक्रूर के प्रसंगो का उल्लेख भी किया है।[1] गोपीचन्द के वियोग मे रानी एव कृष्ण के वियोग मे गोपियो का जीना भी दूभर हो गया था। उसी संदर्भ मे नागमती की मनोदशा का चित्रण किया गया है। प्रिय रत्नसेन से वियुक्ता नागमती प्राचीन भारतीय नारी के पथ का अनुसरण करते हुए अपने प्रिय मे

---

१ मानत भोग गोपी चन्द भोगी।
लै उपसवा जलंधर जोगी॥
... .
लै कान्हहिं भा अकरूर अलोपी।
कठिन वियोग जिये किमि गोपी॥—जा० ग्रं०, पृ० ३५२

कोई दोष नही देखती । उसे लगता है कि उसके साथ विधि ने छल किया है। इससे वह बिना प्रिय को दोष दिये दैव-प्रदत्त वियोग को झेलती हुई कहती है कि जब बडे-बडे लोगो पर भी यह विपत्ति आई है तो भला वह कौन है जो इस विपत्ति से छुटकारा पाती । तभी तो कवि ने उसके विरह के सदर्भ मे पौराणिक आख्यानो की चर्चा की है ।

प्रियवियुक्ता नागमती की कष्टमयी स्थिति का वर्णन करते हुए कवि ने बताया कि वह वियोग की 'पीर' मे घुल-घुलकर अस्थिपजर मात्र रह गयी है। वह अस्थिपंजर भी विरहाग्नि मे दग्ध हो रहा है—

"झुरि झुरि पाजरि धनि भई बिरह कै लागि अग्गि"

विरहिणी नागमती का दुख तब और भी बढ गया जब आषाढ मास मे गगन मे बादल गरजने लगे । आकाश मे चमकती हुई बिजलिया मानो विरहिणी पर प्रहार करने को उद्यत दिखाई देने लगी ।[1] आकाश मे चहुंधा घिरे बादलो को कामदेव की सेना समझकर वह प्रिय से प्रार्थना करती है कि वह आकर उसका बचाव करे ।[2] पुष्य नक्षत्र सिर पर आ गया है पर पति के बिना कोई ऐसा प्राणी नही जो उसकी इस दारुण विपत्ति मे रक्षा कर सके—

"पुष्य नक्षत्र सिर ऊपर आवा । हौ बिनु नाह मन्दिर को छावा"

आषाढ तो दुःखदायी था ही सावन उससे भी कष्टदायी सिद्ध हुआ । जहा तक वियोगिनी की दृष्टि जाती है उसे जल-थल दिखाई देता है । इस अथाह जलराशि मे उसकी नैया का खेवनहार कही भी दिखाई नही देता—

जगजल बूढि जहा लग ताकी ।
मोर नाव खेवक बिन थाकी ॥

बिना खेवनहार के मानो वह थक सी गयी है । अब उसे जीवन एक बोझ प्रतीत होने लगा है । इस निराशापूर्ण स्थिति मे वह सोचती है कि प्रिय और उसके बीच अनेक पहाड, अगम समुद्र और बीहड जगल बाधक बन कर खडे है । उसके पख तो है नही कि वह इन सभी बाधाओ को लाघ कर प्रिय से भेंट कर सके—

परबत समुंद अगम बिच बन बीहड घन ढख ।
किमि करि भेंटौ कत तोहि ना मोहि पाँव न पंख ॥

बीतते-बीतते सावन तो गया पर भादौ की अंधेरी रात तो और भी भयावनी लगने लगी । प्रिय के बिना सूने घर मे सूनी सेज उसे नागिन के समान काटने को आती है । वर्षा के निरन्तर प्रवाह मे वियोगिन धरती का तो जल-धाराओ के माध्यम से प्रिय-

---

१. चढा अषाढ गगन घन गाजा । साजा विरह दुद दल बाजा ॥
खरंग बीजु चमकै चहु ओरा··· ··· ··· ···

२. ओनै घटा आई चहुं फेरी । कन्त उबारू मदन हौ घेरी ।

जा० ग्रं० सटीक, पृ० ३५४

मिलन होने लगा है पर नागमती की वियोगजन्य पीडा समाप्त होने मे नही आती। काश ! आज इस वर्षा में उसका 'पिय' भी उसे मिल पाता और उस डूबती हुई को भी सहारा मिल जाता।[1]

आश्विन के लगते ही सरोवरो मे जल सूखने लगा है। पर उसके 'पिय' अब भी परदेस मे बसे है। कोयल भी अब पिय को प्राप्त कर तृप्त हो गयी है। हस तालाबो पर आने लगे हैं, सारस पक्षी भी अब क्रीडा करने लगे हैं। इस उल्लासमय वातावरण मे विरह का हाथी उसके शरीर को खाना चाहता है। इस समय उसका पिय कही सिंह बन कर आए तो उसे बचा सकता है अन्यथा विरह उसे समाप्त ही कर देगा।[2]

कार्तिक के आते ही सर्वत्र हर्ष और उल्लास छा गया। चन्द्रमा अपनी सम्पूर्ण कलाओ से धरती को आह्लादित करने लगा, पर विरहिणी नागमती की सूनी सेज और सूना सदन उसे और भी व्यथित करने लगे हैं। सारी सखिया पर्वों और उत्सवो के गीत गा रही हैं अबकि नागमती अब विरह के पजे मे फसी हुई है। कन्त के बिना उसे इन पर्वों और उत्सवो से क्या लेना, वह तो आज भी 'पिय' के वियोग मे धूनी रमाने पर बाध्य है।

अगहन के दिन छोटे और राते लम्बी हो गयी है। विरहिणी इतनी लम्बी रात पिय बिना कैसे गुजारे, इस दूभर स्थिति का चित्र खेंचते हुए कवि ने कहा कि वह तो रात-भर दीपक की बाती के समान जलती रहती है। उसका यौवन ही उसे भस्म कर रहा है। विरहाग्नि मे जलती हुई नागमती पिय के लिए संदेसा इन शब्दो मे दे रही है—

पिय सो कहेउ सदेसडा हे भंवरा हे काग।
सो धनि विरह जलमरी तेहिक धुआ हम लाग॥

पूस मास क्या आया तन थरथर कांपने लगा। सूर्य दक्षिण दिशा का सेवन कर स्वयं को गर्म करने लगा है। विरह के मारे जीना और भी दूभर हो गया है। कन्त पास होता तो वह उसे भेंटती पर वह तो समीप है नही। चकवी के विरह की भी एक सीमा है, वह भी रात के वियोग के पश्चात दिन मे प्रिय के पास पहुंच जाती है पर नागमती का वियोग तो असीम बन गया है। विरहरूपी बाज ने विरहिणी के शरीर पर दृष्टि गढा रखी है, लगता है मरने के बाद भी वह उसे नही छोडेगा। विरह की चरम अवस्था मे उसके शरीर का रक्त सूखने लगा है। सारी देह अस्थि-चर्ममय बन

---

१. जल थल भरे अपूरि सब गगन धरति सब एक।
धनि जोबन औगाह महँ दे बूडत पिय टेक॥

जा० ग्रं० सटीक, पृ० ३५६

२ विरह हस्ती तन सालै खाई करै तन चूर।
वेगि आई पिय बाजहु गाजहु होइ सदूर॥—जा० ग्रं०, पृ० ३५७

गयी है। इस दुखद स्थिति मे भी उसे नही लगता कि उसके प्रिय उसके पास शीघ्र आ पायेंगे।

माघ के पाले मे भी उसका प्रिय नही आया। माघ की इस ठड मे वह प्रार्थना करती है कि उसका प्रिय सूर्य बन कर उसके पास आ जाये ताकि उसके शीत का अपहरण कर सके।

फागुन के पवन के झकोरो ने वातावरण को मादक बना दिया। होली की धम्मार भी प्रारभ होने लगी है। पुष्प-पत्र विहीन वृक्षो के दिन भी फिरने लगे है पर उसका प्रिय अब भी नही आया। इस पर विरहिणी अपने शरीर को जला कर राख करना चाहती है ताकि यह राख कही उस मार्ग पर जा बिखरे जहा उसका कन्त विचरण कर रहा हो—

> यह तन जारौ छार कै कहौ कि पवन उडाय।
> मकु तेहि मारग होइ परौं कन्त धरे जहँ पाव॥

पति के प्यार मे पगी नागमती अपना शरीर भस्म कर अपने को प्रिय पर न्योछावर कर प्रेम मे समर्पण के भाव को यहा चरमसीमा तक ले जाती है। उसे प्रिय से कुछ लेना नही केवल देना ही देना है। यही उसके विरह की चरम परिणति है।

चैत्र लगते ही वसन्त की मादकता चहु ओर दिखाई देने लगी। समस्त विश्व मे उल्लास छा गया पर उसका घर तो सूना है इसलिए उसे कोई हर्ष नही। भवरा मालती के पीछे फिर रहा है। पर उसे तो फूल काटो के समान दिखाई देते हैं। विरह-कातरा नागमती अपने यौवन को प्रिय के लिए सुरक्षित रखना चाहती है पर विरह उस के यौवन को अक्षुण्ण नही रहने देगा, इस भय से वह आतकित है पर उसे बचाने को प्रिय कही आता नही। फलत उसकी व्यथा और भी बढ जाती है।

वैशाख लगते ही गर्मी शुरू हो गयी। लोग गर्मी को भगाने के उपचार करने लगे हैं पर नागमती को चिन्ता है कि उसका मनरूपी कवल इस घाम मे मुरझाने लगा है, उसका प्रिय ही उसे सीचे तो वह बच सकेगा अन्यथा उसके मुरझा जाने का भय उसे व्यथित कर रहा है—

> कमल जो विगसा मानसर छारही मिलै सुखाई।
> अबहु बेलि फिरि पलुहै जो पिउ सीचै आई॥[1]

जेठ लगते ही गर्म लुएं चलने लगीं। गर्मी के मारे सारा संसार झुलसने लगा। विरह-रूपी हनुमान उसके शरीर-रूपी लका को जलाने लगा है। उसके शरीर में लगी विरहाग्नि के कारण वह परेशान है। विरह कौआ बन उसके शरीर को नोचने लगा है। उसे भय है कि प्रिय के आने पर उसका शरीर कही दिखाई न

---

१. तुलना कीजिए—

> प्रेम प्रीति का बिरवा चले लगाई।
> सीचन की सुध लीजै मुरझ न जाई॥ (रहीम)

देगा। वह बार-बार प्रार्थना करती है कि उसके समाप्त होने से पूर्व प्रिय उसके पास एक बार अवश्य आ जावे।

इस बारहमासा मे कवि जायसी ने लोकगीतो की परम्परा का अनुसरण करते हुए विरह के जो अनूठे चित्र प्रस्तुत किये हैं, प्रकृति के विभिन्न उपादानों के माध्यम से विरहिणी नागमती के विरहभाव को जिस रूप मे उद्दीप्त किया है उससे स्पष्ट है कि इस कवि की लेखनी संयोग-शृंगार की अपेक्षा वियोग के चित्रों को अंकित करने मे अधिक फलवती सिद्ध हुई है। नागमती के इस विरहवर्णन मे प्रकृतिगत प्रभावो का मार्मिक और अनूठा वर्णन कर कवि ने विरहिणी की मन स्थिति का उद्घाटन सफलतापूर्वक किया है। यहा कही तो प्रकृति विरहिणी की विरह-वेदना को घनत्व देती दृष्टिगोचर होती है और कही प्रकृति स्वयं विरहिणी के साथ तादात्म्य स्थापित करने लगती है।

संक्षेप मे यह कहना होगा कि जायसी ने पद्मावत मे विविध शैलियो का आश्रय लेकर प्रकृति-चित्रण प्रस्तुत किया है। विभिन्न प्रतीको से प्रकृति मानव के सुख-दुःख की चिरसंगिनी तो रही ही है पर विप्रलम्भान्तर्गत वर्णित चित्रो मे अनेक स्थल अत्यन्त ही मार्मिक बन पडे हैं।

जायसी का भावपक्ष

काव्य-सौन्दर्य के विवेचन के लिए उसके भावपक्ष और कलापक्ष का विवेचन किया जाता है। भावपक्ष के अन्तर्गत कवि की रसानुभूति का अध्ययन किया जाता है जबकि कलापक्ष के अन्तर्गत कृति के बाह्य पक्ष—भाषा, शैली, छन्द, अलकार एवं काव्य के कलेवर सम्बन्धी तत्त्वो का विवेचन अभीष्ट होता है। प्रस्तुत प्रसंग मे जायसी-रचित पद्मावत के भावपक्ष रस, भावादि का विवेचन एवं विश्लेषण ही अभीष्ट है। आचार्यों ने महाकाव्य मे शृंगार, वीर, करुण मे से किसी एक रस को ही महाकाव्य का अङ्गी रस होना स्वीकार किया है। पद्मावत काव्य मे जायसी ने सूफी प्रेम-भावना का अनुसरण करते हुए प्रेम को ही प्रमुखता दी है। इस दृष्टि से पद्मावत एक प्रेमकाव्य भी कहा जा सकता है। इस प्रेम-प्रधान कृति मे शृंगार रस को अङ्गीरस के रूप मे प्रस्तुत करना एक सहज और स्वाभाविक बात है। शृंगार के अतिरिक्त कवि ने यहा वीर, करुण और वात्सल्य को भी यथास्थान चित्रित किया है। अङ्गीरस होने के कारण पहले यहा शृंगार रस का विवेचन ही समीचीन होगा।

शृगार रस

शृंगार रस को आचार्य विश्वनाथ ने उत्तम प्रकृति कहा है—

'उतम प्रकृति प्रायो रस शृंगार इष्यते'

इस रस के आलंबन नायक और नायिका है। नायिका न तो दूसरे की पत्नी हो और न ही अनुरागविहीना या अन्यानुरक्ता वेश्या ही हो। चन्द्र, चन्दन, भ्रमर आदि के कारण यह रस उद्दीप्त होता है। उग्रता, मरण, आलस्य, जुगुप्सा को छोड शेष सभी संचारी भाव इस रस मे विद्यमान रहते है। रति इसका स्थायी भाव है।[1] आचार्यों द्वारा वर्णित इस शृंगार रस के दो भेद हैं सयोग और वियोग। वियोग को विप्रलंभ

---

१. परोढा वर्जयित्वा च वेश्या चाननुरागिणीम्।
आलम्बनं नायिका' स्यु दक्षिणादयाश्च नायका:॥
चन्द्र चन्दन रोलाम्बराद्यु द्दीपक मतम्।
भ्रू विक्षेप कटाक्षादिरनुभाव. प्रकीर्तित:॥
त्यक्त्वोग्र मरणालस्य जुगुप्सा व्यभिचारिण:॥

—साहित्य दर्पण

शृंगार भी कहा जाता है। जायसी के संयोग चित्रों मे जहां सजीवता और रसात्मकता मिलती है वहा वियोग या विप्रलंभ शृंगार के चित्रो मे वेदना साकार हो उठी है। शृंगार के इन रूपो मे वैविध्य की अपेक्षा गम्भीरता अधिक दृष्टिगोचर होती है।

संयोग शृंगार

जायसी ने प्रस्तुत महाकाव्य मे पद्मावती और नागमती के माध्यम से संयोग शृगार की अभिव्यजना की है। रत्नसेन-नागमती के संयोग शृगार मे कवि ने अधिक रस नही लिया, इसलिए इसका एकाध चित्र ही उसने प्रस्तुत किया है, जिस मे भाव रस की कोटि तक नही पहुच पाया। एक वर्ष से भी अधिक समय के बाद रत्नसेन जब चित्तौड वापस आया तो कवि ने एक अत्यन्त ही साधारण चित्र मे उनकी मिलन-रात्रि का वर्णन किया है। उस मिलन की मधुयामिनी मे भी—जिस यामिनी की प्रतीक्षा मे नागमती वर्ष-भर से तडपती रही, नागमती ने 'मान' करते हुए पति पर व्यग्य करते हुए कहा—'तू तो किसी के प्रेम मे जोगी बन कर चल पडा और मैं तुम्हारे प्रेम मे छार-राख हो गयी हू—

'तू जोगी होइगा वैरागी। हौ जरि छार भएउ तोहि लागि ।।'

× × ×

मिलन को और भी मधुर बनाने के लिए 'मान' के अन्तर्गत व्यग्यबाण अधिक महायक होते है। इससे नायक मे मिलन की तीव्रता भी अधिक जग जाती है। इस व्यग्य-वचन को सुन रत्नसेन दक्षिण नायक मे विद्यमान चातुर्य का सहारा ले कर उसे फुसलाने के लिए कहता है कि—

नागमती तू पहल बियाही। कठिन बिछोह जहै जनु दाही ।।

नायक अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए इस प्रकार के चापलूसी के वचन कहने के उपरान्त उसकी मीठी भर्त्सना भी करता है कि स्त्री तो पत्थर दिल की होती है जो बहुत दिनो बाद आने वाले प्रिय के साथ भेंट नही करती। निम्न पक्ति मे नायक की चापलूसी भी द्रष्टव्य है—

'भलेहि सेत गगा जल दीठा। जमुन जो साम नीर अति मीठा।'

पद्मावती गौर वर्ण की थी और नागमती श्यामा। इस समय रत्नसेन श्यामा की सेज पर है तभी उसे फुसलाते हुए कहता है कि निस्सदेह गंगा का जल श्वेत है पर यमुना के श्याम वर्ण के जल की मिठास तो और ही है। आज उसे श्यामा से अपना मनोरथ सिद्ध करना था तो श्यामा की श्लाघा ही करनी थी। इस प्रकार की अनेकानेक बातें कह कर रत्नसेन ने उस सलोनी श्यामा नागमती को अन्तत फुसला ही लिया। तभी तो वह कहता है कि वह जब प्रणय-याचना कर रहा है तो वह प्रिया उसे आज निराश न करेगी। रत्नसेन के यह कहते ही नागमती का मान काफूर हो गया और वह नायक के गले लग गयी—

कंठ लाई कै नारि मनाई। जरी जो बेलि सींचि पलुहाई ॥

वर्ष भर प्रिय के विरह मे जलने वाली नागमती का जब प्रिय से मिलन हुआ तो वह प्रणय-विभोर हो उठी—

फरे सहस साखा होई दारिउं दाख जभीर।
सबै पखि मिलि आइ जोहारे लौटि उहै भइ भीर ॥

इस के पश्चात् कवि ने नायक-नायिका के मध्य होने वाले व्यंग्य-विनोद की झाकी तो प्रस्तुत की है पर उसमे जो गहराई होनी चाहिए थी वह नही है। लम्बे बिछोह के बाद प्रिय को पाने वाली नायिका की जो मनोदशा यहां दिखानी चाहिए थी वह यहा नही मिलती। 'मुझे भोग से कोई सरोकार नही, मुझे तो मेरा प्रिय मिला दो' पक्षी का इस प्रकार उच्चादर्श प्रेरित सदेश देने वाली नागमती मिलन के इन क्षणो मे साधारण व्यग्य-वचन और सौतिया डाह की बात कह ही रह गयी, यह एक विचित्र बात है जिस की ओर कवि का ध्यान नही गया। संयोग के इस चित्र मे वाक्चतुरता, व्यग्य और सौतिया डाह तो है पर रसिक को संयोग के आह्लादमय क्षणो मे रस मे विभोर करने की क्षमता इस चित्र मे नही है, संभवत· कवि अपनी लेखनी की शक्ति को वियोग के चित्रो के लिए सुरक्षित रखना चाहता हो वरन् कोई कारण नही कि मिलन का यह चित्र भी आनन्द सागर मे न डुबा पाता।

पद्मावती का सयोग शृगार

पद्मावती-रत्नसेन-भेंट से पूर्व पद्मावती मे जिस शृगार का वर्णन कवि ने किया है और अपनी मदनव्यथा उसने हीरामन को जिस रूप मे बतायी तथा उसकी धाया ने उसे जिस प्रकार धैर्य दिलाया है, वह सारा वर्णन कामभाव के अन्तर्गत ही आता है न कि शृगार के। शृगार में आलम्बन का होना आवश्यक है वहा बिना आलंबन के मदन के प्रभाव का उल्लेख है अतः उसे काम ही कहना चाहिए।

रत्नसेन से भेंट कर सिंहलद्वीप मे लौटे हीरामन के बताने पर पद्मावती मे जो भाव उदय हुआ उसे पूर्वराग—विवाह पूर्व का प्रेम—कहा जा सकता है। वही पूर्वराग चरमस्थिति मे तब जा पहुचा जब विवाह के अवसर पर नायिका ने नायक को पहली बार देखा। इस प्रथम दर्शन मे उसमे मिलन की जिस उत्कंठा का चित्र कवि ने अंकित किया है वह अत्यन्त ही मनोहारी मार्मिक है—

प्रिय को देखते ही प्रिया के नेत्रो मे एक मादक उल्लास छा गया। अधर फडकने लगे। दिल आपे से बाहर होने लगा। उरोजो मे आवेग की स्थिति आने से कसनी के बन्द ही टूट गए। आवेग की अतिशयता से हाथो के वलय (कगन) फूट गए। इस मन.स्थिति मे वह स्वयं को सभाल न सकी और अचेत हो गयी—

"हुलसे नैन दरस मदमाते। हुलसे अधर रग रस राते।
हुलसा वदन ओप रवि पाई। हुलसि हिया कंचुकि न समाई ॥
हुलसे कुच कसनी बन्द टूटे। हुलसी भुजा वलय कर फूटे।

आजु चान्द घर आवा सुरु। आजु सिंगार होइ सब चूरू ।।
अग-अंग सब हुलसे, कोउ कतहु न समाई।
ठावहिं ठांव विमोही, गइ मुरझा तन छाइ ।।"

प्रथम मिलन की अतिशय उत्कंठा के बाद कवि ने मिलन की मधुयामिनी का जो चित्र दिया है उसे रतियुद्ध ही कहना होगा। दोनो के मिलन की छीना-झपटी को राम-रावण के युद्ध से उपमित कर कवि ने जहा मसनवी शैली अत्युक्ति को अधिक महत्त्व दिया वहा इस मे अश्लीलता का आभास भी मिलता है।

इस से मिलन की मादक वेला मे जो गुदगुदी उत्पन्न करने एवं पाठक को रस के अथाह सागर मे निमज्जित करने का कवि को अवसर मिला था उसके अनुरूप पृष्ठ-भूमि यहा नही बन पाई। कहा तो वह नवपरिणीता अपने को बाला और प्रिय को युवा मान सेज पर जाने मे संकोच प्रदर्शित कर रही थी और कहा पहली रात मे ही दोनों को इतना सक्रिय दिखाया गया कि मानो नायिका मुग्धा नही अपितु प्रौढा है जो रतिरण मे जूझने की पूरी क्षमता रखती है। यह मनोवैज्ञानिक तथ्य कवि की आख से संभवतः ओझल हो गया है। प्रथम मिलन का चित्र इस प्रकार है—

भएउ जूझ जस रावन रामा। सेज बिधासि विरह-सग्रामा ।।
लीन्ह लक कंचन गढ टूटा। कीन्ह सिंगार अहा सब लूटा ।।
औ जौबन मैमत विधाँसा। बिचला बिरह जीउ जो नासा ।।
टूटे अंग अंग सब भेसा। छूटी माग मग भए केसा ।।
कचुकी चूर, चूर भइ तानी। टूटे हार, मोती छहरानी ।।
बारी, टाड सलोनी टूटी। बाहु कगन कलाई फूटी ।।
चन्दन अंग छूट अस भेंटी। बेसरि टूटि, तिलक गा मेटी ।।
पिउ पिउ करत जो सूखि रही धनि चातक की भान्ति।
परी सो बूद सीप जनु, मोती होइ सुख-सान्ति ।।

उस मिलन मे क्षरण के उपरान्त उपलब्ध सतोष को सीप मे पडने वाली बूद के प्रतीक से व्यंजना देते हुए कवि ने अपनी अनूठी सूझ का परिचय दिया है।

इस मिलन पर पाठक का मस्तिष्क स्वच्छन्द होकर कोई कल्पना न कर पाये इससे पूर्व ही कवि ने पद्मावती के मुख से कहलवा दिया कि प्रिय इस मदिरा का पान एक साथ न कर इसे धीरे-धीरे ही चखना श्रेयस्कर होगा, पर रत्नसेन तो आज ही एक साथ सारा आनन्द लूटने की आतुरता दर्शाने लगता है। इस प्रेमसुरा को एक साथ पीने की पुष्टि मे वह कहता है कि इसके पान के पश्चात् तो जीवन-मरण का भय ही नही रहता—

"सुनु, धनि ! प्रेमसुरा के पिये। मरन जियन डर रहे न हिये"

इस प्रथम मिलन का पद्मावती पर जो जादु हुआ उसमे तो प्रिय के रंग मे वह पूर्णतः ही रग गयी। सभोग माधुरी को चखने के उपरान्त उसने सखियो को जो कहा

उससे उसकी मदोदशा को समझने मे तनिक देर नही लगती—

करि सिंगार तापहँ का जाऊँ । ओही देखहु ठावहि ठाऊँ ।।
जौ जिउ मांह तौ उहै पियारा । तन मन सौ नहिं होइ निनारा ।।
नैन माँह है उहै समाना । देखौं तहाँ नाहिं कोउ आना ।।

पद्मावती रत्नसेन की इस सयोग छवि का विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि नागमति रत्नसेन के सयोग से इसमे कवि ने अधिक रस लिया है। उस चित्र की अपेक्षा यह अधिक मधुर भी है । यहाँ संभोग-माधुरी को चरम बिन्दु पर पहुचाने का सफल प्रयास भी मिलता है पर इस मिलन-यामिनी मे संभोग से पूर्व दोनो में अत्यधिक वार्तालाप, तर्क-वितर्क के माध्यम से योग की चर्चा, योगी के छलावो का उल्लेख वातावरण को प्रभविष्णु बनाने मे सहायक नही होता । वर्षो की प्यारभरी लालसा मन मे संजो कर बैठी नायिका जो प्रथम दर्शन मे ही अचेत हो गयी थी । मधुयामिनी मे श्रृगार के अन्तर्गत विभावो और सचारियो के द्वारा इस दृश्य की जो अक्षुण्ण छाप मन पर अंकित कर सकती थी उसका अभाव यहा देखने को मिलता है ।

ऋतु-वर्णन के प्रसग पर भी जो सयोग श्रृगार का वर्णन कवि ने किया है वह वर्णन भी परम्परागत होने के कारण मार्मिक नही बन सका । डॉ० कमल कुलश्रेष्ठ के मतानुसार, "सयोग के ये विविध चित्र अपने आप मे विभिन्न है । कही पर कोई भी समानता नही । नागमती मे नारीत्व का माधुर्य है । पद्मावती के चित्रो मे सर्वत्र एक अहंकार की भावना है जो चित्रो की मार्मिकता मे कमी ला देती है । यदि पद्मावती का नारीत्व भी वैसा ही विनम्र होता तो सयोग के ये चित्र अति सफल कहे जाते । शायद कवि ने अपने अतृप्त जीवन की तृप्ति इन काल्पनिक वर्णनो मे की हो । परन्तु यह काल्पनिक चित्र इतने स्वाभाविक एव मार्मिक नही है कि पाठक को सयोग श्रृगार के मधुर वातावरण मे डुबा सकें ।[1]

विप्रलंभ श्रृंगार

विप्रलंभ के बिना सयोग श्रृगार परिपुष्ट नही हो सकता । मिलन के मादक क्षणो मे उपलब्ध आनन्द की परख के लिए भी विरह की कसौटी परमावश्यक है । विरह-व्यथा की अन्धकारपूर्ण रात्रि के पश्चात् ही मिलनयामिनी की चन्द्रिका मे एक प्राण दुई गात होकर प्राणो की प्यास बुझाई जा सकती है । सयोग श्रृंगार मे प्रणय और प्रेम का व्यय होता है तो विप्रलंभ मे सचय । संचय के बिना व्यय किस काम का । प्रेम की इस अपरिहार्य स्थिति के कारण ही कविगण विप्रलभ की महत्ता का प्रतिपादन करते आए है । व्यापकता और प्रभाव की दृष्टि से भी विप्रलभ का महत्त्व असदिग्ध है ।

---

१ मलिक मुहम्मद जायसी, पृ० १६९-७०

आदि कवि वाल्मीकि के काव्य के प्रथम श्लोक का सर्जन भी श्लोक से ही हुआ था, जहा कवि ने परदुख कातर होकर क्रौचहन्ता व्याध को शाप ही दे डाला। ऐ व्याध ! तुझे युगयुगान्तर तक कभी प्रतिष्ठा न मिलेगी, क्योकि तूने प्रणयी युगल मे से एक की अकारण हत्या कर दी है—

मा निषाद प्रतिष्ठा त्वमगम शाश्वती समा।
यत्क्रौच मिथुनादेक अवधी काम मोहितम् ॥[1]

आदि कवि की विरह-वेदना ने युगकाव्य रामायण की सर्जना की तो यही विरह-वेदना कालिदास के दिल मे शकुन्तला और भवभूति के हृदय मे सीता के रूप मे साकार हुई और जायसी के पद्मावत मे यह नागमती के रूप मे अवतरित हुई। सूफी कवि आध्यात्मिक साधना के कारण स्वय ईश्वर के विरह मे तडपा करते थे इस लिए उनके काव्यो मे विरहानुभूति के चित्र अत्यन्त हृदयस्पर्शी बन पडे है। विरहानुभूति इन कवियो के काव्य की मूल चेतना बन गयी है। सूफी कवि उस्मान का कहना है कि जो साधक स्वयं को विरहाग्नि मे तपा लेता है वह कुन्दन के समान देदीप्यमान हो जाता है। इस मूल धारणा के कारण सूफी काव्यो की प्रेम-भावना विप्रलंभ शृगार मे अपने चरम बिन्दु तक पहुंच गयी है। जायसी ने अपने आध्यात्मिक विरह का उल्लेख करते हुए कहा कि प्रिय के विरह मे जलने के कारण उसके शरीर मे न रक्त रहा है और न मास। जो उस विरही को देखता है उसे उसकी शक्ल पर हँसी आ जाती है पर जब उसे मेरी व्यथा को सुनने का अवसर मिलता है तो उसकी आँखो मे आसू आ जाते है—

"मुहम्मद कवि जो विरह भा, न तन रकत न मासु।
जेइ मुख देखा तेइ हसा, सुनि तेहि आयउ आसु॥"

सूफी मतानुसार जिस साधक के दिल मे विरह होता है उसके लिए यह ससार स्वच्छ दर्पण हो जाता है। इसमे परमात्मा का आभास अनेक रूपो मे पडता है। तब साधक को दिखाई देता है कि सृष्टि के सम्पूर्ण व्यापार उसके समान ही

---

१. तुलनार्थ देखे—
कविवर पन्त ने भी आदि कवि को वियोगी कह कर आह और वेदना से कविता की उत्पत्ति मानी है। जब दुख और पीडा भीतर न समा सकी तो आंसुओ के बहाने वह बाहर आ गयी :

वियोगी होगा पहला कवि।
आह से उपजा होगा गान॥
उमड कर आँखो से चुपचाप।
बही होगी कविता अनजान॥
× × ×
मैं रोया तुम कहते हो गाना।
मैं फूट पड़ा तुम कहते छद बनाना॥—बच्चन

प्रिय के विरह मे तडप रहे है। विरह के इसी भाव को भली भान्ति प्रकट करने के लिए सूफियो ने स्त्री-प्रेम को अपनाया है। एक सूफी सन्त के अनुसार "जिस प्रकार ईश्वर की प्रतिच्छाया के रूप मे मनुष्य की रचना हुई है, उसी प्रकार पुरुष की प्रतिच्छाया के रूप मे स्त्री की रचना हुई है, इसलिए व्यक्ति स्त्री और पुरुष दोनो से प्रेम करता है। स्त्री का पुरुष से वही संबन्ध है जो ईश्वर का प्रकृति से है। अत. इस अर्थ मे जब स्त्री से प्रेम किया जाता है तो वह प्रम ईश्वरीय होता है।"[1] एक अन्य सूफी के अनुसार "स्त्री-पुरुष का प्रेम उस ईश्वर-मनुष्य के प्रेम के लिए एक सेतु मात्र है। ईश्वर के प्रेम की प्राप्ति के लिए ही उसकी उपयोगिता है। उसकी अनुभूति कर लेने के बाद उस (स्त्री-पुरुष के प्रेम की) की उपयोगिता समाप्त हो जाती है।

जायसी आदि हिन्दी के सूफी कवियो ने इन उपर्युक्त विचारो का अनुसरण किया है। विरह को प्रेम-साधना का आरभिक सोपान मान कर इन्होने नायिका में ब्रह्म के रूप की कल्पना कर जीव-रूप नायक के माध्यम से परमात्मा के प्रति जीव के विरह को व्यजना दी है। जायसी के पद्मावत मे जीवरूप रत्नसेन के हृदय मे ईश्वर-रूपी पद्मावती के प्रेम का उदय दिखा कर उसकी प्राप्ति के लिए रत्नसेन की साधना और प्रयास का चित्र प्रस्तुत किया गया है। कवि का ईश्वर के प्रति जो विरह है वह रत्नसेन के माध्यम से ही अभिव्यंजित हुआ है। इस ग्रन्थ के अन्त मे निरूपित रूपक "तन चित उर मन राजा कीन्हा" यद्यपि पद्मावत के कथानक पर पूर्णतः चरितार्थ नही होता, तो भी इतना तो स्पष्ट है कि जायसी के हृदय की वेदना रत्नसेन की अन्तर्व्यथा के माध्यम से व्यजित हुई है।

पद्मावत मे कवि ने विप्रलम्भ के अन्तर्गत रत्नसेन के विरह का एव विवाह के उपरान्त दो-एक स्थलों पर पद्मावती के विरह का एवं रत्नसेन के सिंहलद्वीप चले जाने पर नागमती के विरह का सजीव चित्र प्रस्तुत किया है। रत्नसेन के विरह मे कवि ने आध्यात्मिकता की छौंक भी दी है जिसमे नाथपथी साधना एवं जीव की परमात्मा-विषयक विरही स्थिति के सकेत प्रचुर मात्रा मे दृष्टिगोचर होते है। आध्यात्मिकता की पुट के कारण विप्रलंभान्तर्गत प्रदर्शित इस विरह मे लौकिक विरह की वह टीस देखने को नही मिलती जिसकी कवि से आशा की जाती थी। आध्यात्मिकता मे उलझ कर कवि विरह मे अपेक्षित प्रभाव नही ला सका। विवाह से पूर्व पद्मावती मे कवि ने जिस विरह-स्थिति का चित्रण किया है वह चित्रण अतिशय मनोहारी तो है पर निश्चित आलबन के अभाव के कारण उसे विप्रलंभ के अन्तर्गत परिगणित नही किया जा सकता। वह चित्रण शृगार का न होकर काम की कोटि का ही है—

"नीद न परै रनि जो आवा। सेज के वाच जानु कोइ लावा"।

---

१. मध्ययुगीन प्रेमाख्यान, पृ० १९—इब्नुल अरबी कृत फुससुल हिकाम से उद्धृत।

आदि कथन मे तथा—

> दहै, धाय जोबन एहि जीऊ। जानहु परा आगिनि मँह घीऊ।
> करवत सहौं होत होइ आधा। सहि न जाइ जोबन के दाधा॥

प्रभृति कथनों मे यौवनागमन के कारण शरीर मे होने वाले कामविकारो का ही अंकन किया गया है। मन और शरीर की यह स्थिति विशेषोन्मुख न होकर शरीर और मन की व्याकुलता और इस आकुलता के फलस्वरूप उत्पन्न कामाग्नि को तो सूचित करती है पर आलंबन विशेष के अभाव के कारण इसे विप्रलंभ या वियोग श्रृंगार के अन्तर्गत नही माना जा सकता। हा, इसे काम-दशाओ मे अवश्य गिना जा सकता है। इतना अवश्य है कि जब हीरामन चित्तौड से लौट कर पद्मावती को रत्नसेन के विषय मे बताता है तो उसके बाद की पद्मावती की मन स्थिति एवं मनोदशा को पूर्वराग के अन्तर्गत माना जा सकता है, पर कवि ने यहा भी अपेक्षित तुल्यानुराग की छवि अंकित नही की। रत्नसेन के मन मे जो विह्वलता कवि ने दिखाई है वह पद्मावती मे दिखाने मे कवि सफल नही हुआ।

रत्नसेन के दिल्ली मे बन्दी होने पर दोनो रानियो की विरहस्थिति अपेक्षाकृत प्रभावशाली है पर उसके लौटने पर पद्मावती फिर अपेक्षित स्तर का निर्वाह नही कर पायी। उसने केवल इतना ही कहा जब सब कुछ प्रिय का है तो उसे वह पूजा मे समर्पित करे तो क्या करे। रत्नसेन की मृत्यु के बाद का मार्मिक चित्र विप्रलभ न होकर करुण ही कहा जायगा।

नागमती का विरह-वर्णन कवित्व की दृष्टि से अत्यन्त ही हृदयस्पर्शी बन पड़ा है। कवि ने अपनी विरह-भावना को नागमती की पीडा मे पूर्णतः समाविष्ट कर दिया है। कवि का वेदनाभिभूत हृदय इस भारतीय रमणी के आँसुओ मे डूबकर खो गया है। जीवन की इस उपेक्षित और वेदनामयी दशा मे नागमती एक रानी के धरातल से उतर कर साधारण प्रेमाकुला रमणी बन कर, वन के पशु-पक्षियों को अपनी पीडा का वर्णन करती है। जैसे कवि-शिरोमणि कालिदास का पुरुरवा अपनी प्रिया का पता वन के पशु-पक्षियो से पूछता फिरता था। जैसे तुलसी के राम खगो और मृगों से मृगनयनी सीता की जानकारी मागते फिर रहे थे, वैसे ही नागमती भी वन में भटकती हुई खगो से कहती है कि वे उसके प्रिय को कही से खोज कर ले आएं। नागमती की इस विरह-दशा का वर्णन करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है—"वह पुण्य दशा धन्य है जिसमे ये सब अपने सगे लगने लगते है और यह जान पडने लगता है कि इन्हे दुख सुनाने से जी हल्का होगा। सब जीवो का शिरोमणि मनुष्य और मनुष्यो का अधीश्वर राजा। उसकी पटरानी, जो कभी बडे-बडे राजाओ और सरदारो की बातो की ओर भी ध्यान न देती थी, वह पक्षियो से अपने हृदय की वेदना कह रही है। उनके सामने अपना हृदय खोल रही है।"[1]

---

१. जायसी ग्रन्थावली की भूमिका, पृ० ३६

जायसी के इस वियोग-वर्णन की यह विशेषता है कि पुरुरवा और श्री राम को तो वन्य पशुओ और खगो ने कोई उत्तर न दिया था पर नागमती के विरह एवं दुख-निवेदन का प्रभाव वन्य जीवो पर भी हुआ, फलतः एक पक्षी ने उसकी विरही स्थिति से द्रवित हो कर पूछ ही लिया—

फिरि फिरि रोइ न कोई डोला। आधी राति विहगम बोला।
तँ फिरि फिरि दाधँ सब पाखी। केहि दुख रैनि न लावसि आँखी।

पक्षी के ऐसा पूछने पर नागमती ने कहा कि कतविछोही भला कैसे सो सकती है—

"का सोवे जो कत विछोही"

इस पर नागमती ने उस विहग को अपनी सौत पद्मावती के नाम जो सदेस दिया वह बडा ही मार्मिक है—

विहग तुम पद्मावती से जाकर कहो कि तूने मेरे प्रिय को अपनी आखो मे बसा रखा है जिससे तुम्हे तो सुख और आनन्द मिल रहा है पर मेरा दिल दुख से भरा है। मै भी इसी प्रिय की परिणीता हू मुझे मेरा प्रिय देकर जीवन दो। मुझे अब भोग-विलास से कोई सरोकार नही, मैं तो उसे केवल दृष्टि-भर निहारना चाहती हू। मेरा प्रिय जिसके वश मे है उसे भला मै सँनिक कैसे कहू। मुझे एक बार मेरा प्रिय मिला दो तब मेरे हाथ सदा तेरे पावो पर होगे—

"पद्मावती सो कहहु विहगम। कन्त लो भाइ रही करि संगम॥
तोहि चैन सुख मिलै सरीरा। मो कह हिये दुद दुख पूरा॥
हमहु बियाही सग ओही पीऊ। आपुहि पाइ जानु पर जीऊ॥
अबहु मया करु, करु जिय फेरा। मोहि जियाउ कत देइ मेरा॥
मोहि भोग सो काज न बारी। सौह दीह की चाहन हारी॥
सबतिन होइ तू वैरिनी, मोर कत जेहि हाथ।
आनि मिलाव एकबेर तोर पाय मोर हाथ॥"

इन पक्तियों मे जो पवित्र और निश्छल गरिमा दर्शायी गयी है। विरह के चरम बिन्दु पर पहुच कर यहा व्यक्तित्व मे मान, गर्व, सुखोपभोग की सम्पूर्ण लालसाए जैसे तिरोहित हो गयी हैं। नागमती के व्यक्तित्व में शुद्धता एवं निखार आ गया है। जायसी के इस विरह-वर्णन को हिन्दी साहित्य की अद्वितीय वस्तु बताते हुए आचार्य शुक्ल ने लिखा "जायसी ने स्त्री जाति या कम से कम हिन्दू गृहिणी मात्र की सामान्य स्थिति के भीतर विप्रलंभ शृगार के अत्यन्त समुज्ज्वल रूप का विकास दिखाया है।"[1]

विरह मे दग्ध नागमती जिसका शरीर अस्थिपंजर बन गया था, शरीर की प्रत्येक हड्डी दिखाई देने लगी थी, जिस के रोम-रोम से पिऊ के नाम की आवाज आ रही

१. जायसी ग्रन्थावली की भूमिका, पृ० ४४

थी ।[1] अन्तत· समर्पण की पराकाष्ठा पर पहुच कर कहती है कि—

यह तन जारौ छार कै, कहौ कि पवन उडाव ।
मकु तेहि मारग उडि परै, कंत धरे जेहि पॉव ।।

नागमती के इस असीम विरह मे कवि ने जहा विप्रलम्भान्तर्गत उसकी काम-दशाओ का चित्रण किया है वहा बारहमासा के माध्यम से वर्ष भर उस पर क्या बीती इसका वर्णन कर उसकी मनोदशा पर प्रकाश भी डाला है । आषाढ के बादलो को उमडता देखकर विरहिणी को मदन सताता है तो पुष्य नक्षत्र की झडी मे सूनी सेज उसे काटने दौडती है । वर्षा मे उसकी सखिया झूला डाल कर उद्यानो मे वर्षा की फुहार का आनन्द लूटती है तो वह सूनी आखो से दूर से अपने प्रिय को खोजने का असफल प्रयत्न करती है । आश्विन लगते ही वह सोचती है कि रावण का वध कर राम भी लौटने वाले है पर उसके प्रिय है कि लौटने का नाम ही नही लेते । कार्तिक मास के पर्वो मे सधवाए दीवाली पूजने लगती है पर इसके लिए तो ससार ही सूना है । पौष माघ का जाडा इसे प्रिय की याद दिलाता है । फागुन की फाग जहा औरो के लिए आनन्ददायिनी है इसके लिए वह भी अवसाददातृ है । चैत बैसाख के वसन्त मे भंवरा भी मालती के पास लौट आया, जाडे से मुरझाई सृष्टि चहुओर मुस्कराने लगती है पर इसके लिए अब भी संसार सूना है। ज्येष्ठ की लूए चलने लगी । प्रियाएं अपने प्रिय के वक्ष से लग कर ठडक पाती है, पर नागमती को न भीतर चैन है न बाहर । तात्पर्य कहने का यह है कि विरहिणी को न तो कोई मास शान्ति देने मे समर्थ है और न ही कोई ऋतु । फलत वह इतनी अशान्त और व्यथित है कि "जिस पक्षी के समीप जाकर अपना विरह निवेदन करती है वह पक्षी ही जल जाता है, पेड़ के पत्ते जलने लगते है ।"

जेहि पखी के निअर होई, कहै विरह की बात ।
सोइ पंखी जाइ जरि । तरिवर होई निपात ।

इस चित्र को ऊहात्मक कथन कह कर नही छोडा जा सकता इसमे तो नागमती की पीडा की विशद व्यंजना ही मिलती है ।

जायसी द्वारा वर्णित नागमती-विरह-प्रसग विप्रलभ श्रृगार का एक अनूठा और अनुपम उदाहरण है, कवि ने वेदना का जितना निरीह, निरावरण मार्मिक और गम्भीर रूप यहा दर्शाया है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है ।पद्मावत के विप्रलभ श्रृगार का उक्त प्रसग ही जायसी की कीर्ति का मुख्य आधार है ।

इस वर्णन मे जहां कही ऊहात्मक कथन मिलते हैं या श्रृगार के अन्तर्गत निर्दिष्ट वर्णनो मे रक्त, मज्जा, अस्थि आदि के वर्णन मे जुगुप्सा की स्थिति सामने

---

१. हाड भए सब किंगरी नसें भई सब तांति ।
रोंव रोव से ध्वनि उठे कहौ विरह केहि भाति ।।

आने लगती है[1] अथवा अतिशयोक्ति के कारण भावाभिव्यंजना की अपेक्षा उपहास की स्थिति भी आ जाती है, ऐसे स्थलो पर मसनवी शैली का प्रभाव ही अधिक समझना चाहिए। सौभाग्य है कि इस वियोग के प्रकरण मे ऐसे स्थल बहुत अधिक नही है। आचार्य शुक्ल ने ऐसे स्थलो के विषय मे लिखा है कि "ऊहात्मक पद्धति का व्यवहार चाहे जायसी ने किया हो पर अधिकतर विरह ताप के वेदनात्मक स्वरूप की अत्यन्त विशद व्यजना ही जायसी की विशेषता है। इन्होने अत्युक्ति की है और खूब की है, पर वह अधिकांश संवेदना के स्वरूप मे ही है, परिमाण निर्देशन के रूप मे नही है।[2]

वीर रस

शृगार रस के दोनो पक्षो—संयोग और वियोग के पश्चात् पद्मावत मे दूसरा स्थान वीर रस को मिला है। इस कृति के प्रमुख पात्र क्षात्र-परम्परा से संबद्ध है। रत्नसेन गन्धर्वसेन, गोरा, बादल राव दिल्ली के सुलतान मे क्षात्रोचित विशेषाओ को दिखा कर कवि ने जो युद्ध के प्रसग चित्रित किये है उनमे वीर रस की छवि अकित की गई है। सेना और युद्ध की तैयारी, अस्त्र-शस्त्रो के प्रभाव का वर्णन एव प्रहारो के चित्रण, गोरा, बादल प्रभृति वीरो के शौर्य की उत्साहपूर्ण अभिव्यजना कर लेखक ने वीर रस के प्रसगो को मूर्तता प्रदान की है।

दिल्ली के सुलतान ने जब रत्नसेन से पद्मावती की माग की तो उस समय रत्नसेन ने जो क्षत्रियोचित उत्तर दिया उसमे उत्साह एवं पौरुष की झाकी द्रष्टव्य है—

का मोहि सिघ दिखावसि आई। कहाँ तौ सारदूल धरि खाई॥
भलेहिं साह पुहुमीपति भारी। मांग न कोउ पुरुष कै नारी॥

इसके पश्चात् अपने वश की वीर-परम्परा का उल्लेख जिस प्रकार किया है उसमे उत्साह और क्रोध की संधि दर्शनीय है। वह हमीर का वश है जिसका हठ जगप्रसिद्ध रहा है। उसका संबध उस वीर से है जिसने मत्स्यवेध के बाद द्रौपदी का वरण किया था। उसकी धमनियो मे वीर का रक्त बह रहा है जिसने सागर पर पुल बाध कर शत्रु के घर जाकर उसे पराजित किया था—

हौ रनथ भउर नाह हमीरु। कलपि माथ जेहि दीन्ह सरीरु॥
हौ सो रतनसेन सक-बंधी। राहु वेधि जीता सैरंधी॥
हनुवत सरिस भार जेइ काधा। राघव सरिस समुद जो बाधा॥

वीर रतनसेन को शत्रु से कोई भय नही, क्योकि चित्तौड का शौर्य जब जागता

---

१. कटि कटि मांस सराग पिरोवा। रकत के आसु मास सब रोवा।
खिन एक बार मास अस भूजा। खिनहिं चबाइ सिघ अस गूजा॥
जायसी ग्रन्थावली

२. जायसी ग्रन्थावली की भूमिका—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल।

तो वहाँ आग बरसती है, शत्रु ने यदि धावा करना है तो कल क्यो आयगा आज ही आ जाय—

"यह चितउर सोइ पहारु। सूर उठे तब होई अंगारु
× × ×
कालिह होइ जेहि आवन, सो चलि आवे आज"

रतनसेन के इस क्षत्रियोचित उत्तर मे जिस उत्साह और क्रोध की झाँकी प्रस्तुत की गयी है, इससे रत्नसेन के वीर चरित्र पर प्रकाश डाला गया है।

रत्नसेन और अलाउद्दीन के मध्य हुए एक युद्ध का सजीव चित्रण भी यहाँ द्रष्टव्य है—

"हस्ती सहुं हस्ती हठि गार्जहिं। जानु परबत परबत सो बाजहिं॥
गरु गयद न टारे टरही। टूटहिं दाँत, माथ गिरि परही॥
परबत आइ परहिं तराहिं। दर मँह चापि खेह मिलि जाहिं॥"

युद्धोन्मादी हाथियो की पारस्परिक भिडंत को पहाडो के टकराने से उपमित किया गया है तो इस युद्ध मे चमचमाती हुए तलवारें भी आग ही उगल रही है और बाणो और गोलो की वर्षा भी कम भयानक नही है—

"बाजहिं खडग उठै दर आगि। भुँइ जरि चहै सरग कहं लागि॥
× × ×
बरसहिं सेल बान होइ कादो। जस बरसै सावन और भादों॥
झपटहिं कोपि परहिं तरवारी। औ गोला ओला जस भारी॥"

युद्ध मे बाणो की बौछार को सावन-भादो की झडी से एवं तलवार और गोलो को ओलो के गिरने से तुलना देकर कवि ने युद्ध के विनाशकारी रूप को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

इसी प्रकार गोरा और बादल के युद्धों के चित्रो मे भी उत्साह की अभिव्यंजना की गयी है जो इस प्रकार है—

"सबै कटक मिलि गोरहिं छेंका। गूंजत सिघ जाइ नहिं टेका॥
जेहि दिसि उठै सोइ जनु खावा। पलटि सिंघ तेहि ठाव न आवा॥

युद्ध मे शत्रुओ के बीच दहाडते हुए वीर गोरा के वीरत्व की अभिव्यंजना भाट के इन उत्साहवर्धक शब्दो मे प्रकट की गयी है—

"भाट कहा धनि गोरा, तू भा रावन राव।
आँति समेटि बाँधि कै तुरग देत है पाव॥"

पद्मावत मे इस प्रकार के अनेक स्थल हैं जहाँ वीर रस को सफलतापूर्वक मूर्त रूप प्रदान किया गया है।

करुण रस

कवि ने करुण रस का स्वतत्र रूप से भी वर्णन किया है और कही-कही उसे अन्य रस की क्रोड मे भी दिखाया है। नागमती वियोग-खड और संदेश-खड मे शृगार रस प्रधान है, पर कवि ने उस स्थिति के जो चित्र प्रस्तुत किये है उनके अनुशीलन के पश्चात् अध्येता का मन करुणा-विगलित हो जाता है। जब नागमती अपने को हारिल पक्षी और रत्नसेन को हारिल की खोई हुई लकडी कहकर मन की व्याकुलता को अभिव्यक्त करती है तो पाठक का हृदय पसीजने लगता है और उसकी आखें डबडबा जाती हैं। उसकी अस्थिया किगरी बन गयी हैं, नसे उसमे तार बन कर रह गयी है, उसके प्रत्येक रोम से प्रिय के नाम की ध्वनि उठ रही है, वह अपनी व्यथा कहे तो कैसे—

हाड भए सब किंगरी नसै भई सब ताति।
रोव रोव से धुनि उठै, कहौ बिथा केहि भाति ।।

इन स्थलो पर करुण रस का स्वतत्र चित्रण नही अपितु उसे शृंगार की क्रोड मे ही चित्रित किया गया है।

करुण रस का स्वतंत्र चित्रण दो प्रसगो पर अत्यन्त ही प्रभावी बन पडा है। रत्नसेन के जाने पर चित्तौड की दिशा का चित्रण और रत्नसेन तथा पद्मावती की सिंहल से विदाई का दृश्य।

रत्नसेन के जोगी बन कर सिंहल की ओर जाते समय कवि ने कहा कि रानिया बाल नोच रही है। माता, भाई तथा सभी प्रियजन इस अवसर पर करुणा-विगलित हो उठे है—

रोवत माय न बहुरत बारा। रतन चला घर मा अँधियारा ।।
रोवहिं रानी तजत पराना। नोचहिं बार करहिं खरिहाना ।।

माता रो रही है। पत्निया आर्तक्रदन कर रही हैं। वे चूडिया फोड रही है, बालो को नोच रही हैं और अपने गले के हार तोड रही है और इधर राजा शरीर पर भस्म रमाये, सिंगी बजाता हुआ नगर को छोड रहा है। इस विषम स्थिति को देखकर कौन निष्ठुर होगा जो शोकाभिभूत न होगा।

इसी प्रकार सिंहलद्वीप से विदाई के समय का दृश्य है जहा पद्मावती को सिंहल छोडते हुए शोकाकुल दिखाया गया है। इस अवसर पर उसे सिंहल की रमणी स्थली छोडने का तो दुख है ही पर वह यहा से जाकर अपनी सखियो को पुनः मिल सकेगी या नही, यह दुख भी कम नही है। पद्मावती की कारुणिक दशा निम्नलिखित दोहे मे देखी जा सकती है—

"कंत चलाई का करौ आयसु जाइ न मेटि।
पुनि हम मिलहिं कि न मिलिहिं लेहु सहेली भेटि ।।"

पद्मावती को इस प्रकार शोकाकुल देखकर उसकी सखिया भी अत्यन्त आतुर हैं। अन्तत. वे भी विधि के विधान के आगे सिर झुका कर कहती हैं—

चालन कहँ हम अवतरी। चलन सिखा नहिं आय।
अब सो चलन चलावै को राखै गहि हाय? ॥

यहा पीहर से ससुराल जाने की विवशता को दर्शाते हुए कवि ने आध्यात्मिकता की छौंक भी दी है जिसमे इस नश्वर संसार से अन्तत. जाने की ओर भी संकेत किया गया है।

पद्मावत मे करुण रस के चित्र स्वतत्र रूप से कम है पर उनमे प्रभावित करने की क्षमता बहुत अधिक है। कवि ने अनेक स्थानो पर करुण को शृगार और शान्त के साथ मिश्रित कर दिया है।

वात्सल्य रस

पद्मावत मे कवि ने कतिपय प्रसंगो मे वियोग-वात्सल्य का चित्रण किया है। राजा रत्नसेन जब जोगी बन कर सिंहलद्वीप जाने लगता है तो उसकी माता की मनोदशा का चित्र अत्यन्त व्यथा एवं वात्सल्य-जनित चिन्ताओ से पूरित है। मा की शका और चिन्ता सहज है कि उसका पुत्र मार्ग की धूप कैसे सहन करेगा, उसे भूमि पर नीद भी आएगी या नही। भूख-प्यास को वह कैसे निभा पायगा—

कैसे धूप सहब बिनु छाहा।
कैसे नीद परिहिं भुइ माहा॥
कैसे सहब खिनहिं खिन भूखा।
कैसे लखे कुरकुटा रूखा॥

इसी प्रकार युद्ध मे शत्रु से जूझने के लिए जाने वाले बादल की माता के मन मे उठने वाले अनिष्ट की आशका का चित्र भी मातृस्नेह का एक आदर्श उदाहरण है—

बादल केरि जसो वै भाया। आइ गहेसि बादल कर पाया।
बादल राय! मोर तुइ बारा। का जानसि कस होइ जुझारा।
× × ×
जहा दलपती दलि मरहिं तहा तोर का काज।
आजु गवन तोर आवै बैठि मानु सुखराज॥

मा के लिए तो बच्चा कितना भी बडा हो, वीर हो, वह बच्चा ही होता है तभी तो वह कह रही है कि जहा इतने बड़े योद्धा सघर्षरत होगे वहा तेरा क्या काम। स्नेह और ममता की मारी मां नही समझती कि उसका पुत्र तो वीरता की साकार मूर्ति है जो युद्ध मे शत्रुओं के छक्के छुडा देगा।

इस प्रकार के कतिपय अन्य स्थल भी हैं जिनमें आखिरी कलाम का वह प्रलय-दृश्य जिसमे रसूल पापियों के उद्धार के लिए आदम से जा कर कहते हैं कि यदि पुत्र

दुखी हो तो उसका असर पिता पर ही पडता है। इनका दुख और पीडा अब और किस से कहू। तुम ही इनका दुख दूर करने की क्षमता रखते हो—

दुखिया पूत होत जो अहै। सब दुख पै बापै सो कहै।
.... तुम्ही छाडि कासी पुनि मागैं।

× × ×

"जेठ जठेर जो करिहै बिनती। ठाकुर तबही सुनिहै मिनती।"

वात्सल्य के इस चित्र मे यद्यपि हृदय को छू लेने की क्षमता नही है तो भी रसूल के हृदय मे परदुख दूर करने की जो भावना है उसकी जानकारी अवश्य मिल जाती है।

वात्सल्य रस के उपरोक्त सभी चित्रो मे वह मार्मिकता देखने को नही मिलती जो श्रृंगार और करुण रस के चित्रो मे दृष्टिगोचर होती है। महाकाव्य के विस्तृत कथानक मे माता-पिता के मन मे अपनी सन्तति के प्रति जो भावानुभूति दर्शायी गयी है कवि इन चित्रो मे अपेक्षित प्रभाव नही ला सका, इसी से प्रसग शिथिल दिखाई देते है।

शान्त रस

शान्त रस का स्थायी भाव 'निर्वेद' है। पद्मावत के अन्तिम भाग मे कवि ने इस रस का निर्वाह भलीभाँति किया है। रत्नसेन देवपाल के द्वारा मारा जा चुका है। दोनो रानिया सती होने जा रही है। दोनो रानियो के मन मे पति के पास परलोक मे जा कर मिलने की कामना प्रबल हो रही है। परिवार के अन्य परिजन इस सारे करुणपूर्ण दृश्य को अश्रुपूर्ण नेत्रो से देख रहे हैं। युद्ध मे पराजित राजपूत अत्यन्त ही निराश और हताश मन से चित्तौड के वैभव को उजडता देख रहे है। कवि के अनुसार पुरुष संग्राम मे खेत रहे, नारियां जौहर कर सती हो गयी है।

चित्तौड पराजय का शिकार हो इस्लाम के हाथो आ गया है। सारे वातावरण मे श्मशान की सी शान्ति छाई हुई है जिसे देखकर मन मे 'निर्वेद' की भावना जगने लगती हैं।

दोनो रानिया अन्तिम श्रृंगार कर पति की देह को गोदी मे रखकर चिता की लपटो मे देखते ही देखते भस्मीभूत हो गयी। एक बाजा तो तब बजा था जब इनका विवाह हुआ था और एक बाजा अब इनके सती होने पर बज रहा है। इस दृश्य को देखकर कवि ने कहा कि जो जन्मा है उसे मरना भी होगा। तभी तो सती की चिता की राख को हाथ मे लेकर दिल्ली के सुलतान को भी लगा कि धरती का यह सम्पूर्ण वैभव झूठा है।

इस तरह प्रेमकथा के काव्य के रूप मे समारब्ध पद्मावत वीर, वात्सल्य और करुण रसो का निर्वाह करता हुआ अन्ततः शान्त रस की अभिव्यंजना पर ही समाप्त होता है।

कवि ने पद्मावत के अन्तिम भाग मे जैसे शान्त रस का चित्र उपस्थित किया है वैसे ही 'आखिरी कलाम' मे भी जीवन के चक्र को रहट के लोटे से उपमा दी है—

मुहम्मद जीवन जल भरन, रहँट घरी कै रीति ।
घरी जो आई ज्यो भरी, ढरी जनम गा बीति ।।

रहट की घडी पानी लेकर आती है और रीती होकर लौट जाती है। जीवन का क्रम भी प्रायः ऐसा ही है।

आध्यात्मिकता-प्रधान अखरावट और आखिरी कलाम अन्तत अपना प्रभाव 'शान्त रस' के रूप मे ही छोडते हैं। इन कृतियो के अध्ययन से मन मे निर्वेद—संसार के प्रति अनासक्ति के रूप मे उभर कर आता है और पद्मावत का अन्त करुणापूर्ण दृश्यों के कारण 'शान्त' के रूप मे ही किया गया है।

जायसी के भावजगत् के विवेचन के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुचते है कि कवि ने पद्मावत मे अगीरस के शृगार के वियोग-पक्ष के चित्रण मे पर्याप्त सफलता प्राप्त की है। संयोग शृंगार के प्रसंगों मे वाक्चातुर्य अधिक है मार्मिकता कम। रस-परिपाक की अपेक्षा कथन की विचित्रता, उक्ति की चतुरता एवं कही-कही भावो का उदय अवश्य अच्छा बन पडा है।

युद्धस्थलों मे वीर रस का निर्वाह द्रष्टव्य है। रत्नसेन की उक्तियो में उत्साह, क्षत्रियोचित गर्व, क्रोध और शौर्य के दर्शन भी प्रचुर मात्रा मे होते है।

वात्सल्य रस के प्रसग प्रायः शिथिल है। कवि ऐसे प्रसगों को प्रभावशाली नही बना पाया।

करुण रस के प्रसंग रुला देने की क्षमता रखते हैं। करुण का पर्यवसान शात रस के रूप मे भी होता है। करुण विप्रलंभ, करुण के चित्र मन पर गहरा प्रभाव डालने की क्षमता रखते हैं।

अखरावट और आखिरी कलाम—ये दोनो कृतिया आध्यात्मिक है। इनके पढने से जगत् के प्रति विरक्ति उत्पन्न होती है।

जहा तक पद्मावत का सम्बन्ध है इसका आरम्भ शृगार से किया गया है तो अन्त शान्त रस मे निहित है। अन्त मे यह कहना समीचीन होगा कि भाव-जगत् और अनुभूति की दृष्टि से जायसी का काव्य अत्यन्त प्रभावकारी है। इस के विभिन्न प्रसंग पाठक के मन पर अमिट प्रभाव डालने की क्षमता रखते है।

जायसी का नख-शिख चित्रण

जायसी के महाकाव्य 'पद्मावत' के आख्यान का मूल आधार ही रूप और सौन्दर्य है। कवि ने यहाँ रूप और सौन्दर्य की अपार राशि पद्मावती के माध्यम से सौन्दर्यपरक चित्रो की उत्कृष्ट छवि प्रस्तुत की है। कवि ने यहा ससार की परम सत्ता को पद्मावती के रूप में अवतरित करके उसे अनन्त सौन्दर्य-राशि से मंडित कर प्रेम की अनेकविध वायवी कल्पनाओं से आबद्ध कर दिया है। प्रेम और सौन्दर्य के चित्रो

को सहृदय के हृदयफलक पर अंकित करने मे सिद्धहस्त जायसी मध्यकाल के एक अन्यतम कवि है।

कवि ने इन हृदयस्पर्शी चित्रो को प्रस्तुत करने के लिए सौन्दर्य की लोकोत्तर कल्पना करते हुए इसके सृष्टिव्यापी प्रभाव का दिग्दर्शन कराया है। कवि ने ब्रह्म की प्रतीक पद्मावती के जिस लोकोत्तर सौन्दर्य की कल्पना की है, उस सौन्दर्य की चर्चा सुनते ही रत्नसेन सुधबुध खो बैठा--

'सुनतहि राजा गा मुरझाई।
जानौ लहरि सुरुज कँ आई।।
पेम घाव दुख जान न कोई।
जेहि लागै जानै पै सोई।।
परा सो पेम समुद अपारा।
लहरहि लहर होइ विसभारा।।
विरह भावरि होई भावरि देई।
खिन खिन जीव हिलोरहि लेई।।
खिनहि निसास बूडि जिउ जाई।
खिनहि उठै निससे बौराई।।
खिनहि पीत खिन होइ मुख सेता।
खिनहि चेत खिन होई अचेता।।
कठिन मरन ते पेम बेवस्था।
नाजिअं जिवन न दसइ अवस्था।।
जनु लेनिहान्ह लीन्ह जिउ हरहि तरासहि ताहि।
एतना बोलन आव मुख करहि तराहि तराहि।।

सौन्दर्य और रूप की जिस अप्रतिम मूर्ति के सौन्दर्य के श्रवणमात्र से रत्नसेन को विस्मृति के गर्भ मे समा जाना पडा, वह सौन्दर्य तो सम्पूर्ण सृष्टि मे व्याप्त है। कवि ने पारस से उपमा दी है, जिसके आभासमात्र से सम्पूर्ण जगत् एक साथ चमत्कृत हो उठता है। जिस सौन्दर्य की दिव्यानुभूति कर सृष्टि के चर-अचर सभी प्राणी लोकोत्तर आनन्द मे आत्मविभोर हो जाते है। इसी पारस रूप की अनुभूति का मानसर भी अपने को धन्य मानने लगता है। उस अपार सौन्दर्य के स्पर्श मात्र से मानसरोदक की सभी कामनाएं पूरी हो जाती हैं। उसकी गन्ध मात्र से उसके तन की तपन बुझने लगती है। उसकी छटा के दर्शन से ही वह स्वय देदीप्यमान होने लगता है। प्रिय का सौन्दर्य क्या देखा, मानो सब कुछ ही पा लिया। जिसके पा लेने के बाद कुछ पाना शेष नही रहता। जिसके मिलते ही मानो मंजिल ही मिल गई। इस स्थिति का चित्रण इस प्रकार है--

कहा मानसर चाह सो पाई। पारस रूप इहा लगि आई।
भा निर्मल तेन्ह पायन्ह परसे। पावा रूप रूप के दरसे।

मलय समीर वास तन आई। भा सीतल गै तपन बुझाई।

× × × ×

विगसा कुमुद देखि ससि रेखा। भै तहाँ ओप जहा जो देखा।
पावा रूप रूप जस चाहा। ससि मुख जनु दरपन होइ रहा।
नयन जो देखा कवल भा, निरमल नीर सरीर।
हंसत जो देखा हंस भा, दसन जोति नग हीर॥

जायसी ने रूप और सौन्दर्य के जिन मादक चित्रो को यहाँ प्रस्तुत किया है, उनमे जड और चेतन, दोनो को ही उद्वेलित करने की शक्ति विद्यमान है। कवि ने इस प्रकार के लोकोत्तर चित्रो के माध्यम से इस सम्पूर्ण प्रेमाख्यान को जीवंत स्वरूप प्रदान करने मे अपार क्षमता प्राप्त की है।

नख-शिख वर्णन

जायसी ने 'पद्मावत' के प्रेमाख्यान मे सौन्दर्य की लोकोत्तर कल्पना और सौन्दर्य के सृष्टिव्यापी प्रभाव के विविध चित्र प्रस्तुत किये हैं। इसके साथ ही कवि ने शृंगार रस के सदर्भ मे परम्परागत रूप से नायिका—पद्मावती का नखशिख-वर्णन भी किया है। इस नखशिख के माध्यम से कवि ने पद्मावती के प्रत्येक अंग की सुघडता, समन्विता, सम्यग् विभाजन एवं अगयष्टि के संतुलित स्वरूप का आभास देकर नायक रत्नसेन के मन मे उसे प्राप्त करने के लिए एक तडप उत्पन्न कर दी, फलतः वह उसका नखशिख-वर्णन सुनकर पहले तो सुधबुध ही खो बैठा, कुछ देर बाद जो वह सचेत हुआ तो उसे प्राप्त करने के लिए राजपाट छोड जोगी ही बन गया। वह केवल जोगी ही नही बना अपितु उसे प्राप्त करने के लिए हर बड़े से बडा जोखिम उठाने को भी प्रस्तुत हो गया।

नख-शिख-वर्णन की परम्परा का अपना एक सुदीर्घ इतिहास है। शृगार रस के सदर्भ मे कवि नायिका की अगयष्टि का सम्पूर्ण वर्णन प्राचीन काल से करते आए हैं। नखशिख वर्णन भक्त भी करते रहे हैं और शृगारी कवि भी। भक्त जो नख-शिख-वर्णन करते है तो वे सर्वप्रथम अपने आराध्य के पाव के नखो के सौन्दर्य की चर्चा कर क्रमश. ऊपर की ओर जाते है अर्थात् उनका वर्णन नख से शिख की ओर होता है परन्तु भोगी—शृंगारी कवि स्वय अथवा उसकी कृति का कोई पात्र जब नायिका के सौन्दर्य की चर्चा करता है तो वह शिख से नख की ओर आता है अर्थात् ऊपर से नीचे की ओर। अन्य शृगारी कवियो के समान जायसी के नख-शिख मे भी नायिका—पद्मावती के रूप-सौन्दर्य की चर्चा शिख से नख की ओर ही हुई है। भक्त अपने आराध्य के चरणो का सर्वप्रथम ध्यान करता है तो रसिक अपनी प्रिया के मुख कमल पर ही पहले दृष्टिपात करता है। इसी तथ्य को सम्मुख रखकर भक्त कवियो ने अपने आराध्य का नखशिख-वर्णन नख से आरंभ कर शिख तक किया है और रसिक कवियो ने नायिका के नखशिख का चित्रण शिख से नख तक क्रम से प्रस्तुत किया

है । जायसी का नखशिख-वर्णन भी दूसरी कोटि का ही है ।

श्रृंगार के संदर्भ मे नखशिख के चित्रण का लक्ष्य होता है नायक के मन मे नायिका के लिए आकर्षण का भाव उत्पन्न करना । नायक सयोग श्रृंगार के संदर्भ मे नायिका के नखशिख के सौन्दर्य का उपभोग किया करता है तो वियोग मे उसी सौन्दर्य की स्वप्निल कल्पनाओ के सहारे विरह के असह्य क्षणो की समाप्ति की प्रतीक्षा । पद्मावत मे कवि ने पद्मावती के नखशिख-वर्णन को ही प्रमुखता दी है । यहा हीरामन सुआ ने रत्नसेन के सम्मुख पद्मावती के नखशिख का वर्णन किया है और अन्यत्र राघव चेतन ने अलाउद्दीन के मनोभावो को उद्दीप्त करने के लिए पद्मावती का नखशिख वर्णन किया है । इन दोनो वर्णनो मे बहुत कुछ साम्य है । इसके अतिरिक्त कवि ने स्वयं यौवन भारभरिता पद्मावती के नखशिख का चित्रण भी किया है । इसी प्रकार मानसरोदक खड मे भी कवि ने पद्मावती का सक्षिप्त किन्तु व्यंजनापूर्ण नखशिख वर्णन किया है । नागमती-पद्मावती विवाद के समय नागमती ने आत्मश्लाघा के रूप मे अपने नखशिख का सौन्दर्य भी वर्णन किया है । इस मुख्य वर्णन के अतिरिक्त कवि ने गौण रूप से सिहलद्वीप की वारवनिताओ, लक्ष्मीखड मे पुन व्यथिता पद्मावती का नखशिख भी वर्णन किया है ।

उपरोक्त तथ्यो से स्पष्ट है कि यहा नखशिख-वर्णन तीन प्रकार से प्रस्तुत किया है । एक पात्र द्वारा अन्य पात्र का नखशिख, स्वयं का नखशिख और कवि द्वारा वर्णित नखशिख ।

यौवनभार भरिता पद्मावती का नखशिख-वर्णन

यौवनभार भरिता पद्मावती की अगयष्टि का वर्णन जायसी ने पद्मावत के 'जन्मखण्ड' के अन्तर्गत किया है । पद्मावती ने अब बारह वसन्त पार कर लिए है, अब वह यौवन की दहलीज पर पांव रखने लगी है । उसकी जवानी रूपी वाटिका खिलने जा रही है । वाटिका की पुष्पिता क्यारियो के समान उसके अंग-प्रत्यग मे उभार आने लगा है । उसके अंगो की सुवास जग को बीधने लगी है । उसकी सुन्दर पीठ पर पडी वेणी मलयगिरि पर लेटी सर्पिणी सी लगने लगी है । दूज का चाँद मानो उसके माथे पर स्वय आ बैठा है । धनुषाकार भौहो ने कटाक्ष-बाणो को फेकने का उपक्रम अभी से आरभ कर दिया है । उसके सुशोभित मुखकमल की नासिका ने जग को विमोहित कर डाला । उसके अधरों में माणिक की लाली है तो दाँतो मे हीरे की दीप्ति दृष्टिगोचर होने लगी है । उस के वक्ष मे उभार आने लगा है तो कमर केहरी से तुलना करने लगी है और गति ने गज की चाल को मात देने की ठान ली है । इस रूपराशि को पाने के लिए ही तो साधको और यतियो ने साधना का कठोर व्रत ले रखा है—

"भइ ओनंत पद्मावती बारी । धज धोरै सब करी सवारी ।
जग बेधा -तेई अंग सुवासा । भंवर आइ लुबुधे चहु पासा ।

बेनी नाग मलै गिरि पीठी । ससि माथे होइ दुइजि बईठी ।
भौहैं धनुक सांधि सर फेरि । नैन कुरगिनि भूलि जनु हेरी ।
नासिक वीर कवल मुख सोहा । पदुमिनी रूप देखि जग मोहा ।
नासिक अधर दसनु जनु हीरा । हिय हुलसे जनु कनक जभीरा ।
केहरि लंक गवन गज हारे । सुर नर देखि माथ भुईं धारे ।
जग कोई दिस्टी न आवैं आर्छाहि नैन अकास ।
जोगी जती सन्यासी तप साधहि तेहि आस ।।"

इस संक्षिप्त किन्तु अभिव्यजनापूर्ण नखशिख मे कवि ने शिख से लंक तक एवं उसकी गति का चित्र प्रस्तुत किया है । यहा परम्परागत उपमानो के माध्यम से कवि ने नायिका के सौन्दर्य मे उत्तरोत्तर होने वाली वृद्धि को ही व्यंजना दी है । इस व्यंजना के लिए उसने बारी वाटिका शब्द के प्रयोग द्वारा श्लेष के चमत्कार से सौंदर्य को अति प्रभावशाली रूप देने का सफल प्रयास किया है ।

मानसरोदक खण्डान्तर्गत नखशिख

आज पद्मावती अपनी सहेलियो के साथ मानसरोवर मे जलकेलि के लिए आयी है । स्नान से पूर्व उसने अपने जूडे को खोल कर बालो को फैला दिया तो लगने लगा कि उसके शरीर की सुवास के लिए सर्पिणियो ने उस के मुखमण्डल को घेर लिया है । अथवा यह घनी केशराशि नही है, घन घटाओं ने ही मुखकमल को आच्छादित करने की ठान ली है तभी तो ससार मे अन्धेरा होने लगा है । काली केशराशि मानो राहु है और उसने पद्मावती के मुखचन्द्र की शरण ही ले रखी है। घनी केशराशि के फैलते ही सूर्य का प्रकाश समाप्त हो गया और चन्द्रमा दिन मे ही नक्षत्रो के साथ दिखाई देने लगा । उस घनी केशराशि के बीच देदीप्यमान मुखचन्द्र को देखते ही चकोर मत्त हो उठे । उसके दान्तों की चमक चपला के समान थी और वह स्वय कोकिलकठी थी । उसकी भौहे इन्द्रधनुष की तुलना करती थी; उसके नेत्र खंजन पक्षी के नेत्रों से लगते थे । उसके नारंगी सदृश कुचो के कुड्मल ऐसे लगते थे मानो भवरे नारगी का रसपान कर रहे हों । उसके इस अपार सौन्दर्य को देख सरोवर दोलायमान होकर लहराने लगा कि उसके पांवो का स्पर्श ही कर ले[१]

---

१. सरवर तीर पदुमिनि आई । खोपा छोरि केस मोकलाई ।
ससि मुख अंग मलै गिरि रानी । नागन झाँपि लीन्ह अरघानी ।
औनए मेघ परी जग छाहां । ससि की सरैन लीन्ह जनु राहा ।
छपि गै दिनहि भानु कै दशा । लै निसि लखत चान्द परगसा ।
भूलि चकोर दिस्टी तहा लावा । मेघ घटा महं चान्द देखावा ।
दसन दामिनी कोकिल भाषी । भौहे धनुक गगन लै राखी ।
नैन खंजन दुई केलि करेंहि । कुच नारग मधुकर रस लेंहि ।
सरवर रूप विमोहा हिएं हिलोर करेई ।
पाय छुअइ मकु पावो तेहि मिस लहरें देइ ।।" (मानसरोदक खंड)

(संभवत: उसे ज्ञात न था कि वह सौन्दर्य-राशि तो स्वयं उसमे आकठ डूबने को लालायित थी। संभवत: सरोवर उसे देखते ही अपने धैर्य के बाध को थाम न सका) इन उपरोक्त स्थलो मे कवि ने नायिका का 'नखशिख' अत्यन्त ही सक्षेप मे प्रस्तुत किया है। इन स्थलो पर कवि की तूलिका ने जो चित्र उपस्थित किये है उन मे सौदर्य का अतिशय प्रभाव दर्शनीय है। जहा कवि ने विस्तारपूर्वक नखशिख के चित्र चित्रित किये है वहा केशराशि से चरणो तक की छवि अकित की गई है। यहा सक्षेप मे उन चित्रो मे व्यजित प्रभाव ही अभीष्ट है।

नखशिख के अन्तर्गत—केशराशि, माग, ललाट, भौहे, नेत्र, नासिका, अधर, दन्तमुक्ता, कपोल, कान, मुख, ग्रीवा, भुजलता, उरोज, उदर, रोमावली, कटि, नाभि, पीठ, चरण, उरुस्थल, चरण और उनकी गति का वर्णन ही प्रायः किया गया है। जायसी-वर्णित नखशिख का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

केशराशि

नायिका के रूप-सौन्दर्य मे अत्यधिक आकर्षण लाने मे केशराशि का अपना एक विशिष्ट स्थान है। कवि कभी उन केशो मे सर्पिणि की कल्पना करता है[1] तो कभी कस्तूरी की।[2] कभी ये केशजाल प्रेम की साँकल बन जाते है[3] तो कभी अपनी श्यामल प्रकृति के कारण राहु बनकर प्रिया के मुखचन्द्र की शरण लेने को बाध्य होते है।[4] हवा मे लहराती हुई केशराशि वर्णसाम्य के कारण कभी कालिन्दी की तरंगो से मेल खाने लगती है[5] तो कभी ये चम्पक वर्णी नायिका के मुखमण्डल भंवरो के समान रसपान करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं।[6]

यहा कवि ने केशराशि के लिए जितने उपमानो का प्रयोग किया वे परम्परागत होते हुए अपना विशिष्ट प्रभाव रसिक के मन पर डालने की पूरी क्षमता रखते है। यहा वर्णित अन्य उपमाओ के अतिरिक्त कवि ने बालो को प्रेम की साकल कह कर यह स्पष्ट किया है कि प्रिय के मन को बाधने मे यह साकल जंजीर एक महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया करती है। बिहारी प्रभृति रीतिकालीन कवियो के नायक-नायिका जूडे के पेचो मे बन्धा करते है तो जायसी का नायक नायिका के खुले और लहराते हुए बालो के सौन्दर्य में ही उलझ कर रह गया। यहा कवि ने बालो की श्यामल प्रकृति और घुघरालेपन को लेकर ही उपमान प्रस्तुत किये है, उनकी दीर्घता मन को कितना मोह सकती है उसकी ओर ध्यान नही दिया।

---

१ नागिन झापि लीन्ह चहु पासा। तेहि पर अलक भुजंगिनी डसा।
२ प्रथम सीस कस्तूरी केसा। बलि वासुकि का और नरेसा।
३. घुघर वार अलकै विष भरी। संकरै पेम चहैं गिउ परी।
४. ससि की सरन लीन्ह जनु राहा।
५. लहरैं देइ जनहु कालिन्दी।
६. भौंर केस वह मालती रानी।

मांग

केशजाल के बाद जायसी ने नायिका के बालो की विभाजक रेखा माग—जिस मे सिन्दूर लगा है, को ही आकर्षण बिन्दु माना है। नायक के सम्मुख नायिका के रूप-सौन्दर्य का ब्योरा देते हुए कभी हीरामन तो कभी कवि स्वय अथवा किसी अन्य पात्र के माध्यम से मांग को गगा-यमुना के मध्य सरस्वती[1] कहता है तो कभी वीर बहूटियों की पांति से उपमा देता है।[2] कभी वह माग अन्धकार मे उजाला देने वाली होती[3] है तो कभी घनघटा मे चमकने वाली चपला।[4] माग रुधिरभरी तलवार भी है[5] और कसौटी पर अकित कंचन रेखा भी।[6] न जाने इस माग ने क्या-क्या गुल खिलाए है। पर इन सभी वर्णनो मे माग मे वीर बहूटी और आरक्त असि की कल्पनाए लोकजीवन से ली गई हैं, शेष उपमाएं तो परम्परागत होने के कारण पिष्ट-पेषण ही लगती हैं। बटमार के प्रसग मे रुधिरलिपटी तलवार की चर्चा कवि पर सूफी प्रभाव को लक्षित करती है।

ललाट

नायिका के ललाट की दीप्ति के समक्ष कवि को कोई उपमान ही न मिला। अब तक के चर्चित सभी उपमान इसके समक्ष हीन पडते है। यहा कवि का लक्ष्य रहा है ललाट की दीप्ति और कान्ति। यहा वर्ण और ललाट की सुघडता की ओर ध्यान नही दिया गया।

कवि नायिका के ललाट की कान्ति को दूज के चांद से तुलना देना चाहता है, पर उसे लगता है कि दूज के चाद मे भला वह दीप्ति या कान्ति कहां जो कि इसमे देखने को मिलती है।[7] कान्ति और ओज की दृष्टि से सूर्य का नाम लिया जा सकता है पर कवि उस पर उत्प्रेक्षा करते हुए कहता है कि इस ललाट को देखते ही वह छुपने को—अस्तगत होने को, बाध्य हो जाता है।[8] हां! इसमे कोई सदेह नही कि 'पारस' ही कान्ति की दृष्टि से इसकी तुलना कर सकता है—

"पारस जोति लिलाटहि ओती।"

---

१. जमुना माझ सरसुति गंगा।
२ वीर बहूटिन की अस पांति।
३. उजियर पथ रैनि मह कीन्हा।
४. जनु घन मह दामिनी परगसी।
५. खाडै धार रुहिर जनु भरा।
६. कंचन रेख कसौटी कसी।
७ कहौ लिलार दुइजें की जोति। दुइजें जोति कहां अस होती।
८. सहस किरन जो सुरुज दिपाई। देखि लिलार सोउ छिप जाई।

भौह

नायक या रसिक के मन को मथित करने मे भौह की भूमिका बडी ही महत्त्वपूर्ण है। कवि बिहारी के अनुसार सीधी सादी आंखों को टेढा-मेड़ा पाठ ये टेढी भौहे ही पढाती रहती हैं, क्योकि कुटिल और टेढी भौहो के कारण ही तो वे प्रिय के मन को अपागों से देखकर घायल किया करती है। जायसी के अनुसार नायिका की वक्र भौहे धनुष का काम करती हैं।[१] यही धनुष कृष्ण के पास भी था जिसने गोपियो को दीवाना बना रखा था।[२]

नेत्र

नायिका के नेत्रो के सौदर्य को कवियो ने अनेकविध उपमानो से संवारा है। जायसी ने रक्ताभ नेत्रो को रतनार कवल कहा है[३] तो श्यामल होने के कारण इन्हे भंवरा भी बताया है। चापल्य के कारण ये नेत्र खंजन के नेत्रो से समानता करते प्रतीत होते है[४] तो कान्ति और निरीहता मे इनका सादृश्य मृग के नयनो से भी किया गया है।[५] अतिशय होने के कारण और वर्जनाओ का उल्लंघन करने के कारण ये नेत्र मछन्दर तुरग भी बन जाते है।[६] यह उपमा गुण कर्म की समानता के आधार पर दी गयी है। श्वेत, श्याम, रतनार आखो का प्रभाव तो रसलीन ने भी स्वीकार किया है।[७]

नासिका

कवि ने नायिका की नासिका को सुघडता और तीखेपन के कारण खड़ग की उपमा दी है[८] जबकि अन्यत्र परम्परागत उपमान शुकनासा का प्रयोग भी किया है।[९] यहा नायिका की नासिका को देख कर शुक ही शरमा जाता है। मैथिलीशरण गुप्त ने उर्मिला को भी शुकनासा मान कर शुक को भ्रम मे डाल दिया।[१०]

---

१. भौहे साम धनुक जनु चढा।
२. उहै धनुक किरसुन पैं गहा।
३ राते कंवल करहिं अलि भंवा।
४-५ खंजन लरहिं मिरिग जनु भूले।
६ उठहिं तुरग लेहिं नहिं बागा।
७. अमी हलाहल मद भरे, सेत, स्याम, रतनार।
जिअत मरत झुकि झुकि परतं जेहि चितवत इक बार।। (रसलीन)
८. नासिका खरग देउ कह जोगु।
९. नासिका देखि लजानेउ सूआ।
१०. नाक का मोती अधर की कान्ति से।
बीज दाडिम का समझ कर भ्रान्ति से।।
देख कर यह शुक हुआ अब मौन है।
सोचता है अन्य शुक यह कौन है।। (साकेत)

अधर

रसिको के लिए अधरामृत का पान अत्यन्त ही प्रिय विषय रहा है। कवि-परम्परा ने स्वभावतः सुन्दर और सहज लालिमा से रंजित अधरो की भूरि-भूरि प्रशसा की है। नैसर्गिक आभा से सुशोभित अधर तो प्रणयी को आदिम युग से प्रणय का निमंत्रण देते आए हैं, इसीलिए कवियो ने उनकी प्रशसा मे अपनी कलम ही तोड दी। जायसी ने भी यहाँ परम्परागत उपमानो के माध्यम से रागारुण अधरो को बिम्बफल[1], विकसित रक्त पुष्प[2], विद्रुम[3], माणिक्य[4] एवं प्रभात के बालरवि से उपमा दी है।[5] यहा यह ज्ञातव्य है कि ये सभी उपमान अधरो की रगत को सामने रखकर प्रस्तुत किये गए हैं, कवि ने अधरो की सुघडता, सुन्दरता आदि पर ध्यान नही दिया, वह तो इनकी लाली मे ही खो गया लगता है।

दन्त पक्ति

सुन्दर, सुघटित, समानाकृति के चमकते दान्त सौन्दर्य मे निखार लाने में सहायक होते है। मुस्कराते समय दृश्यमान दन्तपक्ति यदि सुघड हो तो किसे नही मोह लेती। यहा कवि ने दाँतो की कान्ति और सुघडता दोनो को ही सौन्दर्यवृद्धि का कारण माना है। दात हीरे और दामिनी की तरह दमक रहे हैं।[6] दाडिम के समान दात भला किसके दिल की धडकन को तेज नही किया करते।[7]

कपोल

जायसी ने यहां कपोलो की सुघडता और रंग पर अपने को केन्द्रित किया है। लालिमापूर्ण कपोल नारगी का साम्य करते हैं[8] तो अपनी चुम्बन मधुरता के कारण वे खाड के लड्डू भी है।[9] यह प्रयोग ग्राम्य अधिक और साहित्यिक कम है। अपनी कोमलता के कारण ये कमल समान हैं तो गोलमटोल कपोल गेंद की वर्तुलता की

---

१ बिम्ब सुरग लाजि बन फरे।
२. फूल दुपहरी जानौं राता।
३. हीरा लेई सो विद्रुम धारा।
४ मानिक अधर दसन जनु हीरा (लाल अधरों मे चमकती दन्त-पंक्ति)
५ जनु परभात रात रवि देखा।
६ दसन चौक जनु बैठे हीरा।
   × × ×
   जनु भादौ निसि दामिनी दीसी (श्यामा के दातो का वर्णन है)।
७. दारिउं सरि जो न कै सका।
   फाटेउ हिया दरक्कि।
८ एक नारंग दुइ किये अमोला (वर्णसाम्य)
९. केइ यह सुरग खखौरा बांधे (ग्राम्य जीवन की उपमा)।

समता भी करते है ।[१] इन मनभावन कपोलो पर यदि तिल का निशान भी हो तो वह ऐसे प्रतीत होता है मानो भवरा कमल का रस पीने मे व्यस्त है[२] या नायिका के हृदय मे विद्यमान विरह की आग की चिनगी दिखाई देने लगी है[3] अथवा यह काला तिल घुघची का काला मुँह ही है ।[४] या नायिका के मुख का यह तिल अग्निबाण है जो न जाने किस सौभाग्यशाली नायक पर छोडा जाएगा ।[५] मुख पर चमकता हुआ तिल गगन मे सदा कान्तिमान ध्रुव तारे से भी उपमित किया गया है ।[६]

कवि के ये सभी उपमान तो परम्परागत ही है पर ध्रुव तारे से समानता दिखाकर कवि ने तिलशोभित कपोल की जो सराहना की है उससे उसकी सौन्दर्य-दृष्टि का भाव भी होता है कि कवि लोकजीवन के तथ्यो को कैसे साहित्य मे उतारने मे सफल हुआ है ।

श्रवण

श्रवण—कान के सौन्दर्य का भी अपना एक विशिष्ट महत्व है। कवि ने कानों की सुन्दरता को लक्ष्य करके ही कतिपय उपमान जुटाये है । यहा एक उपमा मे कवि ने कानो की सीप से उपमा देकर उसमे दीपक की कान्ति की कल्पना की है—

'स्रवन सीप दुइ दीप संवारे ।'

एक अन्य स्थान पर कानो की कान्ति और आभा की सूर्य और चांद से तुलना करते हुए कहा गया है—

'दुइ दिसि चाँद सुरज चमकाही ।
नखन भरे निरखि नहिं जाही ॥'

सुघडता और कान्ति को एक साथ अभिव्यंजित करने के लिए इन्हे स्वर्ण के सीपों की संज्ञा भी प्रदान की गयी है—

'स्रवन सुनहु जु कुन्दन सीपी ।'

श्रवण—कानो के सौदर्य से संबद्ध सभी उपमाएँ परम्परागत है और इनमे कानों की सुघडता और आभा को ही कवि ने दर्शाया है । कुडलयुक्त कानो के सौदर्य को यहां चित्रित नही किया गया ।

---

१ सुरंग गेंद नारंग रतनारे ।(आकृति और वर्ण)
२. जानहु भवर पदुम पर टूटा ।
३. सो तिल विरह चिनगि कै करा ।
४ जनु घुंघुची ओहि तिल कलमुँही ।
५. अगिनि बान जानौ तिल सूझा ।
६ सो तिल देखि कपोल पर,
गगन रहा धुअ गाडि ।

मुख

जायसी ने मुख को चन्द्र से उपमित कर प्रचलित परम्परा का निर्वाह ही किया है—

'सासमुख अंग मलय गिरि वासा'

× ×

'ससिमुख जबहिं कहै कछु बाता'

× ×

पद्मनाल-कंवल बिगसा—

मानसर बिनु जल गयउ सुखाय (विरह के क्षणो की मलिनता का उल्लेख है)

मुख-मुसकान को लेकर कवि ने एक सजीव चित्र प्रस्तुत किया है—

दसन-दसन सौ किरिन जो फूटहि, सब जग जनु फुलझरी छूटहिं ।
जानहु ससि महँ बीजु देखावा, चौंधि परै कछु कहै न आवा ।।

ग्रीवा

ग्रीवा—गर्दन के सौन्दर्य को कवि ने कम्बु[1] (शंख), सुराही[2], मयूर[3] और मुर्गे[4] की ग्रीवा से उपमित किया है । इसमे कम्बु और मयूर तो भारतीय परम्परा की उपमाओ से गृहीत है परन्तु सुराही और तमचूर (मुर्गा) फारस की शैली के प्रभाव को द्योतित करते है ।

भुजा

भुजाओ के आकार-प्रकार, कोमलता एव स्निग्धता, सुघडता और वर्ण पर कवि ने विशेष ध्यान दिया है ।

एक ही उदाहरण मे भुजाओ के रंग और सुघड़ता की छवि अंकित करते हुए कवि कहता हैं—

'कनक दण्ड दुइ भुजा कलाई ।
जानौ फेरि कुदेरे भाई ।।

पद्मनाल भुजाओ की समानता नही कर सकी, इसी चिन्ता में वह और अधिक कृश होने लगी है—

'भुज-उपमा पौनार नहिं खीन भएउ एहि चित'

---

१ 'वरनौ गीउ कंबुकी रीसी ।
२ गीउ सुराही के अस भइ । (आकृति साम्य)
३ गीउ मयूर करि जस गढी (सुघडता साम्य)
४ चहै बोल तमचूर सुनावा ।

उरोज

उरोजो या उरजो के सौन्दर्य-वर्णन मे कवि ने यद्यपि प्रचलित उपमानो का आश्रय लिया है तथापि अपनी शैली विशेष और सुप्रयुक्तता के कारण ये उपमान रसिक के मन पर एक अमिट छाप अकित करने की क्षमता रखते है। एक कवि ने तो यहा तक कहा है कि ये उरज जहा होते है उसे तो व्यथित नही करते पर जो इन्हे देख लेता है वह व्यथित हो जाता है—

ये उरज है जाके, पीर होत नही ताके।
इनहू को जो ताके पीर होत उर ताके है ॥

कवि-परम्परा ने नायिका के सौन्दर्य को चित्रित करते समय उरोजो के सौदर्य और उनके आकर्षक आकार पर अपनी तूलिका से अनेकविध चित्र अकित किए है।

जायसी ने नायिका के कुचो के सदर्भ मे सस्कृत साहित्य के प्रचलित दो उपमानो को तो तद्वत ही वर्णित किया है। वे उपमान हैं कचन बेल और श्रीफल—

'कंचन बेल साजि जनु कूदे'
× ×
'जानहु दुनौ सिरीफल जोरा'

अन्य उपमानो मे कंचन के लड्डू, कचन-कचौरी, जभीर, नारगी और लड्डू है जिनका प्रचलन मसनवी काव्यो का था और लोकजीवन की उपमाओं में भी।

कंचन के लड्डू—

'हिया थार कुच कचन लारु'

कंचन कचौरी—

'कनक कचोर उठे जनु चारु'

जंभीर—

'उतग जभीर होइ रखवारी'

नारंगी—

'अस नारंग दहु कहाँ राखे'

लट्टू—

'जानहु दोउ लँटू एक साथा'

उत्थित उरोज—

'जोवन बान लेहिं नहि बागा'

कुचाग्र वर्णन—

कुच कुड्मलो के श्याम वर्ण पर कवि ने यह उत्प्रेक्षा की है, मानो दोनो कुचो ने अपने सिर पर श्याम छत्र ही धारण कर रखा हो—

'साम छत्र दूनहु सिर छाजा'

रोमावली—

जायसी ने कृशोदरी नायिका की नाभि के पास दृश्यमान रोमराजी को देखकर अद्भुत और अनूठी कल्पना की है। सर्पिणी समान श्यामा रोमराजि क्रमश: विरल हो कुचो की ओर बढी हुई है, वह कुचो के समीप जाकर रुक क्यो गयी है, इस पर उत्प्रेक्षा करते हुए कवि ने कहा है कि वह सभवतः इसलिए आगे जाने से रुक गयी, क्योकि उसे मयूर (ग्रीवा का उपमान) दिखाई दे गया। सर्प और मयूर का जन्म-जात वैर है इसलिए उसे देखते ही वह वही (स्तनो के पास ही) रुक गयी यद्यपि वह रोमावली (सर्पिणी) जाना तो कमल (मुख) के पास चाहती थी—

साम भुग्रंगिनी रोमावली।
नाभि निकस कमल कहँ चली।
आइ दुवो नारंग विच भई।
देखि मयूर ठमकि रहि गई।

इस रमणीय उपमा के अतिरिक्त कवि ने रोमावली को वर्ण साम्य के कारण 'कालिन्दी', 'भौरन की पाति' और रूपसाम्य के कारण 'बिच्छी' के रूप मे भी अंकित किया है।[1] इन सभी उपमानो के विवेचन से स्पष्ट है कि कवि ने रोमावली मे श्याम सर्पिणी की जो कल्पना की है वह अत्यन्त ही सटीक, सार्थक और जीवन्त कल्पना है।

कटि

कटि को कवि ने लक भी कहा है। (स्मरण रहे पजाबी भाषा में लंक के लिए 'लक' का प्रयोग होता है) जायसी ने कटि की सूक्ष्मता को स्पष्ट करने के लिए इसे कमलनाल के रेशे की संज्ञा दी है। कमलनाल का रेशा जहां एक ओर सूक्ष्मता का प्रतीक है वहा कोमलता और स्निग्धता का परिचायक भी है—

'दुई खड नलिन माझ जनु तागा।'

इस उपमा के अतिरिक्त जायसी ने पद्मावती की कटि (लंक) को सिंह की कमर से भी श्रेष्ठ बताया है—

लंक पुहुमि अस आहि न काहू।
केहरि कहौ न ओहि सरि ताहू।।

पद्मावती की कमर से केहरी की कमर की तुलना वह कैसे कर सकता है जबकि वह उसका उपमान बनने योग्य ही नही। तभी तो सिंह पराजित होकर बन मे रहने को बाध्य हुआ है और उसी ईर्ष्यावश वह मनुष्यो का माँस खाने और रक्त-

१. (क) कालिन्दी— की कालिन्दी विरह सताई। चलि पयाग अरइल विच आई।
(ख) भ्रमर पक्ति— मनहु चढी भौरन्ह की पाति।
(ग) 'रोमावलि बिछूक कहाऊं।'

पान को लालायित रहता है—

> सिंघ न जीता लंक सरि, हारि लीन्ह बनबासु ।
> तेहि रिस मानुस 'रकत पिय, खाइ मारि कै मांसु ॥

नायिका की कमर को सिंह की कमर से तुलना तो परम्परागत प्रयोग है पर जायसी ने सिंह के बन रहने और मनुष्यो को मारने की बात कहकर एक नवीन उद्भावना की है जिससे यह वर्णन चमत्कारपूर्ण और सार्थक बन गया है ।

हिन्दी के अनेकानेक कवियो ने नायिका के सौन्दर्य की अभिव्यजना के लिए उसकी कमर को सूक्ष्मातिसूक्ष्म दिखाने के लिए अपनी तूलिका की पूरी शक्ति लगा दी है । सौन्दर्यशास्त्र भी अधोभाग और वक्षो के बीच के सधि स्थल की सूक्ष्मता को ही नारी-सौन्दर्य का प्रमुख अग मानता आया है फिर कवि इसे कैसे छोड सकते थे । सुलकनी, कृशमध्या, कृशोदरी, सुमध्यमा, केहरी-लक, भृगलक आदि विशेषणो से नायिकाओं का स्मरण किया गया है पर बिहारी की नायिका की कटि तो परब्रह्म के समान इतनी सूक्ष्म है कि दिखाई भी नही देती । अतिशयोक्ति का यह चरम रूप संभवतः फारसी काव्य शैली का ही प्रभाव माना जायगा ।

आलम की प्रिया शेख की कटि भी सूक्ष्म ही थी जिसकी सूक्ष्मता का कारण भी उसने स्वयं बताया था—

> कनक छरी सी कामिनी, काहे को कटि छीन ।
> कटि की कचन काटि विधि, कुचन मध्य धर दीन ॥

नखशिख-वर्णन के अन्तर्गत कवि ने नायिका की नाभि की गम्भीरता और सुवास पर अधिक बल दिया है[1] । उरुस्थलो—जाघो, को कदली स्तम्भो से उपमित किया गया है ।[2] तथा पदगति को गजगति और हसगति के रूप मे वर्णित किया है ।[3]

जायसी के द्वारा वर्णित 'नखशिख' का विवेचन करते हुए हम इस निर्णय पर पहुचते है कि कवि ने इस वर्णन मे परम्परागत उपमानो का ही प्रयोग किया है । परम्परागत होते हुए भी ये सभी उपमान कवि की अपनी भावभूमि और शैली की विशिष्टता के कारण महत्त्वपूर्ण बन पडे है । यह सम्पूर्ण वर्णन काव्य की दृष्टि से मनोरम है पर फिर भी यह स्वीकार करने मे कोई आपत्ति नही कि कवि इन उपमानो मे से कुछ एक उपमानो के अकन मे ही अधिक सफल हो पाया है । घुघराली

---

१. (क) समुदं भवर जस भंवै गम्भीरू ।
(ख) बेधि रहा जग वासना परिमल मेघ सुगंध ।
तेहि अरधानि भौर सब लुबुध तजहिं न बध ॥

२. जुरे जंघ सोभा अति पाये । केरा खम फेरि जनु लाये ।

३. औ गज गव देखि मन लोभा ।
हस लजाइ मान सर खेले ।

अलको मे प्रेम की जंजीर की कल्पना अत्यन्त ही प्रभावशाली है तो वर्ण साम्य के कारण बालो का राहु बनकर मुख की शरण लेना जैसा चित्रण भी मनोरम बन पडा है ।

इसी प्रकार रोमावली को श्यामसर्पिणी कह कर उसके उरोजो के बीच करने की कल्पना भी कवि की कल्पनाशक्ति एव उसके काव्य चमत्कार की अभिव्यंजक है । कटि का मुकाबिला न कर पाने से सिंह का मनुष्यो को मारना और बन मे रहना, जैसी कल्पना भी कवि की मौलिक उद्भावना की ज्ञापक है ।

सक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि जायसी का नखशिख वर्णन परम्परागत होते हुए भी काव्य की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है । कवि ने यहा शास्त्रीय परम्परा के अतिरिक्त लोकप्रचलित उपमानो का व्यवहार करके इसे और भी मार्मिक बनाने का प्रयास किया है जिसमे कुछ स्थलो पर उसे अधिक सफलता प्राप्त हुई है ।

जायसी की काव्य-कला

काव्य-कला का अर्थ तथा रूप

काव्य का अन्तरंग भावपक्ष और बहिरग कलापक्ष कहलाता है। भावपक्ष के अन्तर्गत प्रतिपाद्य विषय—रस, भाव, विचार आदि—का तथा कलापक्ष के अन्तर्गत प्रतिपादन के माध्यम—भाषा, शैली आदि का समावेश होता है। साहित्य के ये दोनो ही अंग समान रूप से महत्त्वपूर्ण है। कतिपय आत्मवादियो ने काव्य के भावपक्ष (अन्तस्तत्त्व) को कलापक्ष (बाह्य तत्व) से अधिक महत्त्व दिया है। परन्तु यहा विचारणीय यह है कि क्या असुन्दर शरीर मे सुन्दर आत्मा की स्थिति विश्वसनीय तथा ग्राह्य है? आग्ल भाषा मे एक प्रसिद्ध उक्ति है—

'A sound mind in a sound body.'

अर्थात् सुदृढ एव समुन्नत आत्मा केवल सुदृढ एवं समुन्नत शरीर मे ही रह सकती है। अतः अन्तरंग सौन्दर्य का महत्त्व बाह्याग सौन्दर्य के परिप्रेक्ष्य मे ही है। खराद पर चढने से ही मणि का सौन्दर्य द्विगुणित हो जाता है। सत्य (अन्तस्तत्त्व) सौन्दर्य (बाह्य तत्व) के योग से ही शिव बन पाता है। सस्कृत की एक शिक्षापरक उक्ति इसी तथ्य का ही समर्थन करती है—

'सत्य ब्रूयात्प्रियम् ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्।'

मम्मटाचार्य ने 'क्या कहने' के समान ही 'कैसे कहने' के महत्त्व को स्वीकार करते हुए काव्य को 'कान्तासम्मित उपदेश' कहा है। क्रोचे आदि पश्चिमी विद्वानो ने भी काव्य को अनुभूति प्रधान कहते हुए—अनुभूति ही अभिव्यजना है—इस सिद्धान्त को मान्यता दी है। वस्तुत जहा बहिरग काव्य को उत्कर्ष प्रदान करते हैं, वहां अन्तरग बहिरंग को सार्थकता प्रदान करते हैं। सौन्दर्य की प्रतीति तो दोनो—अन्तरग और बहिरग—के समन्वय से होती है। इस प्रकार दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं और इनके समष्टिगत प्रभाव से ही रस निष्पत्ति होती है। वास्तव मे काव्य स्वरूप के समग्रगत होने के कारण कलापक्ष का स्वतन्त्र अस्तित्व ही नही है, केवल अध्ययन की सुविधा के लिए ही इस प्रकार का विभाजन किया जाता है।

संस्कृत काव्यशास्त्र में एक सुन्दर रूपक के द्वारा काव्य के अन्तरग और बहिरंग का निरूपण किया गया है। इसमें कविता को एक लावण्यवती युवती के रूप मे

प्रस्तुत करके उसके आन्तरिक और बाह्य तत्वों अथवा अगों का परिचय इस प्रकार से दिया गया है—

"काव्यस्य शब्दार्थौ शरीरम्, रसादिश्चात्मा, गुणाः शौर्यादिवत्, दोषाः काणत्वादिवत्, रीतयोऽवयवसंस्थान विशेषवत्, अलकाराः कटककुण्डलादिवत् इति।"

अर्थात् शब्दार्थ कविता कामिनी का शरीर है, अलकार आभूषण हैं, रीति अवयवो का संगठन है, गुण स्वभाव और रस आत्मा है। इस रूपक मे रस को शरीरस्थ आत्मा माना गया है और शब्दार्थ, अलकार, गुण, रीति तथा वृत्त (छन्द) आदि को बाह्याग (शरीर और उसके उपकरण) माना गया है।

काव्य-कला की महत्ता तथा उपयोगिता

काव्य-कला की उपयोगिता बहुमुखी है। काव्य के निम्नोक्त प्रयोजनो की सिद्धि मे काव्यकला का योगदान महत्त्वपूर्ण है।

पार्श्वभूति की प्रस्तुति—प्रसंग विशेष का वर्णन करते समय कवि के मन मे उसकी पूरी पृष्ठभूमि रहती है और कवि प्रारम्भ से ही वर्ण्यवस्तु के स्थापन और निर्वाह के लिए यत्नशील होता है। कला ही कवि को इस लक्ष्य की ससिद्धि मे योगदान देती है। कवि मूल विषय की कभी सवादी, कभी विरोधी पद्धति पर और कभी प्रकृति-चित्रण (उद्दीपन, आरोपण) द्वारा पार्श्वभूमि का सीमित उपयोग करता है।

वातावरण का निर्माण—वातावरण रस ग्रहण के लिए मन.स्थिति के अनुकूलन मे सर्वाधिक उपयुक्त साधन है। अतः अनुकूल वातावरण का निर्माण काव्यकला की सर्वोपरि साधना है। कला अपने इस कार्य के सम्पादन—वातावरण-निर्माण—में कल्पना, पुराण, इतिहास आदि का उपयोग करती है।

वर्णन को सजीव रूप देना—काव्य के सभी रूपो—महाकाव्य, खण्डकाव्य, कथाकाव्य आदि मे प्रेम, युद्ध, सौन्दर्य, स्वयंवर, प्रकृति आदि से सम्बन्धित वर्णनो की प्रचुरता रहती है। कला शब्द चित्रो तथा पुनरुक्तियों—कल्पना अथवा भावना को मूर्तिमान करने के लिए उसकी एक से अधिक बार आवृत्ति द्वारा काव्य के स्थूल तथा सूक्ष्म सभी प्रकार के वर्णनो को सरस, रोचक तथा सजीव रूप देकर उन्हे इति-वृत्तात्मकता से काव्यात्मकता मे परिवर्तित करती है और इस प्रकार उन्हे सहृदय-ग्राह्य बना देती है।

काव्य-कला के प्रधान तत्व है—छन्द, अलकार, ध्वन्यर्थ व्यजना, भाषा तथा औचित्य आदि। इनका विस्तृत विवेचन प्रस्तुत है।

काव्य-कला का विशिष्ट क्षेत्र तथा पद्य-गद्य के विभाजक तत्व

कलापक्ष का सम्बन्ध दोनों प्रकार—गद्य तथा पद्य—की रचनाओ से होते हुए

भी उसका विस्तार पद्यबद्ध रचनाओ मे ही अधिक दिखाई देता है। गद्य और पद्य के प्रमुख अन्तर को इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

(क) गद्य विचार शक्ति को जाग्रत करता है और पद्य कल्पनाशक्ति को।
(ख) गद्य का प्रमुख उद्देश्य अर्थबोध है और पद्य का आनन्द नुभूति।
(ग) गद्य प्रधान रूप से तर्कनिष्ठ होता है और पद्य भावनानिष्ठ।
(घ) गद्य मे व्यवहारोपयोगिता होती है और पद्य मे सगीतात्मकता तथा भावोत्कृष्टता।
(ङ) गद्य मे ओजस्विता और समास प्रचुरता होती है तथा पद्य मे सरसता, मधुरता की व्यञ्जिका कोमलकान्त पदावली।

काव्य-कला के तत्त्व

पद्य मे इन सभी गुणो—कल्पनानिष्ठता, आनन्दानुभूति, भावप्रधानता, संगीतात्मकता तथा कोमलकान्त पदावली—का समावेश छन्द के माध्यम से ही होता है। इस तथ्य को अनुभव करते हुए ही विद्वानो ने गद्य और पद्य का विभाजक तत्त्व ही छन्द को स्वीकार किया है। काव्याचार्यो ने छन्दोबद्ध रचना को पद्य और छन्दोविहीन रचना को गद्य माना है।

इस प्रकार छन्द काव्य कला का प्रथम तत्त्व है क्योंकि कविता के लिए लयबद्ध होना अनिवार्य है। छन्द मानवीय भावो को आन्दोलित करने की अपूर्व सामर्थ्य रखते है। प्रदीप्त भावना लयबद्धता और तालबद्धता का ही आश्रय लेती है। प्रकृति की योजना ही ऐसी है कि उद्दीप्त भावना स्वत. ही छन्द का रूप ग्रहण कर लेती है। नाद और लय की अपूर्व क्षमता के कारण ही छन्द मन को सवेदनशील बना देता है। अनुकूल छन्द पाकर जहा कवि की भावना मोहक रूप धारण कर लेती है, वहा छन्दो से उत्पन्न काव्य का माधुर्य तथा संगीत सहृदय को भी रसमग्न कर देता है।

आधुनिक काव्य मे भी नाद-लय के महत्त्व को स्वीकृति प्राप्त है। आधुनिक काल में छन्दो के बन्धन से मुक्ति पाने के उत्साही भी काव्य मे नाद-लय की उपेक्षा का साहस नही कर सके। वस्तुतः काव्य में छन्दों के सम्बन्ध मे भले ही मतभेद हो परंतु छन्द (नाद-लय) के प्रभाव को नकारना कठिन ही नही, असम्भव है।

काव्यगत कला-योजना का **द्वितीय तत्व शब्दालंकारों** का उपयोग है। यमक, अनुप्रास और श्लेष—तीन प्रमुख शब्दालंकार हैं। यमक और अनुप्रास के समुचित उपयोग से काव्य की शोभा मे वृद्धि होती है। इन अलकारो से काव्य को अर्थगौरव भले ही न मिले परन्तु रमणीयता और स्मरणीयता अवश्य मिलती है। इन अलकारो के प्रयोग से सवादी स्वरो के उच्चारण में एकतानता और सुरीलेपन का आभास होता है तथा काव्य की सुश्लिष्टता, कौतुकसृष्टि एव सौष्ठव की वृद्धि होती है। परन्तु यह निश्चित हैं इन अलंकारों का अतिरेक काव्य की शोभा का विघातक सिद्ध होता है।

आधुनिक काल मे 'खुल जाएं छन्द के बन्ध' के समान 'अलंकारो के रजतपाश' को खोलने अर्थात् अनलकृत रचना करने का आन्दोलन चला और इसमे एक तर्क यह दिया गया कि आज का साहित्य विशिष्ट वर्ग के लिए न होकर जनसाधारण के लिए है और जनसाधारण इन अलंकारो के प्रयोग से अनभिज्ञ है। यह वस्तुत 'अनलंकृत रचना को काव्य मानना अग्नि को अनुष्ण मानना' तथा 'भूषण बिना सुजाती सुलच्छनी, सरस, सुबरन, सुवृत्त कविताकामिनी का शोभा न पाना' जैसी अतिवादी धारणाओ की प्रतिक्रिया है, अन्यथा अलकारो की उपेक्षा कदापि सम्भव नही है। आज जिस सर्वसाधारण के लिए साहित्य-सृष्टि की बात की जाती है, वह सामान्य स्त्री-पुरुष भी पद-पद पर प्रतिदिन आलंकारिक भाषा का प्रयोग करता दिखाई देता है। समाचारपत्रो की भाषा मे भी आलकारिकता व्याप्त रहती है।

अलकारो के प्रयोग के विरुद्ध द्वितीय तर्क यह दिया जाता है कि इनके द्वारा भाषा मे कृत्रिम आरोप की सृष्टि होती है। वस्तुत. विचार करने पर ज्ञात होगा कि कलामात्र भी कृत्रिम अनुभूति अथवा प्रतीति है। कला मे सत्य की अपेक्षा सत्याभास का ही अधिक महत्त्व रहता है। अलकार कृत्रिमता की सृष्टि करते है और शोभा की वृद्धि करते है। सत्य यह है कि कलावन्त का कौशल कृत्रिमता को इस प्रकार छिपा लेता है कि वह घनीभूत वास्तविकता बन जाती है।

अलकारो के विरुद्ध एक अन्य तर्क अथवा आक्षेप यह लगाया जाता है कि अलकार भावना के मारक है, पोषक नही। यह वस्तुत अतिरेक की स्थिति मे होता है अन्यथा उनके समुचित उपयोग से निश्चित रूप से काव्यानुभूति सुसज्जित और प्रभावशाली बनती है, विवेच्य आकर्षक और मनोरम बन जाता है। प्राचीन काव्य-शास्त्रियो ने इसी आधार पर ही यह माना है कि अलंकाररहित कविता तो मानो विधवा के समान अर्थात् शोभा रहित है। अग्निपुराणकार का कथन है—

"अलंकार-रहिता विधवैव सरस्वती।"

प्राचीन काव्यशास्त्रियों ने शब्दालंकारो को अनित्य मानते हुए भी अर्थालकारों को नित्य और काव्य के अन्तस्तत्त्व के रूप मे स्वीकार किया है। अलंकारों के रजतपाश से मुक्ति के आन्दोलन के पुरस्कर्ता कविवर सुमित्रानन्दन पन्त ने अलंकारो के संयत प्रयोग की महत्ता और उनसे काव्योत्कर्ष मे वृद्धि को इन शब्दो मे स्वीकार किया है— "अलकार केवल वाणी की सजावट के लिए नही, वे भाव की अभिव्यक्ति के विशेष द्वार है। भाषा की पुष्टि के लिए, राग की परिपूर्णता के लिए आवश्यक उपादान है, वाणी के आचार-व्यवहार, रीति-नीति हैं। जहां उपमा उपमा के लिए, अनुप्रास अनुप्रास के लिए·· वे अभीप्सित स्थान पर पहुचने के मार्ग न रहकर स्वयं अभीप्सित स्थान के अभीप्सित विषय बन जाते हैं वहा काव्य के साम्राज्य मे अराजकता पैदा हो जाती है।"

इस प्रकार अलकारों का संयत प्रयोग साहित्य की श्रीवृद्धि मे निश्चित रूप से ही उपयोगी एवं सहायक होता है—इसमे मतभेद के लिए अवकाश नही।

काव्यकला का **तृतीय तत्व ध्वन्यर्थ-योजना** है। शास्त्रीय विवेचन मे जहा स्पष्ट प्रतिपादन अपेक्षित रहता है, वहां काव्य में सूचकता वाछनीय रहती है। जिस प्रकार पूर्ण विकसित कली की अपेक्षा अस्फुट कली मे अधिक प्रियता है, क्योंकि उस मे अभी विकास की सभावनाएं सन्निहित हैं, उसी प्रकार अभिधार्थ की अपेक्षा व्यग्यार्थ अधिक सूक्ष्म और आकर्षक होता है। काव्य मे शब्द-प्रयोग की सार्थकता भावक मे भाव-कल्पना-तरंगो को आन्दोलित करने मे है और यह कार्य व्यंजक शब्दो के प्रयोग द्वारा ही सम्भव है। जलाशय के स्थिर जल मे ककड मारने से जिस प्रकार दूरगामी आवर्त्तो का जन्म होता है, उसी प्रकार व्यजक शब्द ही सहृदय के मानस मे अनेक भावावर्त्तों की सृष्टि करते है। सहृदय अपने विशिष्ट मानसोपकरण के अनुकूल उनमे से कुछ तरगावर्त्तों को ग्रहण कर लेते है।

छन्दात्मकता रस-निष्पत्ति मे भी सहायक है। रस को व्यग्य ही माना गया है। वस्तुत: रस अन्तर्वर्तिनी भावस्थिति है। ध्वनि अथवा सूचकता अन्तर्मन के निगूढ अनुभवों और सूक्ष्म भावावर्तनो को तल पर उतार देती है, जिससे भावस्थिति पुष्ट होकर रस का रूप ग्रहण कर लेती है।

कलापक्ष मे **भाषा चतुर्थ महत्वपूर्ण** तत्त्व है। काव्य के माध्यम से प्रसग स्वभाव, भावना, विचार, अन्तर्द्वन्द्व इत्यादि भाषा मे ही द्योतित होते है। अत: भाषा काव्य का व्यवहार-पत्र है। काव्य मे प्रयोज्य भाषा के रूप विशेष का नियम तो निर्धारित नही किया जा सकता, पुनरपि लय-बद्ध, नादानुकूल, आलंकारिक एवं व्यञ्जक भाषा ही आदर्श भाषा कहलाती है। भाषा भावाभिव्यक्ति का एक अत्यन्त लचीला साधन है। वस्तुतः व्यक्ति के मानसिक गठन और स्वभाव का परिणाम ही उसकी भाषा-शैली है। अत. भाषा-शैली व्यक्तित्व का सम्पूर्ण प्रकाश है और उसके माध्यम से व्यक्तित्व का पर्याप्त ग्रशो मे पूर्ण अध्ययन हो सकता है। इस व्यक्तिनिष्ठता के कारण ही साहित्य के बोधपक्ष और रूपपक्ष को पृथक् करना असम्भव हो जाता है क्योकि दोनो—विचार और भाषा—अन्योऽन्याश्रित होते है।

भाषा का वैभव शब्दार्थ सम्बन्ध पर आधृत है। विचारदारिद्रय की स्थिति मे शब्दो का प्रयोग इन्द्रजाल ही सिद्ध होता है। अत: उपयुक्त शब्दो का सगत प्रयोग ही कलापक्ष का प्रथम सोपान है। भाषा का सामर्थ्य उसकी व्यञ्जना शक्ति मे ही है। इसी व्यञ्जना तत्त्व के पोषण से अर्थ गौरव की सृष्टि होती है। प्राचीनो द्वारा निर्दिष्ट प्रसाद, ओज, माधुर्यादि आदि गुण तथा वैदर्भी, गौड़ी और पाचाली आदि रीतिया भाषा के सार्वदेशिक और सार्वकालिक तत्त्व है। इन्ही के व्यक्तिगत प्रयोग से विशिष्ट लेखन-शैली का निर्माण होता है।

गुण—माधुर्य ओज, प्रसाद—तथा **रीतियां**—वैदर्भी, गौडी, पाञ्चाली—भाषा—के ग्रंग-सस्थान है। इनके प्रयोग को भाषा के माधुर्य, सामर्थ्य और प्रभाव में वृद्धि होती है।

भारतीय काव्यशास्त्र में रीति शब्द का प्रयोग शैली के लिए हुआ है परन्तु

यहां शैली का अभिप्राय 'style is the man himself' पश्चिमी मान्यता के अनुसार व्यक्ति की शैली न होकर काव्य की शैली है और उसके भेदो का आधार कवि-स्वभाव स्वीकृत है। आनन्दवर्द्धन ने रीति को गुणाश्रित तथा रसोपकर्त्री माना है। वामन के अनुसार तीन रीतियो मे काव्य इस प्रकार समाविष्ट हो जाता हैं, जिस प्रकार रेखाओ मे चित्र समा जाता है।

तीन सर्वमान्य गुणो और रीतियो का स्वरूप इस प्रकार है—

माधुर्य—चित्तद्रवीभावमयोह्लादो माधुर्यमुच्यते।

अर्थात् चित्त को द्रवित कर देने वाला आनन्द विशेष माधुर्य कहलाता है। इसका सम्बन्ध वैदर्भी रीति से है। उसका स्वरूप इस प्रकार है—

माधुर्य व्यञ्जकैर्वर्णै रचना ललितात्मिका।
अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते॥

अर्थात् माधुर्यव्यञ्जक वर्णो से युक्त समासरहित अथवा छोटे-छोटे समास वाली मनोहर रचना रीति कहलाती है। इनका प्रयोग आचार्य विश्वनाथ के अनुसार—

'सम्भोगे करुणे विप्रलम्भे शान्तेऽधिक क्रमात्।'

अर्थात् शृंगार के दोनो भेदों—संयोग, विप्रयोग—करुण और शान्त रसो मे होता है।

ओज—ओजश्चित्तस्य विस्ताररूपं दीप्तत्वमुच्यते।

अर्थात् चित्त का विस्तार रूप दीप्तभाव ओज कहलाता है। इसका सम्बन्ध गौडी रीति से है, जिसका स्वरूप इस प्रकार है—

ओज. प्रकाशकैर्वर्णैर्बन्ध आडम्बरः पुनः।
समासबहुला गौडी।

ओज गुण के प्रकाशक कठिन वर्णों से बनाए हुए अधिक समासो से युक्त उद्भट बन्ध वाली रीति गौडी है और इनका प्रयोग साहित्य दर्पणकार के अनुसार निम्नोक्त रसो मे होता है—

'वीर बीभत्स रौद्रेषु क्रमेणधिक्यमस्य तु।'

ओज का प्रयोग क्रमश. वीर, वीभत्स तथा रौद्र रसो मे उत्तरोत्तर अधिक होता है।

प्रसाद—चित्तं व्याप्नोति यः क्षिप्र शुष्केन्धनमिवानल· स प्रसादः।

अर्थात् जिस प्रकार सूखी लकडी को अग्नि झट से पकड लेती है, इसी प्रकार जो गुण चित्त मे तुरन्त व्याप्त हो जाए, उसे प्रसाद कहते है। उसका सम्बन्ध पाञ्चाली रीति से है, उसका स्वरूप इस प्रकार है—

.... वर्गै· शेषै पुनर्द्वयोः
समस्त पञ्चषपदो बन्धः पाञ्चालिका मता॥

उपर्युक्त दोनो रीतियो के शेष वर्ण—माधुर्य तथा ओज के व्यञ्जक नही—से की गई पाच-छ पदो के समास वाली रचना पाञ्चाली कहलाती है। इनका सम्बन्ध आचार्य विश्वनाथ ने सभी रसो के साथ माना है—

. स प्रसाद: समस्तेषु रसेषु रचनासु च ।

पूर्व अनुभूतियों एवं काल्पनिक भावनाओ के ऐन्द्रिय मूर्त्तीकरण का नाम बिम्ब विधान है। भाव को उत्तेजित तथा तीव्र करने, उसे नया रूप देकर प्राणवान बनाने, काव्य मे संवेदनात्मकता, अलकारिता, क्रमबद्धता तथा प्रभावात्मकता लाने मे बिम्ब का अपूर्व योगदान रहता है। यह बिम्बविधान भी भाषा के एक अनिवार्य गुण के रूप मे मान्यता प्राप्त कर चुका है।

काव्यरूप भी काव्यकला के अन्तर्गत है। नाम रूप से ही नामी का ज्ञान होता है, अत. यह भी एक तत्त्व है। रूप किसी वस्तु के अस्तित्व का वह आभ्यन्तर कारण है जिसके द्वारा उस वस्तु के उपादान (मैटीरियल) को आकार प्राप्त होता है। इसके अनुसार कलाकृति मे रूप का तात्पर्य उन समस्त तत्त्वो से समन्वित, सघटित आकार है, जिससे उस कृति के विशिष्ट गुणो का निश्चय होता है।

साहित्यकार अपने उपादान—भाषा—को जो रूप प्रदान करता है, वह पिछले उसके मन मे उठा हुआ अस्पष्ट, रूपहीन, विचाराभास होता है। इसी विचाराभास को कृतिकार की रचना की प्रेरणा मिलती है और जब विचाराभास स्पष्ट अनुभव या विचार बन जाता है, तभी उसे रूप प्राप्त होना कहा जाता है।

यहा यह उल्लेखनीय है कि यद्यपि रूप तत्त्व और शैली तत्त्व मे अन्तर है, शैली वह प्रक्रिया है जिसमें वस्तु समाविष्ट रहती है और रूप का सम्बन्ध वस्तु से होता है, प्रक्रिया से नही तथापि प्रक्रिया को समझ लेने और उस कृति को उसमे प्रतिष्ठित कर लेने के बाद रूपात्मक तत्त्व और शैली तत्त्व मे अन्तर नही रह जाता। वस्तु को वस्तु के रूप मे देखना रूप तत्त्व है और वस्तु को समाविष्ट करने की प्रक्रिया से देखना शैली तत्त्व कहलाता है।

काव्य-कला का अन्तिम परन्तु सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है—औचित्य का निर्वाह। सस्कृत काव्यशास्त्र मे **औचित्य** को एक सिद्धान्त विशेष का गौरव प्राप्त है। कलापक्ष मे औचित्य का अर्थ देश, काल, परिस्थिति के अनुसार शब्द, अलंकार तथा वर्णन आदि का सयत प्रयोग है। वस्तुत: उत्कृष्ट कोटि के शैलीकार के लिए शब्द-सम्पत्ति इतनी महत्त्वपूर्ण नही, जितनी उपयुक्त स्थान पर योग्यतम शब्द की स्थापना करने मे समर्थ मानसिक गुण की आवश्यकता महत्त्वपूर्ण है। सभी क्षेत्रों—छन्द, अलंकार, भाषा, शैली—मे उपयुक्त रूपविन्यास औचित्य की योजना पर ही आश्रित है।

बहुधा कलापक्ष को भावपक्ष की अपेक्षा अधिक श्रमसाध्य समझा जाता है परन्तु वास्तव मे यह पूर्णरूप से कवि के व्यक्तित्व और मानसिक गठन से सम्बन्धित हैं। कलापक्ष मे विभिन्नता का आधार भी कवि के व्यक्तित्व की विभिन्नता है। रुचिवैचित्र्य और दृष्टिकोण की भिन्नता-विलक्षणता के कारण कोई छन्द पर बल देता है तो कोई अलंकार को महत्त्व देता है, एक रीतिवादी है तो दूसरा वाग्वैचित्र्य-प्रेमी है। इसके अतिरिक्त भाव की तरलता, गहनता और अनन्यता के रूप मे भी

कलापक्ष मे विशदता अथवा गूढता, विस्तार अथवा संकोच का योग हो जाता है। इस प्रकार कलापक्ष भावपक्ष से भिन्न न होकर एक ही व्यक्तित्व के दो पक्ष हैं।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर काव्य के कलापक्ष मे निम्नोक्त तत्त्व स्पष्ट होते हैं—

१. व्यक्तित्व के अनुरूप समृद्ध समर्थ गुणात्मक तथा बिम्बात्मक भाषा।
२. अलकारो का संयत प्रयोग।
३. व्यञ्जकता तथा सूचकता।
४. छन्दोबद्धता तथा संगीतात्मकता।
५ काव्यरूप।
६. औचित्य विधान

जायसी के काव्य मे कलापक्ष के अन्तर्गत इन तत्त्वो का विवरण आगे प्रस्तुत है।

काव्य-कला के तत्त्वो का विवेचन

१. **भाषा**—मानव-मन की अनुभूतियो की साहित्य मे कलात्मक अभिव्यक्ति का एकमात्र माध्यम भाषा है। अन्य कलाओ मे अभिव्यक्ति के अन्य साधन—स्वर, वर्ण तथा रग आदि भी होते हैं परन्तु साहित्य मे भाषा ही अभिव्यक्ति का एकमात्र साधन है। मानव-मन की दो मूल-प्रवृत्तिया हैं—सहजानुभूति तथा अभिव्यक्ति। प्रथम के अन्तर्गत मानव अपने भावो और विचारो का अनुभव करता है और द्वितीय के अन्तर्गत उन अनुभूतियो को अभिव्यक्ति देता है। अभिव्यक्ति की आवश्यकता-पूर्ति के लिए ही समाज ने भाषा का आविष्कार किया है।

काव्य व्यक्ति की शाब्दिक अभिव्यक्ति है। वह भाषा मे निर्मित होता है और भाषा व्यक्तियो की व्यक्तिगत अनुभूतियो की देन है। भाषा के अभाव मे व्यक्ति की अनुभूतियो की सत्ता नही हो सकती और अनुभूतियो के बिना भाषा नही बन सकती। भाषा मे व्यक्त होने पर ही अनुभूति, भाव, विचार आदि को तत्तत् सज्ञा प्राप्त होती है अन्यथा व्यक्त मन की अव्यक्त अनुभूतियो को तो यह नाम नही मिल पाता। इस प्रकार भाषा आन्तरिक सौन्दर्य को अनुप्राणित करने वाला उसका व्यक्त बाह्य रूप है।

भाषा मे वैयक्तिकता की प्रधानता रहती है। प्रत्येक व्यक्ति, वर्ग तथा जाति की एक भिन्न भाषा होती है। काव्य में यह निजी विशेषता अथवा भिन्नता शैली कहलाती है। सूफी कवियो की भाषा-सम्बन्धी सामान्य (वर्गगत) प्रवृत्ति की चर्चा करते हुए "सूफियो के कराम के काम" पुस्तक में पृष्ठ ४ पर मौलाना अब्दुल हक लिखते हैं—"सूफी फकीरों की यह एक विशेषता रही है कि वे जिस भूखण्ड मे गए, वहा की बोली को उन्होने सीखा और वहां के रहने वालों मे अपने विचारो को उनकी बोली मे ही व्यक्त किया। जायसी भी इसके अपवाद नही थे।"

वस्तुत. मौलाना साहब का उपर्युक्त कथन सभी धर्म-प्रचारकों पर लागू होता है। महात्मा बुद्ध, महावीर स्वामी, गोस्वामी तुलसीदास, महात्मा कबीर और स्वामी दयानन्द इसके प्रमाण हैं। कबीर को छोडकर शेष अत्यन्त सुशिक्षित थे। संस्कृत भाषा के सम्यक् ज्ञाता थे परन्तु अपने सन्देश को जनसाधारण तक पहुचाने के लिए उन सब ने लोकभाषा को ही अपनाना उचित समझा। सूफी कवि भी इसी परम्परा मे आते है।

जायसी की काव्य-भाषा तत्कालीन बोलचाल की अवधी है। जायसी के मुसलमान होने के कारण एक ओर जहा उनकी भाषा मे अरबी-फारसी के प्रचलित शब्दो और मुहावरो का प्रयोग मिलता है वहा दूसरी ओर उनके सस्कृत भाषा का अधिक ज्ञाता न होने के कारण उनकी भाषा सस्कृत के प्रभाव से पूर्णतया विमुक्त मिलती है। जायसी की विशेषता यह है कि उन्होने अरबी-फारसी के शब्दो, उक्तियों तथा मुहावरो को ग्रहण करते हुए स्वाभाविकता का विशेष ध्यान रखा है। उन्होने सामान्यतः भाषा की प्रकृति को कही विनष्ट नही होने दिया। इसी प्रकार जायसी के काव्य मे पाण्डित्य के आडम्बर से विहीन अत्यन्त स्वाभाविक और यथातथ्य भाषा का रूप सुरक्षित मिलता है। भाषा और साहित्य के लिए जायसी की यह बडी भारी देन है।

जायसी के समान हिन्दी मे ठेठ पूरवी अवधी के शब्दो का प्रयोक्ता कवि उपलब्ध नही। किन्तु जायसी ने अपने को पूरवी अवधी तक बाधे नही रखा। यथावसर उन्होने पश्चिमी अवधी का प्रयोग भी किया है। उनके काव्य मे सकर्मक भूतकालिक क्रिया के लिंग, वचन अधिकाशत पश्चिमी हिन्दी के ढंग पर कर्म के अनुसार ही रखे है। उदाहरणार्थ—

'बसिठन्ह आइ कही अस बाता।'

इसी प्रकार जायसी के काव्य मे पश्चिमी हिन्दी की भूतकालिक क्रिया का पुरुष भेद-रहित रूप भी मिलता है—

'तुम तौ खेलि मन्दिर मह आई।'

कही-कही पश्चिमी साधारण क्रिया के न वर्णान्त रूप का प्रयोग भी मिलता है—

कित आवन पुनि अपने हाथा। कित मिलिके खेलव एक साथा।।

इसके अतिरिक्त जायसी ने कही-कही पछाही हिन्दी के बहुवचन रूपो का प्रयोग भी किया है—

(क) "नसै भई सब तांहि।"
(ख) "जो बन लाग हिलोरै लेई।"

जायसी ने 'तू' अथवा 'तै' के स्थान पर तुइ' का प्राय. प्रयोग किया है—

"तुइं सुरग मूरति वह कही। चित महं लागि चित्र होइ रही।"

जायसी की काव्य-भाषा मे प्राचीन शब्दो और रूपो का प्रयोग भी मिलता है। उदाहरणार्थ—

प्राचीन शब्द—पुहुमी, सरह, विसहर, पइट्ठ, भुवाल, अहुद, ससहर, दिनि-अपर, पृथ्वी, शलभ, विषधर, प्रतिष्ठ, भूपाल, अभ्युष्ठ, शशधर, दिनकर आदि।

जायसी द्वारा प्रयुक्त कतिपय शब्द तो इतने प्राचीन है कि आज उनका प्रचलन उठ जाने से अनजान-से लगते हैं। 'चाहि', 'बाज', 'अहा', 'पारना', 'आछना' आदि ऐसे शब्द है। 'चाहि' का बढकर, 'बाज' का बिना, बगैर या छोडकर 'अहा' का था, 'पारना' का सकना और आछना का था, है, रहा आदि अर्थो मे जायसी के प्रयोग दर्शनीय है—

(क) "मेघहु चाहि अधिक बै कारे।" (बढकर)
(ख) "को उठाइ बैठारे बाज पियारे पीव।" (बगैर)
(ग) "भाट अहै ईसर की कला।" (था)
(घ) "परी नाथ कोई छुवै न पारा।" (सका)
(ङ) "कंवल न आछै आपनि बारी।" (है)

प्राचीन रूप—प्राचीन रूपो के सभी कारको मे 'कौ' 'हि' अथवा 'ह' विभक्ति का प्रयोग :

कर्त्ता	जेहि जीउ दीन्ह कीन्ह ससारू।
कर्म	चाट हिं करै हस्ति सरि जोगू।
करण	बर्जाहि तिनर्काहि मारि उडाई।
सम्प्रदान	देम देस के मोहिं आर्वाहि।
अपादान	राजा गरबहिं बोलै नाही।
सम्बन्ध	सौजंहि जन सब रोवा पखिहि तन सब पाख।
	चतुर वेद हौं पडित हीरामन मोहि नाव।
अधिकरण	तोहि चढि हेर कोइ नहिं साथा।
	कौन पानि जोहि पवन न मिला?

जायसी ने अवधी की प्रकृति के अनुसार ही दो से अधिक वर्णों के शब्दो के आदि मे ह्रस्व इ, उ के उपरान्त आ का प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ खडी बोली तथा ब्रज में स्यार, क्यारी, ब्याज, ब्याह, प्यार, न्याव, ग्वाल, ख्वार तथा द्वार लिखे जाने वाले शब्दो को क्रमश. सियार, कियारी, वियाज, वियाह, वियार, नियाव, गुआल, खुआर तथा दुआर के रूप मे प्रयुक्त किया है। अवधी मे य व का इ उ मे परिवर्तन हो जाने के कारण ही इहा, उहाँ, आइ, जाउ प्रयोग प्रचलित हैं। जायसी ने शुद्धता की ओर ध्यान न देकर ठेठ भाषा का ही प्रयोग किया है।

भाषा के ठेठ बोलचाल के रूप को अपनाते हुए ही जायसी ने निधडक देहाती शब्दों का खुलकर प्रयोग किया है। इस प्रकार के कतिपय शब्द निम्नलिखित हैं—

अम्बिर वा (व्यर्थ), पाजी (पैदल), भारि (समस्त), खोपा (चोटी), परबत्ते (सुआ), पुरविला (पूर्वजन्म का), निछोही (निष्ठुर), हीछा (इच्छा), निरास (किसी का आश्रित न होना), विसवासी (विश्वासघाती)।

जायसी यद्यपि शब्दशिल्पी अथवा भाषाशास्त्री नही थे तथापि उन्होंने कतिपय शब्द **स्वयं भी गढ़े** है। इस प्रकार के कतिपय शब्द निम्नलिखित है—

फास-बन्धन के विपरीतार्थवाची अनफास शब्द का मोक्ष के अर्थ मे जायसी का अपना प्रयोग है। महेश की पत्नी पार्वती के लिए महेशी शब्द भी जायसी की निजी कल्पना है। हाथ मिलाने के अर्थ मे—'हाथ दीन्ही' तथा विधवापन के अर्थ मे 'दुहाग' शब्द कवि के अपने गढे हुए है।

जायसी ने धर्म विवेचन के प्रसंग मे कतिपय निम्नलिखित **अरबी शब्दों** का प्रयोग किया है—

नूर, जमाल, जलाल, नबी, मखदूम, मुरशिद, पीर, फरमान, रसूल, पैगम्बर, आदम, उम्मत, अर्स, दाद, पाक।

जायसी ने कही-कही फारसी पदो का प्रयोग भी किया है। उदाहरणार्थ—

केस मेघावर **सर ता** पाई

कवि ने फारसी व्याकरण के अनुसार ही कही-कही समास-रचना की है—

(क) लीक-परवान पुरुष कर बोला।

(ख) भा भिनिसार किरन-रवि फूटी।

प्रथम मे परवान-लीक और द्वितीय मे रवि-किरन रूप ही भारतीय भाषाओ की प्रकृति के अनुकूल है परन्तु कवि ने फारसी व्याकरण का अनुकरण किया है।

कही-कही भारतीय शब्दो का अर्थ अरबी-फारसी की प्रकृति के अनुकूल हुआ है—

(क) डोलहिं नाहि देव जस आदी।

(ख) राजहिं देख हसा मन देवा।

इन वाक्यो मे देव शब्द का प्रयोग देवतापरक न होकर देह=दैत्य के अर्थ-वाची है।

यहाँ उल्लेखनीय है कि जायसी के काव्य मे अरबी-फारसी के इस प्रकार के प्रयोग अपवाद-रूप ही है। अन्यथा जायसी ने अधिकांशतः बोलचाल की अवधी के शब्दो का ही प्रयोग किया है। जायसी की भाषा की प्रशंसा में डा० त्रिलोकीनारायण दीक्षित का कथन है—"फारसी की साधारण-सी झलक को छोडकर जायसी की भाषा बोलचाल की भाषा है। देशी साचे मे ढली हुई, हिन्दुओं की घरेलू, मधुर, मनमोहक भाषा। उसका माधुर्य अनोखा माधुर्य है जिसे अवधी का अपना मिठास कहा जा सकता है। तुलसी की कोमलकान्त पदावली का इसमे कोई हाथ नही। जायसी तुलसी जैसी संस्कृत पदावली गर्भित भाषा भले ही न लिख सके हो और तुलसी दोनो ही प्रकार की ठेठ अवधी और सस्कृत पदावलीयुक्त; परन्तु जायसी की भाषा एक ही ढग की सही, पर है अनूठी और सुन्दरतम। शुद्ध, बे-मेल अवधी की मिठास के लिए 'पद्मावत'-कानन मे कूकती हुई कोकिला के प्रति कान लगाने ही पड़ेंगे। अन्य कही अवधी का वह माधुर्य न मिलेगा।"

भाषा मे माधुर्य लाने के लिए जायसी ने क्लिष्ट और श्रुति-कटु वर्णो के प्रयोग का परिहार किया है। उदाहरणार्थ लकार के स्थान पर उन्होने रेफ का प्रयोग किया है—

होत आव **दर** जगत असूझू। (दल)

सयुक्त वर्णो को वियुक्त कर दिया है—

परसि पाय राजा के रानी। (स्पर्श)

काज रतन तुम्ह जिय पर खेला। (कार्य, रत्न)

इस प्रकार अपनी बोलचाल की अवधी को मधुर तथा सरस बनाने का उन्होने प्रशसनीय प्रयास किया है। इसके साथ ही कवि शिरोमणि जायसी ने भाषा को अभि-व्यक्ति-सक्षम तथा प्रभावपूर्ण बनाने के लिए मुहावरो, लोकोक्तियो तथा सूक्तियों का प्रचुर संयत प्रयोग किया है।

मुहावरा भाषा का वह लाक्षणिक प्रयोग है, जिससे भाषा मे वचन वक्रता-जन्य चमत्कार की सृष्टि तथा प्रभावातिशय की वृद्धि होती है। सच्चे कवियो की वाणी मे अनायास मुहावरो का समावेश हो जाता है। जायसी रससिद्ध कवि थे, उनकी भाषा मे मुहावरों का सहज और प्रसन्न रूप देखने को मिलता है। कतिपय मुहावरे बानगी-रूप मे प्रस्तुत हैं—

(क) देश देश के वर मोहि आवहिं। पिता हमार न **आँख लगावहिं**।

(ख) राजा सुना **दीठी भै आना**।

(ग) जेहि तिल देखि सो **तिल तिल जरा**।

(घ) काहु छुए न पाए **गए मरोरत हाथ**।

(ङ) को अस बात सिंघ मुख घाले।

(च) लीन्हेसि सास **पेट जिउ आवा**।

(छ) जोबन नीर घटे का घटा। सत्त के बर जौ **नहिं हिय फटा**।

(ज) **सिंघ की मोंछ हाथ को मेला**।

इस प्रकार के समग्र काव्य मे बिखरे मुहावरों से जायसी की भाषा अभिव्यक्ति-सक्षम और प्रभावपूर्ण बन गई है।

लोकोक्तियां मानवी-ज्ञान के घनीभूत रत्न हैं, जिनमे बुद्धि और अनुभव की किरणें फूटने वाली ज्योति प्राप्त होती है। सासारिक व्यवहार-पटुता और सामान्य-बुद्धि का जैसा निदर्शन कहावतो मे मिलता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। इनमे सूत्र-प्रणाली होती है, भाव की मार्मिकता घनीभूत रहती है और लघु प्रयत्न से विस्तृत अर्थ व्यक्त करने की प्रवृत्ति रहती है। कहने की आवश्यकता नही कि इनके प्रयोग से काव्य मे जहां मार्मिकता तथा सरसता आती है, वहा कवि के लोक-ज्ञान का परिचय मिलता है। इस प्रकार इनसे काव्य मे उत्कर्ष आता है।

जायसी के काव्य मे लोकोक्तियों का अतीव सुन्दर और यथास्थान प्रयोग हुआ है। कतिपय प्रयुक्त लोकोक्तिया निम्नलिखित है—

(क) बोवे बबुर लवै कित धाना ।
(ख) अपु मरै बिनु सरग न छवा ।
(ग) निकसे घिउ न बिनु दधि मथे ।
(घ) समुद न जान कुआ कर भेदा ।
(ङ) जानउ घिउ बस धर परा ।
(च) घर के भेद लक जनु फूटी ।
(छ) तुरय रोग हरि माथे आवे ।
(ज) सूधी अगुरि न निकसै घीउ ।
(झ) धरती परा सरग को चाटा ।
(ञ) कान टूट जिहि आभरन का लै करब सो सोन ।

जायसी की भाषा मे माधुर्य और उदात्तता के कारणभूत है उनकी **सूक्तिया** । सूक्तिया किसी कवि की वह उक्ति है जो कवि के वाक्चातुर्य, भाषा-माधुर्य तथा भाव-व्यञ्जकत्व के कारण श्रोता-पाठक को मुग्ध करके भाव को सम्प्रेष्य बनाती है। जायसी के काव्य मे वस्तु-वर्णन और तथ्य-प्रकाशन की दृष्टि से कतिपय उक्तिया इतनी मोहक बन पडी हैं कि सामाजिको ने उन्हे अपने कण्ठ का हार बना लिया है । बानगी के रूप मे कतिपय उक्तियां प्रस्तुत है—

(क) मुहम्मद विरिध जो नइ चलै काह चलै भुइं होइ ।
जोबन रतन हरान है मकु धरती पर होइ ।।
(ख) बसै मीन जल धरती अबा बसै अकास ।
जौ पिरीति पै दुरौ मह अन्त होहिं एक पास ।।
(ग) मुहम्मद जीवन जब भरन रहट घरी की रीति ।
घरी सो आई ज्यों भरी ढरी जनम गा बीति ।।
(घ) मारै सोइ निसोगा डरै न अपने दोस ।
केला केलि करै का जौ भा बैरि परोस ।।
(ङ) मुहमद बारि प्रेम की जेउ भावै तेउं खेलु ।
तीलहि फूलहि संग जेउं होइ फुलाएल तेल ।।
(च) पढे के आगे जो पढै दून लाभ तेंहि होइ ।
(छ) जौ न होत अस बैरी तो कहि काहू कै आस ।
(ज) दुई सो छुपाए न छुपै एक हत्या औ पाप । (पापी पेट)

इस प्रकार की अपने अनुभव को सुन्दर शब्दो मे प्रस्तुत करने वाली अनेक सूक्तिया जायसी के काव्य मे यत्र-यत्र बिखरी पडी है ।

जायसी ने अपनी भाषा को प्रभविष्णुता देने के लिए गुणो और रीतियो का भी उपयोग किया है । उनके काव्य मे माधुर्य और प्रसाद गुणो की छटा तो देखने को मिलती है परन्तु ओज गुण और गौडी रीति के उत्कृष्ट रूप के दर्शन नही होते । 'पद्मावत मे युद्ध के तीन प्रसग आए है—रत्नसेन का अलाउद्दीन से युद्ध, गोरा का

सुलतान की सेना से युद्ध तथा रत्नसेन का देवपाल के साथ युद्ध। इन तीनों स्थलो पर भाषा मे विषयानुरूप ओजस्विता आ गई है। वस्तुत वीर रसात्मक प्रसगो मे भाषा का इस प्रकार का आवेशमय रूप ग्रहण करना स्वाभाविक ही है परन्तु जायसी की भाषा मे समासिकता तथा वर्गान्त्यवर्णों, टवर्ग ध्वनियो और सयुक्ताक्षरो के विशेष सतर्क प्रयोग नही मिलते। पुनरपि चित्त विस्तारक दीप्ति की स्थिति अत्यन्त सार्थक तथा सम्यक् परिपुष्ट है, बीभत्स-रौद्र-वीररसपरक युद्ध प्रसगो के उदाहरण प्रस्तुत है—

रत्नसेन-अलाउद्दीन युद्ध

भा सग्राम न अस भा काउ। लोहै दुई दिस भएउ अगाहू।
कध कबध पूरि भुइँ परे। रुहिर सलिल होइ सायर भरे।
अनद बियाह करहिं मसुखाए। अब भरव जरम जरम कह पाए।
चौंसठि जोगिनि खप्पर पूरा। बिग जमुकन्ह घर बाजहिं तूरा।
गीध चील्ह सब माडौ छावहिं। काग कलोल करहिं औ गावहिं।
आजु सहि हठि अनी बियाही। पाई मुगुति जैस जिय चाही।
जेन्ह जस मासू भखा परावा। तस तेन्ह कर लै औरन्ह खावा।

गोरा-सरजा युद्ध

कहे सि अन्त अब भा भुइ परना। अंत सो तत खेह सिर भरना।
कहे कै गरजि सिघ अस धावा। सरजा सारदूर पह आवा।
सरजैं कीन्ह साँगि सौ घाउ। परा खरग जनु परा निहाऊ।
वज्र सांगि औ वज्र के डाडा। उठी आगि सिर बाजत खाडा।
जानहु बजर बजर सौ बाजा। सबही कहा परी अब गाजा।
दोसर खरग कुडि पर दीन्हा। सरजैं धरि ओडन पर लीन्हा।
तीसर खरग कंध पर लावा। काध गुरुज हत धाव न आवा।

रत्नसेन-देवपाल युद्ध

चढि देवपाल राउ रन गाजा। मोहि तोहि जूझि एकौझा राजा।
मेलेसि साग आइ बिख भरी। मेटि न जाइ काल की घरी।
आइ नाभि वर सागि बईठी। नाभि बेधि निकसी जहा पीठी।
चला मारि तब राजै मारा। कंध टूट धर परा निनारा।
सीस काटि के पैरें बाधा। पावा दाउं वैर जस साधा।
जियत फिरा आइउ बलु हरा। माझ बाट होइ लोहे धरा।
कारी घाउ जाइ नहिं डोला। गही जीभ जम कहै को बोला।

उपर्युक्त तीनो उदाहरणो से स्पष्ट है कि भाषा की क्लिष्टता तथा वर्णों का आडम्बर न होने पर भी चित्तविस्तार रूप दीप्ति हो रही है। इसका प्रमाण रस का सम्यक् परिपाक है। उल्लेखनीय है कि गुणों की स्थिति अङ्गीरस के शौर्यादि

आत्मभूत विशेषताओ के रूप में मान्य है। इस रूप मे वीर, रौद्र, बीभत्स आदि रसों की परिपुष्टता उपर्युक्त प्रसगो मे मान्य होने पर ओज गुण की सत्ता स्वतः सिद्ध हो जाती है। वस्तुत. यह जायसी की विशेषता है कि वे सरल तथा असमस्त पदावली-युक्त भाषा से उद्देश्य सिद्धि कर पाए है।

पद्मावत श्रृंगार-प्रधान काव्य है। यद्यपि इसकी परिणति शान्त रस मे हुई है, कवि ने ग्रन्थ के अन्त मे लौकिक प्रेम-कहानी को आध्यात्मिक रूप देकर भी इसे साधनापरक चित्रण स्वीकार किया है और इस रूप मे यह शान्तरसपरक ग्रन्थ सिद्ध होता है तथापि इसका प्रधान रस श्रृगार है। श्रृगार के साथ-साथ करुण रस की भी सीमित परन्तु सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। पुनरपि ग्रन्थ मे सर्वत्र प्रधानता श्रृगार की है। विस्तार की दृष्टि से जायसी ने सयोग श्रृगार का चित्रण अधिक किया है परन्तु वियोग श्रृगार के चित्रण मे जैसी सफलता कवि को मिली है, वैसी सयोग श्रृगार के वर्णन मे नही। वियोग श्रृगार के चित्रण मे कवि सूफी काव्यधारा मे ही नही प्रत्युत समग्र हिन्दी साहित्य मे अनुपम है। इसका कारण यह है कि जायसी 'प्रेम की पीर' के चितेरे कलाकार थे और प्रेम की परिपुष्टि वियोग मे ही होती है। विश्वनाथ कविराज का कथन है कि जिस प्रकार कषायित करने—अनार के छिलको के काढे मे कपडे को भिगोना—से रग मे स्वच्छता आ जाती है, उसी प्रकार मान, ईर्ष्या, प्रवासादिजन्य वियोग के उपरान्त ही सम्भोग श्रृंगार मे चमत्कार-विशेष आ जाता है।

न विना विप्रलम्भेन सम्भोग· पुष्टिमश्नुते।
कषायिते हि वस्त्रादौ भूयान् रागो विवर्धते॥

जायसी ने श्रृगार-संयोग और वियोग, करुण तथा शान्तरस प्रधान प्रसगो मे सर्वत्र वैदर्भी रीति और माधुर्य गुण का प्रयोग किया है। उदाहरण प्रस्तुत है—

संयोग श्रृगार

कहि सत भाउ भएउ कठलागू। जनु कंचन मों मिला सुहागू।
चौरासी आसन बर जोगी। खट रस बिदक चतुर सो भोगी।
कुसुम माल असि मालति पाई। जनु चंपा गहि डार ओनाई।
करी बेंधि जनु भवर भुलाना। हना राहु अर्जुन के बाना।
नारग जानु कधीर नख देई। अधर आब्रु रस जानहु लेई।
कौतुक केलि करहिं दुख नंसा। कुदहि कुरुलहि जनु सर हंसा।

वियोग श्रृंगार

पिउ वियोग अस बाउर जीऊ। पपीहा तस बौलै पिउ पीऊ।
अधिक काम दगवै सो रामा। हरि जिउ लै सो गएउ पिय नामा।
विरह बान तस लाग न डोली। रकत पसीज भीजि तन चोली।
खिन एक आव पेट महं स्वांसा। खिनहि जाइ सब होइ निरासा।

पौनु डोलावहिं सीचंहि चोला । पहरक समुझि नारि मुख बोला ।
प्रान पियान होत केइ राखा । को मिलाव चात्रिक कै भाखा ।

करुण

लै सर ऊपर खाट बिछाइ । पैढी दुवौ कत कठ लाई ।
जियत कत तुम्ह हम कठ लाई । मुए कंठ नहिं छाडहिं साइ ।
औ जो गाठि कत तुम्ह जोरी । आदि अत दिन्हि जाइ न छोरी ।
एहि जग काहु जो आथि निआथि । हम तुम्ह नाह दुहू जग साथी ।
लागी कठ आगि दै होरी । छार भइ जरि अंग न मोरी ।

शान्त

(क) छार उठाइ लीन्ह एक मूठी । दीन्हि उडाइ पिरिथमी झूठी ।
जौ लगि ऊपर छार न परई । तब लगि नाहि जो तिस्ना मरई ।

(ख) यहु ससार सपन कर लेखा । बिछुरि गए जानहु नहिं देखा ।

उपर्युक्त उदाहरणो मे माधुर्य की व्यजना स्पष्ट है। यदि निष्पक्ष रूप से जायसी के काव्य मे गुणो की खोज की जाए तो हमारी दृष्टि मे सर्वत्र प्रसाद गुण ही दिखाई देता है। जायसी कवि होने के साथ-साथ धर्म-प्रचारक भी थे और मूलत. उनका कवित्व धर्म प्रचार का एक साधन ही था। इस कारण जायसी ने अर्थ-गौरव को महत्त्व देते हुए भी सरल, असमस्त तथा सुगम शब्दावली का प्रयोग किया है। उनकी प्रसन्न शब्दावली सत्वर अर्थ को प्रस्तुत कर सहृदय को प्रतीक्षारत नही रखती, प्रतिपाद्य की विशिष्टता सत्वर ही सामाजिक के हृदय को आविष्ट कर लेती है।

जायसी ने अपने कथ्य को सहृदय, संवेद्य तथा प्रभावपूर्ण बनाने के लिए भाषा मे चित्रात्मकता अथवा बिम्बो की बडी मोहक योजना की है।

अपने मूल अर्थ मे बिम्ब योजना से अभिप्राय इस प्रकार के चित्रण से है, जिसमे वक्तव्य वस्तु या प्रस्तुत को यथार्थ रूपरंग मे अभिव्यक्त किया जाता है। अलंकार और बिम्बविधान की विभाजक रेखा यह है कि जहा अलकार मे उपमेय की विशेषताओ को बोधगम्य बनाने के लिए उपमान का माध्यम ग्रहण किया जाता है, वहा बिम्ब-योजना मे स्वय उपमेय के ही रूप को इन्द्रिय-ग्राह्य रूप मे प्रस्तुत किया जाता है।

काव्य मे बिम्ब-योजना दो रूप से की जाती है, एक रूप तो परिचयात्मक होता है जिसमे मूर्त्त वस्तुओ की सूची प्रस्तुत की जाती है, यह स्थूल चित्रण कहलाता हैं, दूसरा रूप भावात्मक अथवा सूक्ष्म चित्रण है, इसके अन्तर्गत कवि चेतनाजगत् मे प्रवेश कर बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव की योजना शब्द और अर्थ के साहचर्य द्वारा करता है।

जायसी अत्यन्त संवेदनशील कवि थे। संस्कृत के महाकवि बाणभट्ट के समान शब्दों मे अर्थो के अक्षय स्रोत से समृद्ध चित्र उतारने में अत्यन्त निपुण थे। वे कल्पना-

जनित चित्र की पूरी रेखाओ को मानस मे प्रत्यक्ष करते हुए चित्र क लिए न्यूनतम आवश्यक अश को ही ग्रहण करते हैं, फलतः बीच की कई कडिया छूट जाती है, जिन्हे पाठक को अपनी ओर से स्पष्ट करना पडता है। इस प्रकार के अनेक उदाहरणो में कतिपय प्रस्तुत हैं—

राघौ जौ धनि बरन सुनाइ सुनत साह मुरछा गति आइ।
जनु मूरति वह परगट भई दरस देखाइ तबहि छबि गई।।

यहा "जनु मूरति वह परगट भई" मे शब्द स्पष्ट करते है कि राघवदूत के वर्णन मे ऐसी चित्रात्मकता थी कि शाह ने मानो अपनी आखो से पद्मावती के रूप को देख लिया और वह मूर्त्ति राजा के समक्ष प्रकट हो गई किन्तु ज्यो ही चित्रात्मक वर्णन समाप्त हुआ, त्यो ही वह मूर्त्ति तिरोहित हो गई।

सरोवर के रूपक का जायसी ने अनेक स्थलो पर प्रयोग किया है। यहा कवि केवल गुण-साम्य तक सीमित न रहकर मूल-प्रकृति तक पहुचा है। ग्रीष्म मे सरोवर के पानी के सूख जाने पर उसकी मिट्टी के चटक-चटक कर फटने के बिम्ब का प्रयोग नागमती की व्यथा को मूर्त्तित करने मे सार्थक सिद्ध हुआ है—

सरवर हिया घटत नित जाई। टूकि टूकि होइ होइ बेहराई।
बिहरत हिया करहु पिय टेका। दीठि दवंगरा मेखहु ऐका।।

'दीठि दवगरा' और 'विहरत दिया' जैसे सचित्र शब्दों से बडे ही सुन्दर बिम्बो की उपस्थिति हो रही है।

जायसी ने पद्मावती के रूप-सौन्दर्य चित्रण मे ही प्रतीकात्मकता का सुन्दर प्रयोग किया है—

बलि देवता भए देखि सेंदुरु। पूजै मांग भोर उठि सूरु।
भोर साझ रवि होइ जो राता। ओही सो सेंदुर राता गाता।

पद्मावत की मांग पर सब देवता बलि हुए है और सूर्य अरुणाई से उसकी पूजा करने के लिए उदित होता है। प्रात' साय सूर्य की लालिमा ही उसके अंगो की लाली है। इस प्रकार भौतिक धरातल पर पद्मावती स्वर्ग के दिव्य भावो का प्रतिबिम्ब है। आकाश मे धूप है और उसकी छाया पृथ्वी की भौतिक वस्तुओ से पड रही है।

जायसी के बिम्बविधान की प्रशंसा मे डा० वासुदेव शरण अग्रवाल का कहना है—"जायसी का काव्य कितना बहुमुखी और गम्भीर है इसे कहते हुए शब्द हार जाते हैं।...जब मैं पद्मावत की अपनी सजीवनी टीका लिख रहा था तब मेरे मन मे एक ओर जायसी के मूर्त्त चित्रात्मक वर्णनों की छाप पडी जिनमे ये वस्तुओ का रूप खडा कर देते हैं, दूसरी ओर मैं उनकी भावात्मक कल्पनाओ से भी बहुत प्रभावित हुआ, जिनके द्वारा वे मूर्त्त के आधार पर अमूर्त्त की ओर संकेत करते हैं। काव्य-स्थलों की यह द्विविध शक्ति इस कवि की तरंगित प्रतिभा की परिचायिका है।" वस्तुतः मध्यकालीन हिन्दी कवियो मे जायसी बिम्बविधान मे अप्रतिम है। उनके

बिम्ब सवेदना, भाव तथा कल्पना आदि सभी दृष्टियो से अनुपम तथा जायसी के व्यक्तित्व के अनुरूप ही अन्य कवियो के बिम्बो से भिन्न हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जायसी की भाषा पूर्वी और पश्चिमी अवधी की विशेषताओ से सम्पन्न है। उसकी रूपावली यद्यपि तद्भव शब्द प्रधान है तथापि देशी-विदेशी शब्दो का बहिष्कारक नही। भाषा को अभिव्यक्त-सामर्थ्य देने के लिए कवि ने विभिन्न भाषाओ के प्रचलित शब्दो को निस्सकोच ग्रहण किया है। कवि की उल्लेखनीय विशेषता यह है कि उसने पदो के अन्त मे दीर्घान्त करने के अतिरिक्त शब्दो का रूपान्तर, उनकी तोड-मरोड नही की। कही-कही न्यून पदत्व दोष अवश्य आया है परन्तु ऐसे स्थल थोडे ही है। जायसी ने मुहावरो, लोकोक्तियो और सूक्तियो, गुण-रीतियो तथा बिम्बविधान आदि के द्वारा अपनी भाषा को न केवल समृद्ध, भावाभिव्यजन सक्षम तथा भावपूर्ण बनाया है, प्रत्युत उसे कर्णप्रिय तथा हृदयाह्लादक रूप भी प्रदान किया है। वस्तुत डा० दीक्षित का कथन सवंथा उपयुक्त है—"जायसी की भाषा का ठेठ अवधी रूप और अकृतिम सौन्दर्य अन्यत्र दुर्लभ है।" जायसी के अपने व्यक्तित्व की सरलता के अनुरूप ही उनकी अभिव्यक्ति सहज और सरल बन पडी है।

अलकार

अलंकार काव्य के शोभावर्धक साधन है। अलंकृत व्यक्ति के समान अलकृत भाषा की भी एक विशिष्ट गरिमा है। अलकारो का विरोध वहा होता है जहा वह कवि का प्रतिपाद्य बन जाता है अर्थात् साधन न होकर साध्य हो जाता है। साधन रूप मे, साध्य के उपकारक रूप मे उसकी काव्य में स्थिति सदैव वांछनीय है। काव्य के प्रतिपाद्य को उत्कर्ष प्रदान करने मे उनकी उपयोगिता और महत्ता विवादातीत है।

जायसी ने अपने काव्य मे शब्दालंकारो और अर्थालंकारो का बडा ही सुन्दर तथा सयत प्रयोग किया है।

अनुप्रास—(रसानुकूल वर्णों की आवृत्ति)

(क) पपीहा पीउ पुकारत पाव।

(ख) सोरह सहस घोड घोडसारा।

यमक—(भिन्नार्थक समान शब्दो की आवृत्ति)

(क) गई सो पूजि मन पूजि न आसा।

(ख) रस नहिं रस-नहिं एकौ भावा।

श्लेष—(अनेकार्थक शब्दो का प्रयोग)

(क) रतन चला घर भा अधिआरा।

(ख) हंस जो रहा सरीर महं पाख जरा गा भागि।

मुद्रा—(प्रस्तुत अर्थ के अतिरिक्त अन्य शास्त्र, इतिहासपरक अर्थ का बोध)

(क) कालिह न होइ रहि मही रामा। आजु करहु रावन संग्रामा।

(ख) पाण्डव की प्रतिभा सम लेखो। अरजुन, भीम महामति देखौ।

उपमा—(उपमेय की शोभा का उपमान के समान वर्णन)

(क) भंवर केस वह मालति रानी। विसहर लुरहि लेहिं अरघानी।

(ख) चाद जैस जग विधि औतारा। दीन्ह कलक कीन्ह उजिआरा।

रूपक—(उपमेय पर उपमान का आरोप)

(क) प्रीति-बेलि उपनी हिय-बारी।

(ख) सेज-नागिनी फिर फिर डसा।

उत्प्रेक्षा—(उपमेय मे उपमान की सम्भावना)

(क) छोरे केस मोतिलर छूटी। जानहु रैंनि नखत सब टूटि।

(ख) पुहुप सुगन्ध करहिं एहि आसा। मकु हिरकाइ लेइ हम वासा।

अतिशयोक्ति—(बात का बढा-चढा कर वर्णन करना)

(क) चाद सूरुज सत भावरि लेही। नखत मोति नेवछावरि देही।

(ख) रवि ससि नखत दिपहिं ओहि जोती। रतन पदारथ मानिक मोती।

व्यतिरेक—(उपमेय का उपमान से अधिक उत्कर्ष दिखाना)

(क) सुरुज किरन जस निरमल तेहि ते अधिक सरीर।

(ख) का सरवरि तेहि देहु मयकू। चाद कलंकी वह निकलंकू।

प्रतीप—(उपमान की उपमेय से हीनता अथवा उपमान का अनादर)

(क) वदन देखि घटि चाद छपाना। दसन देखि कै बीजु लजाना।

(ख) सहस किरन जो सुरुज छिपाई। देखि लिलार सोउ छबि जाई।

भ्रम—(वर्ण्य वस्तु से साम्य के कारण और का और समझ लेना)

(क) भूलि चकोर दीठि मुख लावा। मेघ घटा महं चाद दिखावा।

(ख) अधर दसन पर नासिक सोभा। दारिवें देखि सुआ मन लोभा।

दृष्टान्त—उपमेय वाक्य और उपमान वाक्यों का साधारण धर्म अलग होने पर भी दोनो मे बिम्ब-प्रतिबिम्बभाव सम्बन्ध)

(क) का भा जोग कथिनि के कथे। निकसे घिउ न बिनु दधि मथे।

(ख) का तोर पुरुष रैन कर राऊ। उलू न जान दिवस कर भाऊ।

असंगति—(कारण और कार्य की भिन्न-स्थिति)

(क) तुम मुख चमकै बीजुरी। मोहि मुख बरसै मेह।

(ख) रतनसेन जो बान्धाँ मसि गोरा के गात।

इस प्रकार जायसी के काव्य मे पद-पद पर अलंकार मिलते है परन्तु जायसी की उल्लेखनीय विशेषता है कि उन्होने अलकार को कही भी अलंकार्य नही बनने दिया। अलंकारो का काव्य के शोभावर्धक साधनो के रूप मे ही प्रयोग किया है। इस सम्बन्ध मे हमे आनन्दवर्धनाचार्य की उक्ति स्मरण हो आती है—**"अलंकारान्तराणि हि निरूप्यमाण दुर्घटनान्यपि रस-समाहित चेतसः प्रतिभानवतः कवेः अहंपूर्विकया परापतन्ति।"**

अर्थात् निरूप्यमाण की कठिनाइया सहन करने पर भी प्रतिभाशाली कवियो के समग्र अलकार प्रथम स्नान ग्रहण करने की आपाधापी से—हम पहले, हम पहले, कहते हुए-से—फूट पडते है। आचार्य महोदय का कहने का अभिप्राय यह है कि सच्चे कवियो को वर्णन को उत्कर्ष देने के लिए अलकारो की खोज नही करनी पडती प्रत्युत उनके आगे तो अलकार कर-बद्ध होकर अपने प्रयोग के लिए प्रस्तुत रहते है। इस प्रकार सच्चे कवियो के काव्य मे अलकारों का सहज और रसोत्कर्ष विधायक प्रयोग होता है। मलिक मुहम्मद जायसी इस प्रकार के सच्चे कवि थे। उन्होने अलकारो के प्रयोग के लिए कोई प्रयत्न नही किया। अनायास ही उनकी वाणी मे अलकार फूट पडे है। जहाँ कही भी थोडा-बहुत प्रयत्न विधान दृष्टिगोचर होता है, अस्वाभाविकता स्पष्ट हो जाती है। अधिकाशतः उनका अलकार-प्रयोग अयत्नज होने के कारण सहृदयाह्लादक बन पडा है। अलकार-प्रयोग से उनके काव्य मे नाद-माधुर्य, अर्थ-गौरव तथा रसपरिपाक हुआ है।

व्यंजकता

काव्यशास्त्र मे तीन सर्वसम्मत शब्द शक्तियो—अभिधा, लक्षणा और व्यंजना—मे व्यंजना की महती प्रतिष्ठा है। रस को व्यंजना का विषय माना गया है और व्यंग्यार्थ को ही काव्य के उच्चावच का आधार स्वीकार किया गया है। व्यजना से प्रतीत होने वाले व्यंग्यार्थ को ही रसवादियो ने रस और ध्वनिवादियो ने ध्वनि नाम दिया है। व्यग्यार्थ का स्वरूप आनन्दवर्धनाचार्य के शब्दो मे इस प्रकार है—

यथार्थ शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थौ।
व्यक्तः काव्यविशेषः स. ध्वनिरिति सूरिभि. कथितः॥

अर्थात् जहा अर्थ अपने को अथवा शब्द अपने अर्थ को गुणीभूत करके उस प्रतीयमान की अभिव्यक्ति करते हैं, उसे व्यंग्यार्थ कहते हैं और यही व्यग्यार्थ भी विद्वानों द्वारा ध्वनि शब्द से अभिहित किया गया है।

अभिधालभ्य वाच्यार्थ और व्यंजना के विषय व्यग्यार्थ के उत्तर को आनन्दवर्धनाचार्य ने दो उदाहरणो द्वारा स्पष्ट किया है—

जिस प्रकार रमणी के सुन्दर अवयव और उससे प्रस्फुटित होता हुआ लावण्य, जिस प्रकार दीप और उससे निसृत प्रकार दोनो भिन्न है, उसी प्रकार वाच्यार्थ और व्यग्यार्थ भी भिन्न-भिन्न हैं।

मम्मट, विश्वनाथ आदि सभी आचार्यों ने वाच्यातिशायी व्यंग्य-प्रधान काव्य को ही उत्तम काव्य मानते ही व्यजन के महत्त्व को स्वीकार किया है।

वस्तुतः वाग्वैदग्ध्य, हृदयस्पर्शिता तथा चित्त-चमत्कृति की दृष्टि से व्यग्यार्थ अतुलनीय है। यहां यह उल्लेखनीय है कि अर्थसौदर्य की दृष्टि से जितना व्यंग्यार्थ रमणीय होने के कारण महत्त्वपूर्ण है, उतना ही उसके सौदर्य के बोध के लिए बुद्धि की विशदता तथा निर्मलता अपेक्षित है। आचार्यों ने व्यजना के अनेक भेद किए है। इनमे

प्रमुख है—शाब्दी और आर्थी। शाब्दी के भेद हैं—अभिधामूला और लक्षणामूला।

जायसी के काव्य मे व्यजना के कई रूप मिलते है। यद्यपि जायसी ने अधिकाशतः सरलता को स्थान दिया है तथापि उनके काव्य का अन्तर्हित सौदर्य गहन अनुशीलन की अपेक्षा रखता है। अन्योक्ति के माध्यम से प्रस्तुत के साथ अप्रस्तुत अर्थ की भावोत्पादक रूप मे व्यजना का ध्वनि-सौदर्य का स्फुटित करने वाला एक उदाहरण दर्शनीय है—

> ऐ रानी मन देखु विचारी। एहि नैहर रहना दिन चारि।
> जब लगि अहैं पिता कर राजू। खेलि लेहु जो खेलहु आजू।
> पुनि सासुर हम गौनव कालि। कित हम कित एह सरवर पाली।

अभिधामूला शाब्दी व्यजना मे सयोग विप्रयोग आदि से अनेकार्थक शब्दो का एकार्थ नियन्त्रित हो जाने पर, अन्यार्थ का बोध होता है। इसका सुन्दर उदाहरण पद्मावत मे इस प्रकार से है—

> धातु कमाय सिखै तै जोगी। अबक समा निरधातु वियोगी।
> कहा सो खोलहु विरबा लोना। जेहि ते होइ रूप औ लोना।
> का हरतार पार नहि पावा। गन्धक काहे कुरकुटा खावा।
> कहा छपाए चाद हमारा। जेहि बिनु रैनि जगत अधियारा।

इस अवतरण मे धातु का अर्थ धातु विज्ञान, लोना का अर्थ चांदी-सोने का निर्णायक तत्त्व आदि हैं। इसका अभिधार्थ तो योगपरक है परन्तु व्यग्यार्थ प्रेमसाधना परक है।

लक्षणामूला आर्थी व्यंजना मे मुख्यार्थ नियंत्रित होकर प्रयोजन विशेष से अन्यार्थ (प्रतीयमान) का सूचक होता है। जायसी के काव्य मे इसके प्रयोग की कमी नही है। एक उदाहरण प्रस्तुत है—

> 'सकुचै डरै मुरै मन नारी। गहु न बाह रे जोगि भिखारी।'

कहने की आवश्यकता नही कि इस नाही का अर्थ निषेध न होकर अनुरोध भी है। रत्नसेन की वेशभूषा को देखकर पद्मावती के निम्न कथन मे व्यजना का सुन्दर रूप दिखाई देता है—

> देखि भभूति छूत मोहि लागा। कापे चाद राहु सो भागा।
> जोगी तोरि तपसी कै काया। लायौ चहै अंग मोहि छाया।
> बार भिखारि न मागसि भीखा। मागै आइ सरग चढि सीखा।

पद्मावती के इस कथन के व्यंग्यार्थ को समझ कर ही रत्नसेन इसका उत्तर इस प्रकार देता है—

> अनु तुम्ह कारन पेम भिखारी। राज छाडि कै भएउ भिखारी।
> नेह तुम्हार जो हिए समाना। चितउर मांह न सुमिरेउं आना॥

पद्मावती के सौंदर्य-चित्रण में भी कवि ने कही-कही व्यजना का प्रयोग किया

है। एक उदाहरण प्रस्तुत है—

नयन जो देखा कंवल भा, निरमल नीर सरीर।
हंसत जो देखा हंस भा, दसन जोति नगहीर।

इसे पद्मावती के सौदर्य की पराकाष्ठा का उदाहरण कहा जा सकता है। इसका सारा सौदर्य व्यंजना मे निहित है।

हमारे विचार मे जायसी के काव्य मे व्यजना के उपर्युक्त उदाहरणो का अभाव तो नही परन्तु सहृदयाह्लादक उत्कृष्ट कोटि के उदाहरण बहुत भी नही। व्यंजना से लभ्य अर्थ विदग्धजनो की विशद मति का विषय होता है और उसका सौदर्य गोपन मे निहित रहता है। जिस प्रकार रमणी के परावृत्त मुख के सौंदर्य के दर्शन की अपेक्षाकृत अधिक उत्सुकता रहती है, उसी प्रकार गुप्त अर्थबोध के प्रति भी स्पष्ट अर्थ की अपेक्षा अधिक तत्परतापूर्ण जिज्ञासा रहती है। इस प्रकार जायसी के काव्य मे गूढ अर्थ के अवबोधक विदग्धजनो के विषयीभूत उदाहरणो की प्रचुरता नही। जैसा कि, ऊपर निवेदन किया जा चुका है। जायसी का काव्य धर्मप्रचारार्थ, किस्से-कहानी की पद्धति पर रचित है। उसमे अभिधा का ही विशेष माधुर्य है। लक्षणा, व्यंजना के उदाहरण तो सीमित संख्या मे ही उपलब्ध हैं।

छन्दोबद्धता—आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के शब्दो मे—"जिन पक्तियो मे वर्णो या मात्राओ की संख्या नियमित होती है, वे छन्द कहाती है और छन्द मे जो कुछ कहा जाता है, वह पद्य कहलाता है। ' जो सिद्ध कवि है, वे चाहे जिस छन्द का प्रयोग करे, उनका पद्य अच्छा ही होता है।'' वर्णन के अनुकूल वृत्त-प्रयोग करने से कविता का आस्वादन करने वालो को अधिक आनन्द मिलता है।" कविवर पन्तजी के अनुसार—"कविता और छन्द के बीच बडा घनिष्ठ सम्बन्ध है। कविता हमारे प्राणो का संगीत है, छन्द हृत्कम्पन है, कविता का स्वभाव ही छन्द मे लयमान होता है हिंदी का संगीत केवल मात्रिक छन्दो ही मे अपने स्वाभाविक विकास तथा स्वास्थ्य की सम्पूर्णता प्राप्त कर सकता है। उन्ही के द्वारा उनमे सौदर्य की रक्षा की जा सकती है।"

उपर्युक्त उद्धरणो से निम्नोक्त तथ्य स्पष्ट होते हैं—

(१) वर्णो-मात्राओ की नियत स्थिति का नाम छन्द है।
(२) छन्दोबद्ध रचना पद्य अथवा कविता कहलाती है।
(३) अनुकूल छन्द-प्रयोग से कविता मे उत्कर्ष आ जाता है।
(४) मात्रिक छन्द हिंदी की प्रकृति के अधिक अनुकूल है।

जायसी अवधी भाषा के कवि थे और प्रत्येक भाषा अथवा बोली के अपने विशिष्ट छद होते है, जिनमे उसका सौदर्य विशेष रूप से निखरता है। ब्रजभाषा का सौदर्य 'दोहा', 'कवित्त', 'सवैया', तथा 'रोला' छन्दो मे जैसा निखरता है, वैसा दोहा-चौपाई मे नही। राजस्थानी के विशेष प्रिय छन्द 'टूटा', 'पाघडी', 'कवित्त' और 'वेलियो' है। इसी प्रकार अवधी के प्रिय छन्द है—'दोहा' 'चौपाई', 'बरवै', 'सवैया'

सोरठा और 'छप्पय'। ये अवधी के अपने छन्द है। इन छन्दो मे भी दोहा, चौपाई ही ऐसे छंद हैं, जिनका प्रयोग कवियो ने सर्वाधिक किया है।···इनमे अवधी के कवियो की प्रतिभा-किरणो का आलोक सम्यक् रूप से प्रस्फुटित दृष्टिगोचर होता है।

जायसी ने अपने काव्यो मे दोहा-चौपाई छन्दो का प्रयोग किया है। दोहा और चौपाई अवधी के सर्वाधिक प्रिय छन्द हैं। गोस्वामी तुलसीदास ने भी इन्ही छदो को सर्वाधिक अपनाया है। गोस्वामी जी ने अपने 'मानस' मे चौपाइयो की सम-सख्या के पश्चात् दोहा रखा है और जायसी ने विषम सख्या के उपरान्त।

दोहे छन्द के चार चरण होते है। सम चरणो मे ग्यारह और विषम चरणो मे तेरह मात्राएं होती हैं। विषम चरणो के आदि मे जगण नही होता और अन्त मे लघु होता है। चौपाई के दो चरणो को अर्द्धाली और चार चरणो को चौपाई कहा जाता है। इसमे क्रम इतना ही रहता है कि सम के पीछे सम और विषम के पीछे विषम कल ही यत्नपूर्वक रखा जाता है। अन्त मे गुरु-लघु न रखने का विशेप ध्यान रखा जाता है।

जायसी के दोहा-चौपाई छन्दःशास्त्रीय दृष्टि से जहां शुद्ध है, वहा काव्य मे सगीतात्मकता लाने मे भी समर्थ है। जायसी ने बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया है अत. उनके काव्य मे संयुक्ताक्षरो का प्रयोग नही हुआ। इस कारण नाद-लय का सचार अनायास एवं सहज रूप से हो गया है। जायसी के काव्य की गेयता सर्वजन विदित है। अमेठी नरेश रामसिंह का जायसी को निमन्त्रित करने का कारण जायसी की काव्यमाधुरी का मोहन था। जायसी के काव्य का प्रस्तुत दोहा उनके शिष्य के कलकण्ठ से सुनकर रामसिंह मन्त्र-मुग्ध हो उठे थे—

कमल जो विगसा मानसर बिनु जल गयो सुखाय।
रूख बेलि पुनि पलुहै जो पिय सीचे आय॥

आचार्य शुक्ल ने 'जायसी ग्रंथावली' मे इस किंवदन्ती का उल्लेख करते हुए कहा है कि जायसी के जीवनकाल में ही उनके शिष्य उनके काव्य को गाते फिरते थे। इससे जायसी के काव्य की गेयता और लोकप्रियता स्वत. सिद्ध है। जायसी के छन्दो के माधुर्य ने ही कदाचित् गोस्वामी तुलसीदास को भी इन छन्दो के प्रयोग के प्रति आकृष्ट किया।

काव्यरूप

जायसी की छ' रचनाएं उपलब्ध है—यह पीछे लिखा जा चुका है। इनमे 'पद्मावत' तथा 'चित्रावत' को छोडकर शेष मुक्तक है। 'चित्रावत' भी एक साधारण रचना है, कवि की ख्याति का आधार 'पद्मावत' है और उसी पर हिंदी साहित्य मे सर्वाधिक विचार हुआ है। उसके काव्यरूप का प्रश्न आज विवादास्पद बना हुआ है।

आचार्य शुक्ल ने 'पद्मावत' को सर्वप्रथम मसनवी शैली पर रचित प्रबन्ध काव्य घोषित किया और उनके इस मत का हिंदी समीक्षको द्वारा पर्याप्त समय तक

अन्धानुकरण होता रहा परन्तु अब इस मान्यता का विरोध होने लगा है।

प्रबन्धकाव्य की विशेषताए भारतीय काव्यशास्त्र मे इस प्रकार निरूपित हैं—

१ विभावादि के औचित्य से रमणीयभूत ऐतिहासिक अथवा कल्पित कथा-वस्तु की प्रतिष्ठा।

२. कथा मे आवश्यक काट-छाट द्वारा नीरस प्रसगो का परिहार।

३. सन्धि-सन्ध्यंगो का नियोजन।

४ रस परिपाक पर दृष्टि।

५. अलंकारो की रसानुकूल योजना।

मसनवी काव्य की विशेषताए इस प्रकार से है—

१. किसी प्रेमकथा का सागोपाग शृंखलाबद्ध वर्णन।

२. काव्य के आरम्भ मे ईशस्तुति।

३ समकालीन शासक की प्रशसा तथा आत्मपरिचय।

४. कथा का सर्गों अथवा खण्डो मे अविभाजन।

५. सम्पूर्ण काव्य का एक ही छन्द मे लिखित होना।

६ किसी सन्देश अथवा उद्देश्य-विशेष की प्रतिष्ठा।

७ कथा मे आध्यात्मिकता का समावेश।

८. वर्णन विविधता की प्रचुरता।

डा० गोविन्द त्रिगुणायत ने इन दोनो प्रकार के काव्य-लक्षणो को 'पद्मावत' मे घटता न देखकर उसे दोनो ही काव्य-पद्धतियो से प्रभावित मानकर उसके प्रबन्ध तत्त्व की परीक्षा के लिए अपनी ओर से प्रबन्ध काव्य की निम्नोक्त विशेषताएं निर्धारित की हैं—

(१) सानुबन्ध प्रवाहपूर्ण प्रकथन।
 (क) आधिकारिक और प्रासंगिक कथाओ की सुसम्बद्धता।
 (ख) कार्यान्विति।
 (ग) सम्बन्ध निर्वाह।
 (घ) प्रवाह।
 (ङ) रोचकता।

(२) जीवन के किसी सम्पूर्ण दृश्य का रसात्मक चित्रण।

(३) पात्र तथा चरित्र-चित्रण।

(४) पात्रो द्वारा भाव-व्यंजना।

इस प्रकार डा० त्रिगुणायत ने 'पद्मावत' की मसनवी शैली का महाकाव्य सिद्ध करने के लिए दोनो—भारतीय तथा फारसी—काव्य पद्धतियों के तत्त्वो मे समन्वय लाने का प्रयास किया है परन्तु डा० गणपतिचन्द्र ने इसे महाकाव्य मानने से इन्कार

कर दिया है । उनके विचार मे 'पद्मावत' वस्तुतः महाकाव्य न होकर कथाकाव्य है । डा० गुप्त ने महाकाव्य और कथाकाव्य के अन्तर को निम्नोक्त रूप से स्पष्ट किया है—

(१) महाकाव्य के मूल मे आदर्शवादी अथवा आदर्शपरक (मर्यादावादी) चेतना होती है जो किसी महत् पात्र या महान् पुरुष के चरित्र का अवतरण करती हुई उदात्त सन्देश की व्यजना करती है, जबकि कथाकाव्य की मूल चेतना स्वच्छन्दता-परक होती है, उसमे आदर्श की स्थापना की अपेक्षा सौदर्य-प्रेम की अभिव्यंजना का तथा लोकमगल की अपेक्षा लोक-रंजन की भावना का लक्ष्य अधिक रहता है ।

(२) महाकाव्य में परम्पराओ एव मर्यादाओ की रक्षा के लिए प्रणय-स्वप्नो की बलि दी जा सकती है जबकि कथाकाव्य मे प्रणय-स्वप्नो की पूर्ति के लिए पर-म्पराओ और मर्यादाओ का अतिक्रमण सहज ही सम्भव है ।

(३) महाकाव्य के लिए यह आवश्यक नही कि वह शृगार रस प्रधान हो, वीर, करुण, भयानक, रौद्र की भी प्रमुखता उसमे सम्भव है किन्तु कथा के लिए प्रणय—रोमानी प्रेम—की प्रधानता अनिवार्य है ।

(४) महाकाव्यकार घटनाओ की अपेक्षा पात्रो को और चमत्कार की अपेक्षा सरसता को अधिक महत्त्व प्रदान करता है, जबकि कथाकाव्य मे स्थिति इसके विपरीत रहती है ।

'पद्मावत' मे किसी महत्कार्य की योजना नही और न ही उसमें महाकाव्य के अन्य लक्षण घटित होते है । इस प्रकार न वह महाकाव्य है और न ही मसनवी शैली पर रचित काव्य । वह कथाकाव्य है और उसमे कथाकाव्य की ही सभी विशेषताए—समकालीन शासक का उल्लेख, बीच-बीच में धार्मिक-नैतिक तत्त्वो का समावेश, कथा का शान्तरस मे अन्त, चौपाइयो के बीच-बीच मे दोहो का प्रयोग, कथा का खण्डो मे विभाजन आदि—उपलब्ध हैं । स्वयं कवि ने भी इसे कथा कहा है—

(क) प्रेम कथा एहि भाति विचारहु ।

(ख) आदि अन्त जसि कथ्था अहै । लिखि भाषा चौपाई कहै ।

इस प्रकार डा० गुप्त के अनुसार जायसी का 'पद्मावत' भारतीय पद्धति का अथवा मसनवी शैली का महाकाव्य न होकर विशुद्ध रूप से कथाकाव्य है । उनके शब्दों मे—"पद्मावत मूलतः रोमांचिक शैली का कथाकाव्य है किन्तु आलोचको ने इसे आदर्शपरक महाकाव्यो की कसौटी पर कसने का प्रयास किया, फलस्वरूप उन्हे निराशा का सामना करना पडा । कुछ विद्वानो ने कथाकाव्य और महाकाव्य की मूल चेतना एवं पद्धति के सूक्ष्म अन्तर को समझे बिना ही बलात् इससे महाकाव्य सिद्ध करने का प्रयास भी किया है । इसके अतिरिक्त उन विद्वानो ने, जिनके लिए भारती-यता का आदर्श एकमात्र राम का एक पत्नीत्व एवं सीता का पातिव्रत्य है, इसकी प्रेम-पद्धति को सर्वथा विदेशी एवं इसके प्रतिपाद्य को सूफीमत घोषित कर दिया ।"

औचित्य विधान

सस्कृत काव्यशास्त्र में काव्य के सौन्दर्य के मूलतत्त्व की खोज के प्रयत्नो मे एक औचित्यवाद है। औचित्य की महत्ता का सर्वप्रथम निर्देश करते हुए आचार्य आनन्दवर्धन ने अनौचित्य को ही रसभंग का एकमात्र कारण घोषित किया, परन्तु उसकी विधिवत् प्रतिष्ठा क्षेमेन्द्र द्वारा हुई। उन्होने औचित्य को इस प्रकार परिभाषित किया है—

उचित प्राहुराचार्याः सदृशं किल यस्य यत्।
उचितस्य च यो भावस्तदौचित्यं प्रचक्षते ।।

अर्थात् काव्य मे काव्यागो—रस, अलकार, रीति, छवि आदि—विवेकपूर्ण अथवा मर्यादित प्रयोग का नाम औचित्य है। इस औचित्य मे ही अलंकारो की आलंकारिकता और गुणो की गुणता निहित है। जिस प्रकार किसी सुन्दरी के कण्ठ मे मेखला, नितम्ब पर सुन्दर हार, हाथ मे नूपुर, चरण में केयूरपाश का धारण उसकी अज्ञता का परिचायक है, इसी प्रकार गुणो, रीतियो अलंकारो आदि का भी अयथा-स्थान प्रयोग अरुचिकारक होने के कारण सर्वथा अवाछनीय एव त्याज्य है। इस प्रकार क्षेमेन्द्र ने औचित्य को काव्य का प्राण माना है—

'औचित्य रससिद्धस्य स्थिर काव्यस्य जीवितम् ।'

जायसी प्रतिभासम्पन्न कवि थे। उनके काव्य के कतिपय विरल स्थलों पर वर्णन में अनौचित्य दिखाई देता है, जो कि फारसी के प्रभाव का परिणाम है। उदाहरणार्थ—

विरह सरागन्हि भूजे मांसू । गिरि गिरि परे रकत के आसू ।
कटि कटि मासु सरागु पिरोवा। रकत के आसु मासु सब रोवा ।।

इसी प्रकार पद्मावती और रत्नसेन की भेंट के प्रसंग मे योग की चर्चा अनुचित ही प्रतीत होती है। प्रेमी-प्रेमिका की चिरप्रतीक्षित मिलनवेला मे योग की चर्चा के लिए अवकाश ही कहा रहता है।

पद्मावत के कतिपय वर्णनो मे आवृत्ति (Repitition) होने के कारण अरोचकता आ गई है। उदाहरणार्थ पद्मावती के नखशिख, रूप-सौन्दर्य का वर्णन एकाधिक बार हुआ है और सर्वत्र प्राय· उपमा-रूपको का प्रयोग एक समान ही हुआ है। कही-कही जायसी ने परिगणन शैली को अपनाकर भी अरोचकता ला दी है। इसके अतिरिक्त कवि अपने काव्य को आध्यात्मिक रूपक बनाए रखने मे भी असफल रहा है। यहा भी औचित्य का निर्वाह नही हो सका।

उपर्युक्त कथन का यह अभिप्राय कदापि नही कि जायसी सर्वथा औचित्य के ज्ञान से रहित थे। वस्तुत उपर्युक्त कतिपय उदाहरण ही इस बात के प्रमाण है कि अपवाद स्वरूप कुछ स्थलो को छोडकर जायसी ने सर्वत्र औचित्य का ही निर्वाह किया है। औचित्य-निर्वाह के लिए ही उन्होने प्रेमव्यजना मे भारतीय और फारसी

वर्णन पद्धति मे, तथा भावात्मकता और व्यावहारिकता मे समन्वय-विधान किया है। इसके अतिरिक्त कवि का अलकार-विधान भी औचित्य की सीमा के अन्तर्गत है। उन्होने कही किसी भी अलंकार का अयथास्थान प्रयोग नही किया। जायसी द्वारा प्रयुक्त उपमान सर्वथा उपयुक्त ही नही, प्रभावोत्पादक भी हैं। सादृश्य-योजना का एक सुन्दर उदाहरण दर्शनीय है—

स्याम भुअगिनि रोमावली। नाभी निकसि कवल कहं चली।
आइ दुऔ नारग बिच भाई। देखि मयूर ठनकि रहि गई।

कवि ने रोमावली की उपमा श्याम सर्पिणी से दी है। यह श्याम सर्पिणी नाभि-कमल की सुगन्ध से आगे बढी परन्तु दो नारगियो (कुचो) के बीच मे पहुचने पर मोर (ग्रीवा) को देखकर ठिठक गई, आगे नही बढ सकी। इसमे कवि के प्रकृति पर्यवेक्षण तथा नारी शरीर निरीक्षण का एक साथ परिचय मिलता है। कवि के इस वर्णन मे नवीनता होते हुए भी औचित्य की सीमा का अतिक्रमण नही हुआ। यह कवि की एक बडी विशेषता तथा सफलता है।

समग्रत· कतिपय अपवादभूत स्थलो एवं प्रसगो को छोडकर जायसी का काव्य-विधान औचित्य-सम्पन्न है। यही कारण है कि काव्य मे प्रायः रसभग नही हुआ और सर्वत्र ही रस का सम्यक् परिपाक देखने को मिलता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जायसी का कलापक्ष अत्यन्त ही समृद्ध है। भाषा मे माधुर्य, प्रेषणीयता तथा प्रभावाधिक्य लाने के लिए मुहावरो, लोकोक्तियो, सूक्तियो के अतिरिक्त अलकारो तथा बिम्बो की योजना हुई है। छन्दोबिधान द्वारा उसमे संगीतात्मकता का समावेश हुआ है। विभिन्न काव्य-रूपो—कथा काव्य तथा मुक्तक—का भी सुन्दर प्रयोग हुआ है। सबसे बढकर रामी काव्य-तत्त्वो मे औचित्य की सम्यक् योजना है। वस्तुतः जायसी एक कुशल कलाकार थे। उनका व्यक्तित्व सरल तथा प्रभावपूर्ण था। उसकी ही निश्छल तथा मोहक अभिव्यक्ति उनका काव्य है। भाव-वैशिष्ट्य तथा अभिव्यक्ति-वैलक्षण्य की दृष्टि से जायसी अनुपम हैं। अवधी भाषा मे तुलसी के पश्चात् जायसी सर्वश्रेष्ठ कवि हैं।

जायसी के कर्तृत्व का मूल्यांकन

जायसी के काव्य मे समन्वय-भावना

महाकवि जायसी ने पद्मावत काव्य मे भावात्मक एकता की भावना को अपने समक्ष रखते हुए लोकहृदय की सर्वाधिक संवेदनशील भावना—प्रेम के सदर्भ मे तात्कालिक समाज मे प्रचलित विभिन्न मतो—वादो एव दार्शनिक दृष्टियो मे सामजस्य लाने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया था। जायसी की यह समन्वय भावना पद्मावत मे अभिव्यक्त प्रेम-वर्णन, दर्शन, धर्म, सस्कृति और साहित्य-शैली मे स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है।

प्रेम-वर्णन

कवि ने पद्मावत मे मसनवी शैली और भारतीय शैली मे वर्णित प्रेम का समन्वित रूप दर्शाया है। यही कारण है कि कवि द्वारा वर्णित प्रेम-भाव मे मानसिक पक्ष को प्रमुखता दी गयी है, शारीरिक पक्ष उसमे गौण रहा है। कवि ने नायक-नायिका के मिलन मे भी-चुम्बन आलिगन की अपेक्षा उनके हृदय के उल्लास और सवेदना को ही अभिव्यजित किया है। दो-एक अपवादो के अतिरिक्त सर्वत्र मानसिक पक्ष को ही उभारने का यत्न किया गया है। प्रकारान्तर से यह कहा जा सकता है कि वहा प्रेम के स्थूल रूप की अपेक्षा सूक्ष्म रूप को ही वरीयता दी गयी है।

ईरानी मसनवियो के अनुसार नायक के प्रेमावेग को दर्शाना ही मूल लक्ष्य रहता है जबकि यहां नायक रत्नसेन के प्रेमावेग के साथ-साथ पद्मावती नायिका मे प्रेमातिशयता देखने को मिलती है, क्योकि भारतीय परम्परा मे नायिका के प्रेमावेग को ही दर्शाया जाता रहा है। कवि ने यहा नायक-नायिका दोनो मे ही तुल्य प्रेमावेग दिखाकर दोनो देशो मे प्रचलित प्रेम-वर्णन की पद्धतियो को समन्वित रूप प्रदान किया है। ईरानी मसनवी के नायक का प्रेम सर्वथा एकान्तिक और असामान्य पराक्रम से संबद्ध होता है जबकि भारतीय परम्परा मे इस प्रेम मे लोकपक्ष की उपेक्षा नही की जाती। यहा रत्नसेन पद्मावती के रूप-गुण श्रवण के बाद प्रेम मे दीवाना हो, जोगी बनकर वनों, पर्वतो और समुद्रो की बाधाओ को पार करने मे पराक्रम दिखाता है, पर उसके जोगी बनकर चित्तौड छोडने के अवसर पर पत्नी, मां, परिजन, मित्र एवं अन्य राजाओ द्वारा उसे इस पथ से रोकने की जो भूमिका है उसका विस्तृत

वर्णन कर जायसी ने इस प्रेम को सर्वथा एकान्तिक नही रहने दिया। इसमे लोक-जीवन की झलक दिखाकर उसने भारतीय प्रेम-वर्णन परम्परा को भी सम्मानित किया। केवल इस स्थल पर ही नही अपितु पद्मावती की विदाई के समय भी उसके परिवार और स्वय अपने माता-पिता और सखियो के प्रति पद्मावती मे भी तडप दिखाकर कवि ने इस प्रेम को सर्वथा एकान्तिक नही रहने दिया।

चित्तौड मे रत्नसेन से नाराज होकर दिल्ली जाने वाले राघव चेतन के कार्यों मे चित्तौड के अनिष्ट की कल्पना करती हुई पद्मावती ने उसे रोकने के लिए स्वर्ण-कगन तक देकर यही सिद्ध किया कि उसे केवल अपने 'प्रेम' से ही वास्ता न था वह अपने साथ-साथ परिवार, समाज एवं राज्य के हिताहित के लिए भी चिन्तित थी। इसके अतिरिक्त पद्मावती-नागमती मे सपत्नी कलह, रत्नसेन और गोरा के लिए माताओ का स्नेहभाव, रत्नसेन के लिए गोरा-बादल का संदर्भ करते हुए अर्पित हो जाना, राघव चेतन का कृतघ्न बन जाना, पद्मावती का अलाउद्दीन की कैद से पति को मुक्त करा लेना आदि आदि का चित्रण कर कवि ने यहा जीवन-पक्ष—लोक व्यवहार, को पर्याप्त महत्त्व दिया है। यही कारण है कि जहा इस काव्य का नायक रत्नसेन प्रेम के वशीभूत होकर सातो समुद्रो को पार करने का साहस दिखाते हुए मसनवियो मे वर्णित—'फरहाद' और 'मजनू' की कोटि के नायको के समकक्ष दिखाई देता है वहा पद्मावत मे वर्णित लोकपक्ष के विभिन्न रूपो के कारण उसे भारतीय काव्यो के अन्य नायको की कोटि मे भी रखा जा सकता है। पद्मावत मे युद्ध, यात्रा, स्थायी भक्ति आदि वर्णनों के कारण रत्नसेन केवल प्रेम पर मरने वाला नायक नही बन पाया अपितु उसके जीवन मे लोकहित और शौर्य को भी चित्रित किया गया है। रत्नसेन मे प्रेम का दीवानापन तो है ही, पर उसका जीवन हिन्दू परिवार की विभिन्न परम्पराओ से भी जुडा हुआ है, मसनवियो के नायको के समान मात्र इश्क से निबद्ध नही है।

पद्मावत मे दार्शनिक समन्वय का अनुशीलन करते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुचते है कि यहा कवि ने भारतीय और अभारतीय दोनो ही तत्त्वो को वर्णित कर अपने हृदय की विशालता दिखायी है। जायसी ने जिस रहस्यवाद की चर्चा की है वह अधिकाश रूप मे भारतीय अद्वैतवादी दर्शन से प्रभावित है। अद्वैतवाद ब्रह्म और जड जगत को तथा जीव और ब्रह्म अर्थात् आत्मा और परमात्मा को एक मानता आया है। जायसी मे इस भाव को 'सर्वात्मवाद' के परिप्रेक्ष्य मे देखना समुचित होगा। अपने चारो ओर की प्रकृति मे उस ब्रह्म की छवि देखकर ऋषियो ने उसे 'सर्वं खलु इद ब्रह्म' (सर्वत्र उसी का ही रूप दिखाई देता है) कहा था। कवि जायसी भी उस ब्रह्म की सत्ता को अपने चारो ओर देखता है—

उसी पारब्रह्म की ज्योति ही सूर्य, चाद और सितारो मे प्रकाशित हो रही है। रत्नो, मोतियो और माणिक्यो मे भी उसी की दी हुई द्युति दिखायी देती है। उसी की मुस्कराहट ही जहा-तहा छिटकी हुई है—

"रवि ससि नखत दिपहिं ओही जोती ।
रतन पदारथ माणिक मोती ।।
जहँ जहँ बिहसि सुभावहिं हंसी ।
तहँ तहँ छिटकि जोती परगसी ।।"

ब्रह्म की सत्ता को सर्वत्र स्वीकार करते हुए भी जायसी जिस अभारतीय भाव का वर्णन करता है वह है उसका ब्रह्म या ईश्वर को प्रिया के रूप मे देखना । भारतीय अद्वैतवादी अपनी प्रेम-साधना मे स्वय को नारी और ब्रह्म को पुरुष के रूप मे स्वीकार करते है जबकि जायसी ने ईश्वर को प्रिया पद्मावती के रूप मे ही चित्रित किया है। सूफी साधक परमात्मा को प्रियतम मानकर चले है। उनके लिए मानवी प्रेम ईश्वर-प्रेम तक पहुचने का एक सोपान है। इश्क हकीकी के लिए इश्क मिजाजी भी पहली मजिल है। इसी के द्वारा ही साधक स्वयं को मिटाकर खुदा के नूर को प्राप्त कर सकता है। सूफी साधक उस प्रियतम—माशूक को पाने के लिए उसके विरह मे तडपा करता है। ससार मे उसे उसी माशूक का ही जलवा चारो ओर दिखाई देता है। इसी मत के अनुसार हिन्दी प्रेमाख्यान परम्परा के कवियो ने लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम की अभिव्यजना की है। इन कवियो ने परमात्मा को प्रियतमा के रूप मे और जीव को प्रेमी के रूप मे ही चित्रित किया है। परमात्मा को प्रियतमा के रूप मे चित्रित कर उसी के विरह मे जीव को तडपता हुआ दिखाना यह एक अभारतीय जीवन दर्शन है जिसे जायसी, उसमान, मझन आदि कवियो ने अपने काव्यों मे वर्णित किया है ।

इसी प्रकार पद्मावत मे भारतीय हठयोगियो की योग साधना और सूफी साधना की चार अवस्थाओ शरीयत,[1] तरीकत,[2] मारिफत[3] और हकीकत[4] का वर्णन एक साथ कर कवि ने यहा भी साधना मे समन्वय करने का यत्न किया है। सिंहलद्वीप के सिंहलगढ का वर्णन करते हुए कवि ने बताया कि—

नवौ खड नव पौरी औ तहं वज्र-केवार ।
चारि बसेरे सौ चढै सत सो उतरे पार ।।
नव पौरी पर दसवं द्वारा ।
तेहि पर बाज राज घरियारा ।।

---

१. धर्मग्रन्थो मे वर्णित विधि-निषेध का सम्यक् रीति से परिपालन करना ।
२. बाह्य कर्मकाण्ड से दूर हटकर शुद्ध मन से ईश्वर-चिन्तन ।
३ ज्ञानावस्था—अर्थात् सत्य दृष्टि का सम्यक् बोध ।
४. सिद्धावस्था—जिसमे साधक साध्य (प्रियतम) मे लीन होकर प्रेममय बन जाता है ।

—पद्मावत का काव्य-सौदर्य, पृ० १२५

उपरोक्त पक्तियो मे हठयोगियो द्वारा वर्णित योग-साधना का उल्लेख है जहा स्थूल रूप से तो लगता है कि कवि गढ का वर्णन कर रहा है पर साकेतिक रूप से इसका एक आध्यात्मिक अर्थ भी है। साधक ये मानते आये है कि 'यत्ब्रह्माण्डे तत्पिडे' अर्थात् जो संसार मे दृष्टिगोचर होता है वह सब शरीर के भीतर ही देखा जा सकता है। यहा जिन नौ द्वारो का उल्लेख है वे नौ द्वार शरीर के ही रध्र हैं और दशम द्वार वह ब्रह्मरंध्र है जो सिर के बीचोबीच अदृष्ट रहता है। हठयोगी प्राणायाम कर वायु के वेग को नौ रध्रो से ऊपर उठाकर प्राणो को दशम द्वार तक ले जाते है, उसी साधना का संकेत यहा कवि ने दिया है। यह सम्पूर्ण सकेत भारतीय योग-साधना और विशेषतया हठयोगियो की साधना का महत्त्वपूर्ण अग रहा है। इसका वर्णन करते हुए कवि ने यहा जिन चार बसेरो—शरीअत, तरीकत, हकीकत और मारिफत का उल्लेख किया है, ये चारो सूफी-साधना के चार सोपान है। हठयोग साधना के भीतर इन्हे समन्वित कर कवि ने दो भिन्न ध्रुवो को एकत्र कर अपनी सहिष्णुता और गुण-ग्राहकता का परिचय दिया है।

पद्मावत के आरंभ मे कवि ने अपने सृष्टि-वर्णन मे जहा सात द्वीपो और नौ खडो की चर्चा की है वह तो पुराणों के अनुसार ही है, पर यहा उसने मुस्लिम जीव-दर्शन मे प्रचलित 'नूर' की उत्पत्ति की चर्चा भी की है। इसी क्रम सृष्टि के पाच तत्त्वो की अपेक्षा जायसी ने प्राचीन यूनानियों की कल्पनानुसार चार भूतो की बात की है जो इस प्रकार हैं—पृथ्वी, जल, तेज और वायु। भारतीय पाच तत्त्वो मे आकाश को भी माना गया है जबकि फारस, अरब आदि मुस्लिम देशो मे इसे एक स्थूल तत्त्व ही कहा गया है। जायसी ने इसे सितारो से जडा शामियाना कहा है जो बिना किसी आधार के अधर मे लटका हुआ है—

गगन अन्तरिख राखा, बाज खभ बिनु टेक।

भारतीयो ने ब्रह्म और जीव के मिलन मे बाधक माया को ही कहा है। जायसी ने एक ओर तो माया को स्वीकृति दी है और दूसरी ओर अभारतीय दर्शन के शैतान की कल्पना भी की है जो साधक को साध्य के पास जाने मे बाधक माना जाता है। इसी प्रकार कवि ने पद्मावत के स्तुति खंड मे उसे निर्गुण भी कहा है और दूसरी ओर ब्रह्म को नायिका पद्मावती के रूप मे चित्रित कर उसके सगुण रूप को भी स्वीकृति दी है।

उपरोक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि महाकवि जायसी ने भारतीय और अभारतीय जीवन दर्शन के अन्तर्गत प्रचलित विभिन्न तत्त्वो मे समन्वय स्थापित कर दोनो जातियो—हिन्दू और मुसलमानो, मे व्याप्त खाई को पाटने की एक महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया था।

धार्मिक मान्यताओ मे समन्वय

जीवन के अन्य क्षेत्रो के समान जायसी ने धार्मिक क्षेत्र मे प्रचलित मान्यताओं

का समन्वय प्रस्तुत कर अपनी उदारता का परिचय दिया। जायसी के युग मे हिन्दू समाज मे धर्म के क्षेत्र मे अनेकानेक सम्प्रदाय प्रचलित थे। इन सम्प्रदायो मे प्रमुख थे—वैष्णव, शैव और शाक्त। इन सम्प्रदायो मे किसी प्रकार का सामजस्य न था। शैव, वैष्णवो की साधना का विरोध करते थे और वैष्णव शैवो की साधना एवं उपासना का उपहास करते थे। इधर शक्ति की पूजा की आड मे शाक्तो ने गुह्य साधना के लिए पचमकारो—मास, मदिरा, मुद्रा, मैथुन और मत्स्य के सेवन को स्वीकृति देकर इस क्षेत्र मे बडी अव्यवस्था उत्पन्न कर रखी थी। सिद्ध साधक जनसाधारण को चमत्कारो से चमत्कृत कर अनेक प्रकार से बहका रहे थे। सत्य तो यह है कि आध्यात्मिक क्षेत्रो मे नेतृत्व करने वाली ये धार्मिक शक्तिया स्वय अधकार मे भटक रही थी। इन्होने जनता का मार्गदर्शन क्या करना था। इनके कारण तो स्थिति और भी गम्भीर हो गयी थी। उन दिनो हिन्दू समाज विभिन्न देवी-देवताओं की उपासना द्वारा मूर्ति पूजा मे विश्वास रखता था जबकि विजेता मुस्लिम इन मूर्तियो को तोडने एवं कलात्मक मन्दिरो को ध्वस्त करने को ही इसलाम की सच्ची सेवा मानने लगा था। इसी संकीर्ण और धर्मोन्मादी दृष्टिकोण के कारण ही अनेकानेक कलात्मक मन्दिर धराशायी किये गए। इस धर्मोन्मादी पग की प्रतिक्रिया मे हिन्दू भी मुस्लिम विरोधी दृष्टिकोण अपनाने को बाध्य हुए। हिन्दुओ ने मुस्लिम धर्म को हीन घोषित कर इसे घृणा की दृष्टि से देखने का प्रचार किया। इससे स्थिति और भी विषम हो गयी। धर्म के क्षेत्र मे इस तनातनी का परिणाम यह निकला कि दोनो सम्प्रदायों मे पृथकता की भावना और अधिक बढने लगी। इस खीचातान मे विजेता मुस्लिमों का पलडा भारी रहा और हिन्दुओ मे सर्वत्र निराशा छाने लगी।

जायसी से पूर्व सिद्धो और सन्त कवियो ने दोनो जातियो की इस बढ रही दूरी को पाटने के अनेक यत्न किये पर उन्हे अपेक्षित सफलता न मिली। इस असफलता का मुख्य कारण यह था कि इन लोगो ने तर्क और बुद्धि का सहारा लेते झाड-फटकार की उपदेशात्मक शैली मे अपनी बात कहने का यत्न किया। दोनो समाजो मे प्रचलित अन्धविश्वासो, रूढियो और कुप्रथाओ पर चोटें की और इन्हे उनसे दूर रहने का उपदेश दिया। इस शुष्क फटकार एवं उपदेशपरक शैली के कारण दोनो वर्गो के परम्परावादी लोग और भी तिलमिला उठे और उन्होंने स्वधर्म को बचाने के लिए सुदृढ किलेबन्दी शुरू कर दी, जिससे तथाकथित सभ्रात वर्गों मे इनके विरोध का स्वर भी सुनाई देने लगा। इससे दोनो धर्मों के कर्मकाण्डी रूप फिर से उभरने लगे। प्रकारान्तर से यह भी कहा जा सकता है कि धर्म के क्षेत्र मे निहित स्वार्थियो को एक बार फिर खुलकर खेलने का अवसर भी मिलने लगा।

जायसी ने सिद्धो और सन्तो की ताडना और उपदेशपरक प्रणाली के विपरीत कान्तासम्मित मधुर शैली और भावनामूलक सवेदनाओ की अभिव्यंजनाओ का अवलम्ब लेकर अपना कथ्य समाज तक पहुचाने का विनम्र प्रयास किया जिसमे उसे पर्याप्त सफलता मिली। जन-भाषा का सहारा लेकर प्रचलित लोककथाओ के

माध्यम उस मानव जीवन के कोमल अंग—दाम्पत्य प्रेम, को उसने जिस रूप में अभिव्यक्ति दी, वह अन्तत' मानव-मात्र की प्रेमानुभूतियों का प्रतिनिधित्व करने लगी। जहा तात्कालिक धर्मोन्मादी मुस्लिम शासको की दृष्टि मे हिन्दू 'काफिर' थे और इन पर अत्याचार करना धर्म-विरुद्ध न था, वहा जायसी ने सर्वोत्कृष्ट कृति पद्मावत के पात्रो के रूप मे हिन्दुओ को ही वरीयता प्रदान की। चित्तौड का राजा रत्नसेन जहा लौकिक कथा का सौदर्योपासक नायक है वहा अध्यात्म के क्षत्र मे वह जीव का प्रतीक भी है और इसी कृति की नायिका—अनिद्यसुदरी पद्मावती अध्यात्म के धरातल पर ब्रह्म की प्रतीक है जिसकी प्राप्ति के लिए रत्नसेन जीवन-भर साधना करता रहा। इनके अतिरिक्त आदर्श हिन्दू रमणी की प्रतीक नागमती, वीरता के मूर्त रूप गोरा और बादल आदि अन्य हिन्दू पात्रो को अपने आदर्श रूप मे प्रस्तुत कर जायसी ने उस युग मे जहा एक साहस का प्रदर्शन किया है वहा उसकी उदारता और सहिष्णुता का भी पता चलता है।

मूर्तिभजक मुस्लिम परिवार मे उत्पन्न होकर भी उसने पद्मावत मे रत्नसेन को सिंहलद्वीप के मन्दिर के द्वार पर एव वसंत पूजा के समय पद्मावती द्वारा देव-पूजन का वर्णन कर अपनी सदाशयता और समन्वयवादिता का परिचय दिया है।

सक्षेप मे हम यह कह सकते है कि महाकवि जायसी धार्मिक विद्वेष और मदान्धता से कोसो दूर थे तभी पद्मावत हिन्दू धार्मिक मान्यताओ का चित्रण वे सफलतापूर्वक कर पाये हैं।

सास्कृतिक समन्वय

जीवन के अन्य क्षेत्रो मे व्याप्त सघर्षों के समान जायसी के युग मे सास्कृतिक क्षेत्र की स्थिति भी बहुत अच्छी न थी। किसी भी देश की सभ्यता को अथवा सभ्यता के प्रतीक बाहरी स्थूल प्रतीकों को मिटाना जितना आसान है संस्कृति को मिटाना उतना आसान नही, संस्कृति का सम्बन्ध मानव के हृदय से है और वह सभी प्रकार के विप्लवो, अप्रत्याशित आघातो को सह कर भी किसी न किसी रूप मे अपना अस्तित्व बनाये रखती है। युगविशेष की प्रतिकूल परिस्थितियो के दबाव मे उसकी ज्योति मन्द तो पड सकती हैं पर वह सर्वथा बुझ नही सकती। भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम सस्कृतियो में से एक है। ससार मे समय-समय पर उठने वाले प्रचण्ड तूफानो के कारण अनेकानेक देशो की सस्कृतियाँ लुप्त हो कर मात्र इतिहास के पृष्ठो मे रह गयी है जबकि भारतीय सस्कृति प्रचण्ड तूफानों मे भी अपनी गरिमा की पताका फहराती रही है। जायसी के युग मे सास्कृतिक उपलब्धियो के प्रतीक अनेकानेक कलात्मक कृतियो एवं इन कृतियो के भण्डार मन्दिर और भव्य भवन तो नष्ट हो रहे थे, पर जनसाधारण के मनो मे परम्परागत रूप से विद्यमान सास्कृतिक मूल्यो—नैतिक धारणा, सौदर्योपासक दृष्टि, मानवमात्र के प्रति मैत्री भाव, सामाजिक जीवन के प्रति आस्था, सहिष्णुता, समन्वयवादी भाव, आदि आदि, को नष्ट कर पाना आसान न था।

जायसी ने इसी तथ्य को भली-भाति हृदयंगम किया, फलत· पद्मावत मे भारतीय परम्परा, आचार-विचारमूलक संस्कृति को अपनाकर उसने अत्यन्त ही सजीव चित्रण प्रस्तुत किये। कवि द्वारा चित्रित इन चित्रो मे नागमती का विरह वर्णन, नागमती और पद्मावती का सती होना, गोरा-बादल का अपने स्वामी के लिए रण मे खेत रहना आदि स्थल विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। जायसी ने पद्मावत मे भारतीय सस्कृति से सबद्ध स्थलो को चित्रित करते समय जो भावुकता प्रदर्शित की है उससे कवि का इस संस्कृति के प्रति अनुराग स्पष्टत: प्रतीत होता है।

जायसी का पद्मावत केवल अपने युग का एक प्रेमाख्यान ही नही कवि ने इसमे इस युग के सास्कृतिक इतिहास को भी निश्छल रूप से प्रतिपादित किया है। सूफी परम्परा में दीक्षित होने के कारण कवि ने कतिपय स्थलों पर प्रच्छन्न रूप से मुस्लिम संस्कृति के चित्र भी दिये है जिन्हे अस्वाभाविक नही कहा जा सकता। पद्मावत जैसी महान् कृति मे अध्येता को हिन्दू और मुस्लिम सस्कृति का समन्वित रूप मिलता है तथापि हिन्दू सस्कृति को अधिक महत्त्व दिया गया है। कथानक, पारिवारिक जीवन, उपासना-पद्धति, जीवन के प्रति दृष्टिकोण आदि सभी दृष्टियो से इस का अनुशीलन करने पर इसी उपरोक्त कथ्य की ही पुष्टि की जा सकती है।

साहित्यिक समन्वय

पद्मावत मे जायसी ने दर्शन, धर्मादि क्षेत्रो मे तो समन्वय लाने का प्रयास किया ही है साथ ही पद्मावत के कथानक मे भी इतिहास और कल्पना का मणि-काचन सयोग दिखाकर इस कृति को अन्यतम रूप प्रदान किया है। प्रेमाख्यान परम्परा के कवियो ने प्राय: कल्पनाप्रधान प्रेमकाव्यो की सर्जना की है पर पद्मावत इस का अपवाद माना गया है। इसका पूर्वार्द्ध अर्थात् रत्नसेन का सिंहलद्वीप से चित्तौड लौटने तक का कथानक तो प्रेम-कथा का कल्पित रूप ही है, पर उत्तरार्द्ध मे कवि ने इतिहास-प्रचलित पात्रो, घटनाओं एवं युद्धों के साथ समन्वित करने का सुप्रयास किया है। इस ऐतिहासिकता के कारण काव्य के प्रबन्ध मे शिथिलता आयी है या दृढता यह एक पृथक प्रश्न है, पर यह निश्चित एक कल्पित प्रेमाख्यान को इतिहास के साचे मे सुनिश्चित रूप प्रदान करना एक कठिनतम कार्य है जो जायसी के रचना-कौशल एवं अनुपम सूझ का ही परिणाम माना जायगा।

इसी प्रकार इस प्रेमाख्यान में भारतीय और मसनवी काव्य शैलियो का समन्वित रूप अंकित करना भी कवि के काव्य कौशल का परिचायक माना जायगा। जहां एक ओर तो रत्नसेन मसनवी काव्यो के नायक मजनू और फरहाद के समान नायिका को प्राप्त करने के लिए बडे से बडा जोखिम उठाने को प्रस्तुत है और दूसरी ओर भारतीय काव्यो के नायको के समान लोकसग्रही प्रवृत्ति का प्रदर्शन करते हुए देवपाल, अलाउद्दीन से सघर्षरत हो अपने शौर्य का प्रदर्शन करता हुआ दृष्टिगोचर होता है। यहा एक ओर अनिद्य-सुन्दरी नायिका पद्मावती को पाने के लिए रत्नसेन मसनवी

काव्यशैली के नायको की भान्ति प्रेम और व्याकुलता का अतिशय भाव चित्रित है तो इसी काव्य के अन्तर्गत नागमती सदृश आदर्श भारतीय रमणी का विरह चित्र भी कम हृदयद्रावक नही। यहा एक ओर भारतीय परम्परा के चरित काव्यों की शैली पर दोहा, चौपाई जैसे छन्द के माध्यम को अपनाया गया है तो दूसरी ओर ग्रन्थ के आरम्भ मे अल्लाह, रसूल तात्कालिक शासक की प्रशसा कर मसनवी काव्य परम्परा को भी इसमे गुम्फित करने की कुशलता दिखायी गयी है।

कथानक के स्वरूप और शैली मे ही कवि ने केवल समन्वय नही दिखाया अपितु सस्कृत और फारसी की प्रचलित सूक्तियो को भी तद्वत प्रस्तुत कर अपनी गुण-ग्राहकता का परिचय दिया है।

जल-थल नग न होहि जोहि जोती।
जल-जल सीप न उपनहि मोती।।
बन-बन बिरिछ न चन्दन होई।
तन-तन विरह न उपनै सोई।।

कवि की इन पक्तियो पर 'चाणक्य नीति' के निम्नलिखित श्लोक की छाया देखी जा सकती है—

शैले शैले न माणिक्यम् मौक्तिक न गजे गजे।
साधवो न हि सर्वत्र, चन्दन न वने वने।

इसी प्रकार हाफिज के प्रसिद्ध शेर—

"अज्म दीदारे तू दारद जानवर लब आमद.।
बाज गरदद या बर आयद चीस्त फरमाने शुबा।।"

की अविकल छाया जायसी की इस पक्ति मे मिलती है—

"दहु जिउ रहै कि निसरै, काह रजायसु होई।"

पद्मावत के उपमानो की योजना से भी यह ज्ञात होता है कि कवि ने जहा एक ओर भारतीय कवियो के समान कमल को नायिका एवं उसके आख, मुख, हाथ-पाव—का उपमान चित्रित किया है उसी प्रकार फारसी काव्यो मे उरोजो के सौन्दर्य को अभिव्यक्त करने के लिए प्रचलित दाख और अगूर की कोपलो का वर्णन भी किया है।[1]

फारसी काव्य परम्परा मे केशो के लिए कस्तूरी को उपमान माना गया है तो भारतीय परम्परा मे इनके लिए कालिन्दी, भवर, नाग आदि को उपमान रूप मे ग्रहण किया गया है। जायसी ने एक स्थल पर इन दोनो उपमानो का उल्लेख कर दोनो प्रकार के उपमानो को प्रकाश दिया है।[2]

---

१. "उठी कोंप जस दाखि दाखा।"—जायसी ग्रथावली

२ प्रथम सीस कस्तूरी केला।··· ··· ··· ··· ···
जानहु लोटहिं चढै भुअंगा।··· ··· ··· ··· ···
लहरैं देइ जनहुं कालिन्दी। फिर फिर भंवर होइ चितबंदी।

सक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि जायसी का पद्मावत भारतीय प्रेम-भावना एव मसनवी प्रेमकथा के समन्वित रूप का परिचायक है। कवि ने यहा दर्शन धर्म, सस्कृति, काव्यरूप आदि का सामंजस्य प्रस्तुत कर इस कृति को एक अन्यतम रूप प्रदान किया है। तात्कालिक युग मे प्रचलित धर्मोन्माद की छाया से इसे बचाकर लेखक ने स्वय को एक समन्वयवादी काव्यकार के रूप मे प्रतिष्ठित किया है। विभिन्नता मे एकता, गुण-ग्रहण क्षमता एव उदारता की दृष्टि से जायसी का स्थान कवि-शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास के बाद आता है यद्यपि रचना-निर्माण की दृष्टि से जायसी ने यह प्रयास गोस्वामी जी से पहले ही कर लिया था।

जायसी और कबीर की तुलना

हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल की निर्गुण धारा के अन्तर्गत ज्ञानमार्ग और प्रेममार्ग के नाम से दो उपधाराएं स्वीकार की गयी है। इनमे ज्ञानमार्ग के प्रवर्तक महात्मा कबीर हैं और प्रेममार्ग के प्रवर्तक महाकवि जायसी। ये दोनो ही कवि मुख्यतः निर्गुण ब्रह्म के स्वरूप के उपासको मे परिगणित किये जाते है। इन्होने अपनी रचनाओ मे ईश्वर के जिस स्वरूप का चित्रण किया है, उसकी प्राप्ति के लिए जिस मार्ग का वर्णन किया है और इनकी विचारधारा के पीछे जो दार्शनिक चिन्तन की परम्परा है, उससे प्रतीत होता है कि ये दोनो ही महाकवि ज्ञान और प्रेम की अपनी-अपनी परम्परा का अनुसरण करते हुए भी किसी न किसी रूप मे एक-दूसरे से प्रभावित है। यह पारस्परिक प्रभाव इनकी रचनाओ मे कही पर तो प्रत्यक्ष रूप से दृष्टि-गोचर होता है और कही अप्रत्यक्ष रूप से। इस दृष्टि से जब हम इनका तुलनात्मक अध्ययन करते है तो इनमे कही पर तो अत्यन्त सामीप्य दिखाई देने लगता है और कही पर अत्यन्त दूरी। इस अन्तर का मूल कारण है इन महाकवियो के चिन्तन और मनन की अलग-अलग भूमिका। कबीर यदि भारतीय दर्शन से प्रेरणा लेते है तो जायसी फारस के दर्शन से। तब भी युग-विशेष के प्रभाव के कारण दोनो एक-दूसरे से कुछ सीमा तक प्रभावित भी लगते है।

इन दोनों युगद्रष्टा कवियो के तुलनात्मक अध्ययन के लिए इनके काव्य मे व्याप्त जीवन दर्शन, उपासना प्रणाली, काव्य की प्रेरणा और सास्कृतिक धरातल का विश्लेषण करना समीचीन होगा। जिससे ज्ञात होगा कि ये कवि किस सीमा तक एक-दूसरे से प्रभावित है और किस सीमा तक इनमे वैषम्य है।

जीवन-दर्शन

कबीर के काव्य का दार्शनिक आधार है अद्वैतवाद, जिसके अनुसार ईश्वर का अंश जीव उससे पृथक होकर भी मूलतः उसी का अंश है। जीव को ब्रह्म तक पहुचने मे माया बाधा डालती है। इस माया के अनेक रूप है। यह त्रिविध—सत्व, रज, तम रूप रस्सी लेकर जीव को अपने वश मे किये रहते हैं। और ठग बनकर जीव को भ्रम मे

डाला करती है, जिससे जीव ब्रह्म तक नही पहुच पाता । कबीर इसके छल-कपट को भली-भाति जानता है । तभी तो वह कहता है—

> माया महा ठगनि हम जानी ।
> तिरगुन फास लिए कर डोले,
> बोले मधुरी वाणी ।

तीन गुणो का फदा हाथ लिए मधुर और लुभावनी वाणी द्वारा जीव को अपने वश मे करके वह उसे ब्रह्म के समीप नही जाने देती ।

जायसी अद्वैतवादी तो नही पर सर्वात्मवादी अवश्य है । जायसी का यह सर्वात्मवाद उपनिषदों के 'सर्वं खलु इदं ब्रह्म' से मिलता-जुलता है । अपने चारो ओर ईश्वर की लीला को देखकर ही तो ऋषियो ने कहा था कि यह सब उस ब्रह्म का ही खेल है । सृष्टि के प्रत्येक तत्त्व मे ईश्वर के नूर—तेज, को देखने वाले सूफी जायसी के काव्य के पीछे यही सर्वात्मवाद की दार्शनिक धारा कार्य कर रही है । जायसी ने पद्मावती के रूप-सौन्दर्य को स्थान या व्यक्ति विशेष मे न देखकर समस्त सृष्टि मे देखा था, सृष्टि के अणु-अणु मे प्रिय की छाया को देखना, जीव और ब्रह्म मे अभेद कल्पना ही तो सर्वात्मवाद का आधार है ।[1]

उपनिषदो मे प्रतिपादित सर्वात्मवाद एवं किसी सीमा तक शकर के अद्वैत को मानकर भी जायसी ने सूफी परम्परा के अनुसार माया को त्याज्य नही माना । अद्वैत-वादी माया को स्त्री के रूप मे भी कल्पित करते आए हैं और उसे ब्रह्म के मिलन मे बाधक भी मानते आये हैं पर जायसी ने माया-रूपिणी स्त्री के अपार रूप-सौन्दर्य मे तो ब्रह्म की छवि देखी है, उसका जीव—साधक तो उसी रूप की उपासना को ही चरम साध्य मानता रहा है । इस स्थल पर जायसी कबीर से सर्वथा भिन्न हो जाते है । इसके अतिरिक्त उन्होने मुस्लिम धर्म की परम्परानुसार शैतान की कल्पना को भी स्वीकृति प्रदान की है जिसे वह खुदा की प्राप्ति मे विघ्न डालने वाला ही मानता आया है । पद्मावत मे राघव चेतन को शैतान कहना उसी मान्यता का ही अनुसरण करना है ।

जायसी और कबीर नाथपंथियो के हठयोग और योग-साधना से प्रभावित हैं । दोनो ने अपनी कृतियो मे योग के ज्ञान और साधना की चर्चा की है, पर इस चर्चा मे कबीर की पैठ कुछ अधिक है पर जायसी ने इस हठयोग मे राजयोग का समन्वय कर इसे बहिर्मुखी साधना नही रहने दिया ।

कबीर ने हठयोग के सदर्भ मे कहा है कि ऐ मन जागते रहो, तू गाफिल हो गया तो चोर तुझे लूट लेगे । वह ज्ञानपरक वस्तु षटचक्र की कनक कोठरी मे रखी

---

१. रवि ससि नखत दिपहिं ओही जोती । रतन पदारथ मानिक मोती ।।
जहं जह विहंसि सुभाविक हंसी । तह तहं छिटकि जोति परगसी ।।

है। इस कोठरी के पाच रक्षक सो गए तो वस्तु चली जावेगी। गगन मंडल मे ध्यान लगाने से जन्म-मरण के चक्र से जीव मुक्त हो जाता है। निरन्तर चिन्तन से ही यह ज्ञान मिलता है इसके लिए कही आने-जाने की आवश्यकता नही। राम रूपी रत्न की प्राप्ति होते ही जीव सशयमुक्त हो जाता है।[1] कबीर के मन ही मन विचार से स्पष्ट है कि ज्ञान के बिना मुक्ति नही मिल सकती।

महाकवि जायसी ने भी योग साधना का उल्लेख किया है जिसमे नाथपथियो की योग साधना का प्रभाव स्पष्ट है। सिहलद्वीप मे पहुचकर राजा जब पद्मावती को पाने की व्याकुलता दिखाते हुए अग्नि की गोद मे बैठने को उद्यत होता है तब शिव उसे सिहलगढ़ पर चढने का मार्ग सुझाते हुए कहते है कि—

"गढ तस बाक जैस तोरि काया। पुरुष देख ओही की छाया।
पाइये नाहि जूझ हठ कीन्हे। जेहि पावा तेहि आपु चीन्हे।
नौ पौरि तेहि गढ मझियारा। औ तहं फिरे पांच कोटवारा।
दसव द्वार गुपुत एक ताका। अगम चढाव बाट सुठि बाका।
भेदे जाई सोई वह घाटी। जो लहि भेद, चढै होइ चाटी।
गढ तर कुड तरग तेहि माहा। तह वह पंथ कहौ तोहि पाहा।
चोर बैठ जस सेंधि संवारी। जुवा पैंत जस लाव जुआरी।"
जस मरजिया समुद्र धस हाथ आव तब सीप।
ढूढि लेई जो सरग दवारी चढे सो सिंघल दीप॥

शिवजी द्वारा रत्नसेन को बताये गए इस 'सिंघलगढ़' के रहस्य मे साधको की साधना का सम्पूर्ण रहस्य निहित है। नाभि से प्राणो को धीरे-धीरे ऊपर की ओर ले जाकर और काम-क्रोधादि पाच विकारो का विरोध कर जो योगी भृकुटि से भी ऊपर ब्रह्मरध्र मे प्राणो को युक्तिपूर्वक ले जाता है वह ही ईश्वर तक पहुच सकता है और नही, यह सम्पूर्ण सत्य सिंहल की चढाई मे बताया गया। इसमे यह भी स्पष्ट किया गया कि हठ से नही स्वय को पहचानने से ही इस मार्ग मे सफलता मिलती है आदि आदि।

---

१. मन रे जागत रहियो भाई।
गाफिल होइ 'बसत मति खोवे' चोर मुसै घर जाई।
षट चक्र की कनक कोठरी, वस्त भाव है सोई॥
पच पहरुवा सोई गए हैं, वस्ते जावण लागी।
जुह मरण व्यापै कछु नाही, गगन मडल लै लागी।
करत विचार मनही मन उपजी न कही गया न आया।
कहै कबीर ससा सब छूटा, राम रतन धन पाया॥"
कबीर ग्रथावली—डा० गुप्त, पृ० १५८-९

कबीर और जायसी के इन योग साधनापरक पदो को पढने से विदित् होता है कि पहला ज्ञान-प्रधान है और उसके कथन की शैली सरस नही जबकि दूसरा अर्थात् जायसी उसी योग साधना को प्रेमाख्यान के सदर्भ विशेष मे उसे सरसता से प्रतिपादित कर रहा है और इसी सन्दर्भ मे उसने सूफी उपासना के चार बसेरो का वर्णन कर उस मत के प्रति अपने झुकाव का सकेत भी दे दिया है—

नवौ खड नव पौरी औ तह वज्रकेवार।
चार बसेरे सो चढै सत सो उतरे पार ॥

सूफी साधक नौ रध्रो—नाक, कान आदि को पार कर दसमरंध्र अर्थात् ब्रह्म-रंध्र तक पहुचने के लिए चार बसेरो—साधना के चार सोपानो शरीयत, हकीकत, तरीकत ओर मारिफत को आवश्यक मानते है।

कबीर की साधना मे सूफी साधना का प्रभाव दृष्टिगोचर नही होता वह तो विशुद्ध हठयोग पर ही आधारित है जबकि जायसी का हठयोग सूफी साधना के चार सोपानो को भी अपने मे समाहित किये हुए है। पर है दोनो ही रहस्यवादी।

इन दोनो कवियो के रहस्यवाद पर विद्वानो ने भिन्न-भिन्न मत प्रकट किये है। डॉ० श्यामसुन्दर दास ने रहस्यवादी कवियो का विवेचन करते हुए कबीर के रहस्यवाद को सर्वश्रेष्ठ माना है। उनके अनुसार "रहस्यवादी कवियो मे कबीर का आसन सबसे ऊंचा है। शुद्ध रहस्यवाद केवल उन्ही का ही है। प्रेमाख्यानक कवियो (जायसी आदि) का रहस्यवाद तो टाट मे मखमल के टुकडो के पैबन्द-सा लगा जान पडता है और प्रबन्ध से अलग उनका अभिप्राय नष्ट हो जाता है।"

जहा श्यामसुन्दर दास ने जायसी के रहस्यवाद को हीन कोटि का और कबीर के रहस्यवाद को विशुद्ध चिन्तन कोटि का कहा है वहा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कबीर की तुलना मे जायसी के रहस्यवाद की श्रेष्ठता स्थापित की है। "कबीर मे जो कुछ रहस्यवाद है वह सर्वत्र एक भावुक या कवि का रहस्यवाद नही है। हिन्दी के कवियो मे यदि कही रमणीय और सुन्दर रहस्यवाद है तो जायसी मे, जिनकी भावुकता बहुत ही ऊची कोटि की है।"

आचार्य शुक्ल के मत का समर्थन करते हुए डॉ० चन्द्रबलि पाण्डेय ने लिखा है कि "कबीर का रहस्यवाद प्रायः शुष्क और नीरस है पर जायसी आदि का ऐसा नही है।"

उपरोक्त मतो के आधार पर तो केवल यही कहा जा सकता है कि कबीर के रहस्यवाद मे चिन्तन और बुद्धि पक्ष का आधिक्य है। यहा ज्ञान प्रेम पर हावी रहा है जबकि जायसी के रहस्यवाद मे प्रेम को वरीयता मिलने से प्रेम पक्ष ज्ञान पक्ष पर हावी हो गया है।

उपासना प्रणाली

कबीर और जायसी ने उपासना के क्षेत्र मे निर्गुण ब्रह्म को ही अपना आराध्य

बनाया है। कबीर के राम निर्गुण है, उन्होने राम को संसार के कण-कण मे रमा हुआ कहा है। परम्परागत राम से भिन्न अलक्ष्य, अदृश्य एव सर्वव्यापक राम की उपासना ही कबीर का लक्ष्य है। इसीलिए उसने पुकार कर कहा कि—

"दशरथ सुत तिहु लोक बखाना, राम नाम का मरम न जाना।"

जिन्होने राम नाम के रहस्य को समझ लिया है वे राजा, राजकुमार दाशरथी राम की उपासना से परे निर्गुण, निर्विकार राम की उपासना करते है। कबीर का राम तो सूक्ष्मातिसूक्ष्म है। वह तो फूल की गध से भी सूक्ष्म है और उसका न कोई मुह है और न ही माथा अर्थात् वह सगुण नही है—

जाके मुह माथा नही, नाही रूप कुरूप।
पुहुप वास ते पातरा, ऐसा तत्त्व अनूप॥

अपने आराध्य राम के इस स्वरूप का प्रतिपादन करके भी कबीर ने आराधना के आनन्दमय क्षणो मे इसी सूक्ष्मातिसूक्ष्म आराध्य को ससारिक सम्बन्धो के रूप मे भी स्मरण किया है। वही राम कभी 'मा' के रूप मे सम्बोधित किया गया तो कभी प्रिय के रूप मे। साधना के चरम शिखर पर पहुच कर साधक उसे माता-पिता, बन्धु, सखा आदि संबोधन देकर अन्ततः उसे अपना सर्वस्व मानने को प्रस्तुत हो जाता है।[1] यही बात कबीर की निम्नलिखित पंक्तियो में भी दृष्टिगत होती है—

"हरि जननी मैं बालक तेरा"

× × ×

"राम मेरे पीव मैं राम की बहुरिया"

कबीर ने ईश्वर के लिए ये जो सासारिक सबोधन—माता, पति आदि, दिये हैं, इससे यह नही कहा जा सकता कि उन्होने ईश्वर को सगुण मान लिया है। यह संबोधन तो साधना की किसी विशिष्ट अवस्था विशेष के द्योतक है न कि उसकी दृष्टि-परिवर्तन के।

कबीर के समान जायसी ने भी अपनी धार्मिक रचनाओ के समान पद्मावत मे भी निर्गुण ब्रह्म की स्तुति की है। स्तुति खड मे इस प्रकार की स्तुति कर के भी उसने उस ब्रह्म को उपासना माधुर्य भाव से भी दिखाई है। पद्मावती के अतिशय सौन्दर्य मे ही उसे खुदा का नूर दिखाई दिया और रत्नसेन जोकि साधना के क्षेत्र मे जीव का प्रतीक है वह पद्मावती के सौन्दर्य से अभिभूत होकर उसे प्राप्त करने के लिए साधना के पथ पर अग्रसर होता है। प्रकारान्तर से यह कहा जा सकता है कि जायसी

---

१. त्वमेव माता च पिता त्वमेव।
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव।
त्वमेव सर्वं मम देव देव॥

ने ईश्वर के निर्गुण स्वरूप का अवलंब लेकर भी उसे अनिंद्य सुन्दरी नायिका के रूप मे ससार मे अवतरित कराया है ।

कबीर ने ईश्वर को नायक—पति के रूप मे प्रस्तुत किया है तो जायसी ने नायिका—प्रिया के रूप मे ही उसकी अवतारणा की है । कबीर पर सूफियो की प्रेम-भावना का प्रभाव तो लक्षित होता है पर कबीर इन सूफियो की सौन्दर्योपासक भावना को नही अपना पाये । कबीर अपने लाल की लाली से चमत्कृत होकर स्वयं भी अपने लाल (प्रिय) की लाली मे रग तो जाते है पर उनमे वह बात कहा जो उसे प्रिय के रंग मे डुबा देती—

लाली मेरे लाल की जित देखो तित लाल।
लाली देखन मै गयी मै भी हो गयी लाल ।।

कबीर तो अपने प्रिय के रंग मे रंग ही गया पर जायसी की पद्मावती—जो कि परब्रह्म की प्रतीक है, के रूप की आभा से सम्पूर्ण सृष्टि आभासित हो रही है । उसका रूप सृष्टि के सारे तत्त्वों मे किस प्रकार छिटका हुआ है । इस छवि को कवि ने इस प्रकार अंकित किया है—

"रोव रोंव पै वान जो फूटे । सूतहि सूत रुहिर मुख छूटे ।
सूरज बूढि उठा होइ ताता । औ मजीठ टेसु बन राता ।
भा वसत राती वनसपती । औ राते सब जोगी जती ।
पुहिमि जो भीजि भण्ड सब गेरु । औ रात तह पखि पंखेरु ।
राती सती अगिनी सब काया । गगन मेघ राते तेहि छाया ।।"

उपासना क्षेत्र मे निर्गुण ब्रह्म के पश्चात दोनो कवियों ने गुरु को ही अधिक महत्त्व दिया है । कबीर तो गुरु और गोबिन्द मे से गुरु को ही वरीयता देते है क्योकि उसके मार्गदर्शन के बिना वह गोबिन्द को समझ ही न सकते थे—

"गुरु गोबिन्द दोउ खडे, काके लागू पाय ।
बलिहारी गुरु आपने, जिस गोबिन्द दियो बताय ।।"

इसी प्रकार जायसी भी मानते हैं कि हीरामन सुआ ही गुरु है जिसने रत्नसेन को पद्मावती की आराधना की प्रेरणा दी । उसके अभाव मे साधक (रत्नसेन) को कोई मार्ग न दिखा सकता था ।

'गुरु सुआ जेहि पंथ देखावा ।
बिन गुरु जगत को निर्गुण पावा ।।'

बिना गुरु के उस निर्गुण, निराकार ब्रह्म की प्राप्ति भी नही की जा सकती । इसीलिए गुरु को सग लेकर ही साधना के मार्ग पर आगे बढा जा सकता है ।

दोनो ही कवियों ने अपने-अपने उपासना-मार्ग पर अग्रसर होकर जो रहस्यवाद की झाकी प्रस्तुत की है उसका विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि ये दोनो कवि

साधनापरक रहस्यवाद क्षेत्र मे तो एक से हैं। दोनो ही नाथपथियो की हठयोग साधना और कुडली योग से प्रेरणा लेकर चले हैं पर आगे चलकर दोनों मे एक विशेष अन्तर परिलक्षित होता है। कबीर के ये रहस्यवादी चित्र भारतीय भक्ति मार्ग, श्रुति-ग्रन्थो और सिद्धो के प्रभाव के कारण जहाँ आध्यात्मिक, ऐकान्तिक एव व्यक्तिपरक बन जाते है वहा जायसी के रहस्यवादी चित्रो मे सूफी साधना की अनुभूति प्रधान 'छोक' दिखाई देने लगती है। एक विस्तृत प्रेमाख्यान के संदर्भ मे अभिव्यक्ति, ये चित्र अपेक्षाकृत मधुर, सरस एव नाटकीय वातावरण को मूर्तता प्रदान करते है।

"काहे री नलिनी तूँ कुम्हलानी।
तेरे ही नाल सरोवर पानी।
जल मे उतपति जल मे वास।
जल मे नलिनी तोर निवास।
न तलि तपति न ऊपर आग।
तोर हेतु कहु कासनि लागि।
कहै कबीर जे उदिक समान।
ते नहिं मुए हमारे जान॥"

—कबीर

यहा प्राकृतिक प्रतीको के माध्यम से रहस्याभिव्यक्ति की गयी है जिसमे कबीर भावुकता की चरम सीमा का स्पर्श कर रहे हैं।

जायसी प्रिय के 'नूर' को समस्त सृष्टि मे देखकर भी अपने हृदय मे उसे टटोलते हुए कहते हैं कि वह तो हृदय के भीतर पर उससे मेल हो तो कैसे?—

पिय हृदय मे भेंट न होई।
को रे मिलाव, कहौ केहि रोई।

कबीर भी उसे बाहर नही रहने देना चाहते। वह चाहते हैं कि उसका 'पिउ' एक बार उसके नेत्रो मे समा जाए तो वह उसे वहाँ बन्द कर लें ताकि वह उसका ही बन के रह जाए—

नैना अन्दर आव तू नैन झापि तुउ लेहु।
न मैं देखु और कूं न तोहि देखन देहु॥
× × ×
सुखिया सब संसार है खावे और सोवे।
दुखिया एक कबीर है गावे और रोवे॥

इस प्रकार के सरस चित्रो को अंकित कर कबीर ने अपनी रहस्यभावना को सरसता प्रदान की है तो भी उसके कथनो और चित्रों मे जायसी सदृश रसानुभूति नही मिलती। इस अन्तर का कारण है जायसी का दृष्टिकोण जो सर्वथा प्रेम से अनुप्राणित है।

दोनो के तुलनात्मक अध्ययन से यह दिखाना अभीष्ट नही है कि किसकी उपासना-प्रणाली श्रेष्ठ है और किसकी अश्रेष्ठ। यहा इस अध्ययन और विश्लेषण से यहि अभीष्ट था कि ये दोनो किस सीमा तक एक दूसरे से प्रभावित हुए है। उपरोक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि दोनो की उपासना का आलंबन निर्गुण ब्रह्म है, दोनो ने माया को अकित किया है पर कबीर की माया शकर के अद्वैतवाद के अनुसार है तो जायसी की माया ही उपासना का केन्द्र है जबकि कबीर उससे छुटकारा पाने को आतुर है।

दोनो ने सिद्धो के योग को ग्रहण किया है पर कबीर की साधना ज्ञानपरक है जबकि जायसी की प्रेमपरक। कबीर यहा किसी सीमा तक सूफियो से प्रभावित हुए हैं पर उनके सौन्दर्य पक्ष को वह आत्मसात् नही कर पाये। कबीर साधना मे नारी भाव अपनाकर ब्रह्म मे लीन होना चाहते है तो जायसी नारी प्रेम के मधुर भाव की उपासना कर जीव को उसमे तल्लीन करने मे ही अपनी साधना की चरम परिणति मानते है।

काव्य की प्रेरणा

कबीर और जायसी के काव्य के प्रेरणा-स्रोत पर विचार करने से ज्ञात होना है कि कबीर के काव्य मे साधक की जिस सवेदना और तडपन के चित्र मिलते है' उन्हे सूफी प्रेमाख्यानो की रसानुभूति से प्रभावित कहा जाता है, इसमे आशिक सत्य तो हो सकता है पर पूर्ण सत्य नही, क्योंकि भारतीय साहित्य की परम्परा मे भी माधुर्य भाव का नितान्त अभाव न था। साख्य दर्शन जैसे शुष्क समझे जाने वाले उपनिषद मे भी ब्रह्म एवं प्रकृति को पुरुष और जीव को स्त्री के प्रतीक के रूप मे अभिहित किया गया है। तत्त्व ज्ञान के कोप वृहदारण्यक उपनिषद मे जीवात्मा और परमात्मा के मिलन को प्रिय और प्रिया के आलिंगनबद्ध मिलन से उपमित किया गया है जहा अपनी प्रियतमा द्वारा आलिंगित प्रिय बाह्य ज्ञान शून्य हो जाता है। उपनिषद की इस उपमा मे प्रणयी युगल के मिलन की जिस मादक स्थिति का चित्रण है कबीर को इससे भी काव्य-प्रेरणा मिली होगी अन्यथा वह सूफियो के प्रेम के समग्र प्रभाव को ग्रहण करते तो ब्रह्म को प्रिया—माशूक और जीव को प्रिय—आशिक का रूप भी दे सकते थे, जो उन्होने नही दिया।

जहा तक जायसी का सम्बन्ध है उसके काव्य की प्रेरणा तो सूफी सिद्धान्त में निहित है ही जिसे पद्मावत मे उन्होने प्रेम सुरा के रूप मे अनेकधा अकित किया है—

पद्मावत में पद्मावती और रत्नसेन की पहली मिलन मधुयामिनी मे जब रत्नसेन उसके रूप-लावण्य के उपभोग के लिए अत्यन्त विह्वलता दिखाता है तो प्रियतमा को सुराही और प्रिय को रसभरे प्याले की उपमा देकर पद्मावती उसे कहती है कि इस प्रेम-सुरा को धीरे-धीरे चखकर ही पिये। इस पर रत्नसेन ने कहा कि प्रेम सुरा

के पीने वालो को जीवन-मरण का डर ही नही रहता।[1]

सुनु धनि ! प्रेम सुरा के पिये।
मरन जियन डर रहे न हिये।

भला मदिरा सामने पडी हो और पीने वाला अपने को संभाल सके, यह कैसे सभव है—

जहा मद तह कहां संभारा।
कै सो खुमरिहा कै मतवारा ।।

कबीर ने भी रामनाम के रस की खुमारी का वर्णन किया है। कबीर के अनुसार हरि के नाम-रूपी रस के पान करते ही जो खुमारी आती है फिर वह जा॰ का नाम नही लेती। उस खुमारी मे तन-मन का होश भी नही रहता और व्यक्ति मद-मस्त होकर यत्र तत्र घूमा करता है। एक बार ही उस रस का पान करने पर शेष कुछ नही रहता, कुम्हार द्वारा पकाये गए घट को फिर आच पर जैसे नही रखा जाता वही स्थिति खुमारी प्राप्त साधक की भी होती है—

हरि रस पिया जाणिए जो कबहु न जाई खुमार।
मै मंत्ता घूमत रहै नाही तन की सार।।

× × ×

राम रसायन प्रेम रस पीवत अधिक रसाल।
कबीर पीवण दुर्लभ है मागे सीस कलाल।।

'दोनो कवियो के प्रेरणा-स्रोतो से स्पष्ट है कि कबीर अंशत' सूफी प्रेम-परम्परा से प्रभावित होते हुए भी भारतीय परम्परा से जुडा हुआ है तो जायसी अशतः फ़ारसी प्रेम परम्परा से प्रेरित है।

काव्य-शिल्प की दृष्टि से यदि विचार करे तो कबीर का काव्य मुक्तक काव्य की कोटि में आता है और जायसी का प्रबन्ध के अन्तर्गत। कबीर की भाषा पंजाबी, राजस्थानी; गुजराती, पूर्वी का मिश्रित रूप है जिसे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'खिचडी भाषा' की सज्ञा प्रदान की है तो जायसी की भाषा ठेठ अवधि है जो एक क्षेत्र-विशेष के ग्रामीण अचल की भाषा है।

रचना के उद्देश्य पर विचार करने पर ज्ञात होता है कि जायसी यश के लोभ का संवरण नही कर सके। इसे लोभ कहे या व्यक्ति की सहज कामना यह एक विवादास्पद प्रश्न है, क्योकि आचार्य मम्मट ने तो काव्य के प्रयोजनो मे सर्वप्रथम यश की चर्चा की है—

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहार विदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिर्वृत्तये कान्ता सम्मित्तयोपदेशयुजे ।।

---

१. बिनती करै पद्मावती बाला। सो धनि सुराही पीउ पियाला।
.. ..
पै पिय वचन एक सुनु पिय मोरा। चखि पियहु मधु थोरहु थोरा।

जायसी ने यश की कामना करते हुए कहा—

औ मैं जानि गीत अस कीन्हा।
मकु यह रहै जगत मे चीन्हा ॥

इस दृष्टि से यश की कामना कर जायसी ने 'कान्ता सम्मित' शैली मे पद्मावत, अखरावत और आखिरी कलाम की रचना की, जबकि कबीर सदृश फक्कड सत ने 'ब्रह्म चिंतन' के लिए ही कविता की। कविता उसके लिए साधना थी साध्य तो ब्रह्म-चिंतन ही था।

दोनो महाकवियो की तुलना करते हुए जब हम इनके काव्य के सास्कृतिक धरातल पर विचार करते है तो इस निर्णय पर पहुचते है कि दोनो कवियो के काव्य का धरातल भारतीय है। कबीर तो पूर्णत, भारतीय सास्कृतिक पृष्ठभूमि से जुडा हुआ है ही, जायसी भी भारतीय सस्कृति, वातावरण से अपने-आपको जोडकर ही चला है। केवल अन्तर इतना है कि वह मूल रूप से सूफी प्रेमाख्यान परम्परा का कवि है। इसलाम के धार्मिक सस्कारो का उस पर गहरा प्रभाव भी है जो अखरावट और आखिरी कलाम मे स्पष्ट रूप से उभर कर आया है, पर पद्मावत मे उसने सकेतित रूप मे फारस की सस्कृति की झलक अंकित करते हुए भी समग्र प्रभाव की दृष्टि से भारतीय सस्कृति, परम्परा, आचार-व्यवहार का सफल चित्रण प्रस्तुत किया है।

डा० वासुदेव शरण अग्रवाल के शब्दो मे—"मध्यकालीन सास्कृतिक इतिहास की महत्त्वपूर्ण सामग्री 'पद्मावती' के अध्ययन का इतर रोचक विषय है। जिस प्रकार बाण के 'हर्ष चरित' मे सातवी शती के भारत का समृद्ध रूप देखने को मिलता है उसी प्रकार सोलहवी शती की भारतीय सस्कृति का पल्लवित रूप 'पद्मावत' मे प्राप्त होता है।"

अन्त मे यह कहा जा सकता है कि दोनो कवियो के काव्य मे साम्य और वैषम्य होते हुए भी इतना तो निश्चित है कि इन्होने अपने समय समाज मे फैली विषमता, पारस्परिक द्वेष और मतभेदो को कम करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। कबीर की खडन-मडन शैली थी। उसने क्रान्तिकारी बन युग के अन्धविश्वासो और समाज के दोनों वर्गो की सामाजिक, धार्मिक रूढियो पर चोट की, इससे वह उस समय लोकप्रियता प्राप्त न कर सका। परन्तु जायसी ने 'कान्तासम्मित' मधुर भावों से युक्त शैली का अवलंबन कर विरोधो मे सामंजस्य लाने का महत्त्वपूर्ण प्रयास किया। इसलिए कबीर की अपेक्षा उसका प्रभाव अधिक हुआ। दोनो का ही अपने-अपने क्षेत्र मे महत्त्वपूर्ण स्थान है तो भी इतना तो निश्चित है कि कबीर मे बुद्धि पक्ष प्रधान है तो जायसी मे हृदय पक्ष।

जायसी का योगदान

मलिक मुहम्मद जायसी के कर्तृत्व के अनुशीलन के आधार पर कहा जा सकता है कि वह युग प्रतिनिधि कवि थे। उनके 'पद्मावत' मे काव्य का उत्कर्ष तो है ही, पर

उन्होने इस कृति मे तात्कालिक धार्मिक और सामाजिक दशा के जो चित्र प्रस्तुत किये उनका अपना विशिष्ट स्थान है। जीवन के इन चित्रणो से स्पष्ट है कि कवि ने अपने परिवेश का अध्ययन बहुत समीप से किया था। किसी भी श्रेष्ठ कवि की पहिचान यही है कि उसकी कृति मे उसके युग की समस्याओ और घटनाओ को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से चित्रित किया गया हो। अन्यथा यही समझा जाता है कि कवि ने अपनी कृति मे युगधर्म का निर्वाह नही किया। साहित्य मे युगधर्म के निर्वाह के आधार पर कहा जाता है कि साहित्य और समाज का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है अथवा साहित्य समाज का दर्पण है।

निस्सदेह एक कवि और सामाजशास्त्री मे अन्तर है। कवि अपनी रचना मे तात्कालिक घटनाचित्रो को इस कौशल से गुम्फित करता है कि सामाजिक घटनाए उसकी रचना के प्रबन्ध-कौशल और रस विधान मे बाधक न बनें। इसलिए बहुधा वे घटनाएं सकेतित रूप मे ही अकित रहती है। कभी-कभी कवि उन समस्याओ या घटनाओं के परिणामो और समाधानो का भी उल्लेख अपनी कृति मे प्रस्तुत कर देता है, पर ये सब वाच्य कम और व्यंग्य अधिक होती हैं। यह सभी कुछ कवि या साहित्य-कार के रचना-कौशल पर ही निर्भर करता है। तुलसी और जायसी सदृश युगद्रष्टा कवियो ने अपने समय के समाज को अपने प्रबन्ध काव्यो मे समुचित रूप से चित्रित कर यह सिद्ध कर दिया है कि कला कला के लिए नही अपितु कला जीवन के लिए है।

हिन्दी का प्रथम महाकाव्यकार

जायसी हिन्दी के प्रथम महाकाव्यकार है, जिनकी रचना पर कोई विवाद नही। इनसे पूर्व हिन्दी की जितनी कृतिया हैं उनके समय, भाषा, शैली आदि को लेकर विद्वानो मे अनेकानेक मतभेद है। अनेकविध प्रक्षिप्ताशो के कारण उनके अस्तित्व पर भी अनेक प्रश्नचिन्ह लग गये हैं। चन्द लिखित 'पृथ्वीराज रासो' के अनेक सस्क-रणो के कारण हिन्दी का प्रथम महाकाव्य विद्वानो के वितण्डावाद का शिकार हो गया है। इस काव्य की भाषा, शैली, आख्यान, इतिहास एवं उपलब्ध विविध प्रतियो के कारण इसका महाकाव्य धूमिल हो गया है। लगभग यही बात आदिकाल और वीर गाथा काल की अन्य उत्कृष्ट कृतियो के ऊपर भी चरितार्थ होती है।

जायसी से पूर्व हिन्दी साहित्य की ज्ञानमार्गी शाखा के प्रवर्तक सत कबीर की रचनाएं भी अटपटी भाषा, ताडन-प्रताडन शैली के कारण विद्वानो मे समादृत नही हो सकी। कबीर ने प्रबन्ध शैली मे न लिखकर मुक्तक शैली मे ही रचना की है। आचार्य परम्परा ने सुनिश्चित भाषा एव अस्पष्ट शैली के कारण उसे अपेक्षित महत्त्व नही दिया।

उपरोक्त तथ्यो के सदर्भ मे यदि जायसी के काव्य का अनुशीलन किया जाय तो इस दृष्टि से जायसी एक भाग्यशाली कवि है। इसके काव्य की भाषा ठेठ अवधि है। भावाभिव्यंजना की दृष्टि से यह भाषा पूर्णतः सक्षम है। सरलता, सरसता, प्रवाहमयी शैली एवं माधुर्य के कारण इस भाषा का अपना एक विशिष्ट महत्त्व है।

जायसी के इस प्रेमाख्यान महाकाव्य की आधारभूमि जन-जीवन मे प्रचलित प्रेमाख्यान ही हैं, जो मौखिक परम्परा से उत्तर भारत के जीवन मे पूर्णरूपेण प्रतिष्ठित हो चुके थे । जायसी की जन्मभूमि भी इन प्रेमाख्यानो की दृष्टि से अत्यन्त ही उर्वर थी, जिसका प्रभाव कवि पर पडना सहज और स्वाभाविक है । कवि के जन्मस्थान मे साहित्यिक उर्वरता का वास्तविक रूप क्या था इस पर अपने विचार व्यक्त करते हुए एक विद्वान ने कहा है कि कवि की जन्मभूमि मे "जनसाधारण मे अब भी साहित्य की एक जागृत और सजीव परम्परा विद्यमान है । आज भी कोई ऐसा गाव न होगा जिसमे दो-चार सौ कवित्त याद रखने वाले दो-चार कविताप्रेमी न निकल आवें । • जीवन के हर काम और बात बात मे कवियो की उक्ति को उद्धृत करना यहा की बोल-चाल की विशेषता है ।"

इस उद्धरण के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुचते है कि साढे चार सौ वर्ष गुजर जाने के बाद भी जो धरती साहित्यिक दृष्टि से ऊसर नही हुई वह जायसी के समय कितनी उर्वर रही होगी, इसकी कल्पना की जा सकती है । सरस आख्यानो और साहित्यिक दृष्टि से उर्वर भूमि पर जन्मे और पले जायसी ही पद्मावत सदृश सरस और उत्कृष्ट रचना कर सकते थे जिसे हिन्दी का प्रथम निर्दोष महाकाव्य कहलाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ ।

जायसी ने 'पद्मावत' मे मसनवी काव्यशैली और भारतीय काव्यशैली का एवं दार्शनिक दृष्टिकोणो का समन्वय प्रस्तुत कर भिन्नता मे एकता स्थापित करने का एक प्रयास किया था जिसके परिणाम और भी अच्छे होते यदि उन्हे तात्कालिक युग मे अपेक्षित सहयोग मिल पाता । जायसी ने दो भिन्न सस्कृतियो के प्रतिनिधि हिन्दू-मुस्लिमों मे एकता लाने का जो सुप्रयास किया था वह मुगल शासको की सकीर्णता एवं अनुदारता के कारण आगे न बढ पाया । शासको के आदेश से मुद्राओ और सिक्को मे अकित नागरी अक्षर हटा दिये गए, फलत दोनो जातियो मे तनाव बढने लगा और जायसी सदृश उदार साधको की साधना फलवती न हो सकी । इसी प्रकार कतिपय सूफी साधको ने प्रेमाख्यानपरक रचनाओं को सूफी मत की सम्पत्ति घोषित कर इन कृतियो मे निहित मानवी आदर्शों के प्रसार को एक अनपेक्षित क्षति पहुचाई । पद्मावत की भाषा अवधि का अपना एक विशेष महत्त्व होने पर भी यह भाषा क्षेत्र विशेष से आगे बढकर लोकप्रिय न हो पायी । मानस की अवधि का प्रसार इसका अपवाद है, इसका कारण है मानस की भाषा का सस्कृतमय रूप और मानस का एक धर्मग्रन्थ होना । इस दृष्टि से पद्मावत की भाषा 'मानस' की भाषा से पिछड गयी । अपेक्षित प्रसार और प्रचार के अभाव मे पद्मावत मे वर्णित आदर्श कवि की सामजस्य-भावना के द्योतक होते हुए भी हिन्दू-मुस्लिमो मे अपेक्षित सामजस्य स्थापित न कर पाये ।

परिस्थितियो और वातावरण ने कवि के सामंजस्य को प्रसारित नही होने दिया । इससे कवि की सामंजस्य भावना का महत्त्व तब भी कम नही होता, क्योंकि

इस देश मे अनेकानेक अवतारो, महापुरुषो, समाज सुधारकों के जन्म लेने एवं महत्त्व-पूर्ण उपदेश देने पर भी यदि समाज उनका लाभ नही उठा सका तो इससे उन अवतारो या महापुरुषो का महत्त्व कम नही होता । इसमे दोष तो है उन लोगो का जिन्होंने उनके बताये मार्ग पर न चलकर अपने को रसातल मे पहुचा दिया है । इस दृष्टि से कहना होगा कि जायसी ने अपने युग मे छिन्न-विछिन्न समाज को जो ईर्ष्या-द्वेष का शिकार होकर सतप्त हो रहा था और जो विजेता और पराजित के रूप मे अहकार और हीन भावना का शिकार हो रहा था, जो अपने धर्म को श्रेष्ठ और दूसरे के धर्म को अश्रेष्ठ बताकर भेदभाव की खाई को और भी चौडा कर रहा था, उस समाज को कवि ने जिस सामजस्य सूत्र मे अनुस्यूत किया था उसका महत्त्व तब भी था और अब भी है ।

जायसी ने पद्मावत मे जहा अपने युग की स्थिति पर प्रकाश डाला था वहा उसके मानवता प्रेम के एवं समन्वय के सिद्धान्त जितने उपयोगी तब थे उतने आज भी है। इस तथ्य को चरितार्थ करने से पूर्व हमे तात्कालिक भारत की सामाजिक स्थिति का और वर्तमान सामाजिक स्थिति का संक्षिप्त अध्ययन करना तर्कसंगत प्रतीत होता है।

वर्तमान सामाजिक सदर्भ और जायसो

जायसी के पद्मावत के अनुशीलन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कवि ने इसमे जिन मानवी आदर्शों की चर्चा की है, प्रेम को जिस रूप मे महत्त्व दिया है, हिन्दू सस्कृति की गरिमा जिस रूप मे प्रतिपादित की है, महाकाव्य के सम्पूर्ण आख्यान मे जिस उदारता और सामंजस्य को प्रतिष्ठापित किया—इन सभी आदर्शो का आज के भारतीय समाज मे भी उतना ही महत्त्व है जितना कि जायसी के समय था । यदि किसी कारण से जायसी द्वारा प्रतिपादित समन्वयवाद उस समय अपेक्षित फल नही ला सका तो आज भी वह निष्फल होगा, ऐसा सोचना समीचीन न होगा ।

आज के सामाजिक सदर्भ पर विचार करने से विदित होता है कि भारत मे एक हजार वर्ष के बाद भी हिन्दू और मुस्लिमो मे जितना सामजस्य और पारस्परिक विश्वास का भाव होना चाहिए था, दुर्भाग्य से वह नही बन पाया । ससार मे मुसलमान जहा भी गया है वह वहा की भूमि, भाषा, सस्कृति, सभ्यता मे अपने को आत्मसात करता रहा है । रूसी गणराज्य मे रहने वाला मुस्लिम समाज वहा का होकर रह गया है, उसने उस धरती की भाषा, भाव और सस्कृति से एकरसता बना ली है । ईरान, इडोनेशिया और विश्व के अन्यान्य देशो (मुस्लिम देशो को छोडकर) मे वह जहा भी रहता है अपने को उन समाजो का अंग मान कर रहता है, पर दुर्भाग्य से भारत मे ऐसा नही हो पाया । भारत का अधिसख्य मुस्लिम आज भी उन्ही मान्यताओ और रीति-रिवाजों से बंधा हुआ है जिन्हे उसके कुछ पुरखे कभी बाहर से अपने साथ लाए थे । फलतः भाषा, पहनावा, चिंतन, धर्म आदि अनेक दृष्टियो से आज भी वह अपना पृथक अस्तित्व बनाये रखने के लिए सघर्षरत है । सदियो का यह हिन्दू-मुस्लिम भेद-भाव एवं पृथकतावादी दृष्टिकोण सामाजिक जीवन से बढता हुआ राज-

नीतिक क्षेत्र मे पहुचकर पाकिस्तान के विषवृक्ष के रूप में अस्तित्व मे आया; जिसके फलस्वरूप १९४७ मे दस लाख से अधिक लोक मृत्यु का ग्रास बने और एक करोड़ से अधिक लोगो को अपने पूर्वजो की धरती और अरबो रुपये चलाचल सपत्ति से हाथ धोने पड़े। इस दुर्भाग्यपूर्ण दुर्घटना के बाद लगता था कि इस प्रायद्वीप मे शान्ति हो जायगी और लोग अपनी भूलो का प्रायश्चित्त कर भविष्य मे एक-दूसरे को भली-भाति समझते हुए शान्तिपूर्वक दोनो देशों के विकास मे दत्तचित्त होगे। १९४७ से १९७१ के बीच पाकिस्तान से होने वाले चार आक्रमणो के कारण एव कतिपय भारतीय मुस्लिमो के पृथकतावादी नेतृत्व की सक्रियता के कारण आज भी स्थिति बहुत अच्छी नही बन पायी।

अब तो सकुचित और सकीर्ण वृत्ति के मुस्लिम को उत्तेजित करने की भूमिका निभाने का कार्य पाकिस्तान का नेतृत्व ही कर रहा है। निस्सदेह सभी मुसलमान इसके लिए दोषी नही है और न ही सभी को इस विचार के लिए उत्तरदायी माना जाना न्यायसगत है, पर इतना तो सत्य है कि भारत का पृथकतावादी मुस्लिम समाज पाक मे हो रहे भारत-विरोधी प्रचार जिसे प्रकारान्तर से हिन्दू विरोधी प्रचार कहा जाता है, से सर्वथा निरपेक्ष भी नही रह सकता, जबकि उसके परिवार का कोई न कोई सदस्य तो वहा है ही जो कि विभाजन के दिनो वहा चला गया था। पाक का अपने को मुस्लिम धर्म का प्रतिनिधि राष्ट्र कहना भी इसका एक कारण माना जा सकता है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि जायसी का पद्मावत केवल समसामयिक प्रश्नो का ही समाधान प्रस्तुत नही करता अपितु इसमे कवि ने जिस सामंजस्य भावना का प्रतिपादन किया है उसका सार्वकालिक और सार्वभौमिक महत्त्व है। हिन्दू-मुस्लिम एकता, प्रेम की महत्ता, मानवता के उच्च आदर्शो की प्रतिष्ठा, हिन्दू-मुस्लिम जीवन-दर्शनो में सामंजस्य स्थापन एवं मानवीय प्रेम को ही सर्वोच्च मानना आदि-आदि ऐसे जीवन-तत्त्व हैं जिन्हें किसी काल या समय विशेष की सीमा मे नही बाधा जा सकता। पद्मावत के प्रेमाख्यान के माध्यम से कवि ने प्रेम के जिस शाश्वत रूप को प्रतिष्ठित किया है उसका महत्त्व सृष्टि-पर्यन्त बना रहेगा, क्योकि प्रेम किसी युग के समाज अथवा किसी वर्ग विशेष की बपौती नहीं होता, इसका सम्बन्ध मानवों के साथ-साथ प्राणी मात्र से है और इसका अस्तित्व तब तक रहेगा जब तक विधाता की सृष्टि बनी रहेगी। सृष्टि-रचयिता की 'एकोऽहं बहुस्याम' की इच्छा में भी उसकी प्रेम-लीला की आकाक्षा ही दृष्टिगोचर होती है। अतः मूल्याकन की दृष्टि से जायसी के काव्य का महत्त्व सार्वभौमिक और सार्वकालिक ही माना जायगा।